Chapter एक
कलियुग के पतित वंश

श्रीमद्‌भागवत का बारहवाँ स्कन्ध श्रील शुकदेव गोस्वामी की इस भविष्यवाणी से प्रारम्भ होता है कि कलियुग में आगे चल कर इस पृथ्वी पर कौन-कौन से राजे उत्पन्न होंगे। तत्पश्चात् वे इस युग के अनेक दोष गिनाते हैं जिसके बाद पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी उन मूर्ख राजाओं का व्यंग्यपूर्वक निरादर करती है, जो लगातार उसको जीतने का प्रयास करते रहते हैं। तत्पश्चात् शुकदेव गोस्वामी भौतिक प्रलय की चार कोटियाँ बतलाते हैं और अन्त में महाराज परीक्षित को अपनी सलाह देते हैं। इसके पश्चात् राजा परीक्षित को तक्षक सर्प डस लेता है, जिससे वे इस जगत से प्रयाण कर जाते हैं। सूत गोस्वामी नैमिषारण्य में मुनियों को वेदों तथा पुराणों की विविध शाखाओं के आचार्यों का नाम गिनाकर, मार्कण्डेय ऋषि का पवित्र इतिहास बताकर, भगवान् के विराट रूप की तथा सूर्य देव के रूप में उनके अंश की महिमा का गायन करके, इस ग्रंथ में विवेचित कथाओं का सारांश देकर तथा अन्तिम वर तथा स्तुतियाँ प्रदान करके, *श्रीमद्‌भागवत* का वाचन बन्द कर देते हैं।

इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय में मगध राजवंश के भावी राजाओं का कलियुग के प्रभाव से भ्रष्ट होने का संक्षिप्त वर्णन मिलता है। सूर्य देव के वंश में पुरु के कुल में बीस राजाओं ने राज्य किया जिनमें उपरिचर वसु से प्रारम्भ करके पुरञ्जय तक सारे नाम गिनाये गये हैं। पुरञ्जय के बाद इस वंश की परम्परा भ्रष्ट हो जायेगी। पुरञ्जय के बाद पाँच राजा होंगे जो प्रद्योतन कहलायेंगे जिनके बाद शिशुनाग, मौर्य, शुंग, काण्व, अन्ध्र राष्ट्र के तीस राजा, सात आभीर, दस गर्दभी, सोलह कंक, आठ यवन, चौदह तुरुष्क, दस गुरुण्ड, ११ मौल, ५ किलकिला एकछत्र राजा तथा १३ बाह्लीक होंगे। इसके बाद विभिन्न राज्यों में एक ही समय पर ७ अंध्र राजा, ७ कौशल, विदूर राजा तथा निषध राज्य करेंगे। तत्पश्चात् मगध राज्यों की बागडोर ऐसे राजाओं के हाथों चली जायेगी जो शूद्र तथा म्लेच्छ जैसे होंगे और पूर्णत: अधर्म में निमग्न रहेंगे।

श्रीशुक उवाच

योऽन्त्यः पुरञ्जयो नाम भविष्यो बारहद्रथः ।
तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ॥ १ ॥
प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः ।
विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; यः—जो; अन्त्यः—(नवे स्कन्ध में वर्णित) अन्तिम सदस्य; पुरञ्जयः—पुरञ्जय (रिपुञ्जय); नाम—नामक; भविष्यः—भविष्य में होगा; बारहद्रथः—बृहद्रथ का वंशज; तस्य—उसका; अमात्यः—मंत्री; तु—लेकिन; शुनकः—शुनक; हत्वा—मार कर; स्वामिनम्—अपने स्वामी को; आत्म-जम्—अपने पुत्र; प्रद्योत-संज्ञम्—प्रद्योत नाम वाले को; राजानम्—राजा को; कर्ता—बनायेगा; यत्—जिसका; पालकः—पालक नामक;

सुतः—पुत्र; विशाखयूपः—विशाखयूप; तत्-पुत्रः—पालक का पुत्र; भविता—होगा; राजकः—राजक; ततः—तत्पश्चात् (विशाखयूप के पुत्र-रूप में)।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हमने इसके पूर्व मागध वंश के जिन भावी शासकों के नाम गिनाये उनमें अन्तिम राजा पुरञ्जय था, जो बृहद्रथ के वंशज के रूप में जन्म लेगा। पुरञ्जय का मंत्री शुनक राजा की हत्या करके अपने पुत्र प्रद्योत को सिंहासनारूढ़ करेगा। प्रद्योत का पुत्र पालक होगा और उसका पुत्र विशाखयूप होगा जिसका पुत्र राजक होगा।

तात्पर्य : यहाँ पर छलछद्म से युक्त राजनीतिक दावपेंच का जो वर्णन है, वह कलियुग का लक्षण है। इस ग्रंथ के नवें स्कन्ध में शुकदेव गोस्वामी ने वर्णन किया है कि सूर्य तथा चन्द्र—इन दो राजवंशों में किस तरह महान् शासक अवतरित हुए। नवें स्कन्ध में ईश्वर के प्रसिद्ध अवतार भगवान् रामचन्द्र का वर्णन इसी वंशावली में आता है और नवें स्कन्ध के अन्त में शुकदेवजी भगवान् कृष्ण तथा बलराम के पूर्वजों का वर्णन करते हैं। अन्त में चन्द्रवंश के प्रसंग में कृष्ण तथा बलराम के आविर्भाव का उल्लेख हुआ है।

दशम स्कन्ध में भगवान् कृष्ण की बाल लीलाओं का वृन्दावन में, कौमार लीलाओं का मथुरा में और कैशोर लीलाओं का द्वारका में वर्णन हुआ है। सुप्रसिद्ध महाकाव्य *महाभारत* में भी इसी काल की घटनाओं का वर्णन हुआ है, जिसमें पाँचों पाण्डवों तथा कृष्ण एवं भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य एवं विदुर जैसे ऐतिहासिक महापुरुषों के कार्यकलापों पर ध्यान एकाग्र किया गया है। *महाभारत* में ही *भगवद्गीता* सन्निहित है, जिसमें भगवान् कृष्ण को परब्रह्म घोषित किया गया है। *श्रीमद्भागवत* को जिसके बारहवें तथा अन्तिम स्कन्ध का हम अब प्रस्तुत कर रहे हैं, *महाभारत* से उच्चतर ग्रंथ माना जाता है क्योंकि पूरे ग्रंथ में परम ब्रह्म, भगवान् श्रीकृष्ण, का मुख्य रूप से तथा निर्विवाद रूप से उद्घाटन हुआ है। वस्तुतः *भागवत* के प्रथम स्कन्ध में इसका वर्णन हुआ है कि श्री व्यासदेव ने इस महान् ग्रंथ की कैसे रचना की क्योंकि वे *महाभारत* में भगवान् श्रीकृष्ण के छुटपुट महिमा-गायन से असन्तुष्ट थे।

यद्यपि *श्रीमद्भागवत* में अनेक राजवंशों के इतिहासों तथा असंख्य राजाओं की जीवनीयों का वर्णन मिलता है, किन्तु कलियुग का वर्णन आने तक हमें कोई ऐसा मंत्री नहीं मिलता जो अपने ही राजा की हत्या करके अपने पुत्र को सिंहासनारूढ़ कर दे। यह घटना धृतराष्ट्र द्वारा पाण्डवों की हत्या के प्रयास और अपने पुत्र दुर्योधन को राज-मुकुट देने के ही समान है। जैसाकि *महाभारत* में बतलाया गया है, भगवान् कृष्ण ने इस प्रयास को विफल कर दिया किन्तु भगवान् के वैकुण्ठ प्रयाण के साथ ही कलियुग पूरी तरह से प्रकट हुआ और अपने ही घर में उसने राजनीतिक हत्या को आदर्श विधि के रूप में मान्यता दे डाली।

नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे ।
अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

नन्दिवर्धनः—नन्दिवर्धन; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; पञ्च—पाँच; प्रद्योतनाः—प्रद्योतन; इमे—ये; अष्ट-त्रिंश—अड़तीस; उत्तर—अधिक; शतम्—एक सौ; भोक्ष्यन्ति—भोग करेंगे; पृथिवीम्—पृथ्वी पर; नृपाः—राजा लोग।

राजक का पुत्र नन्दिवर्धन होगा और प्रद्योतन वंश में पाँच राजा होंगे जो १३८ वर्षों तक पृथ्वी का भोग करेंगे।

शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः ।
क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ४॥

शब्दार्थ

शिशुनागः—शिशुनाग; ततः—तत्पश्चात्; भाव्यः—जन्म लेंगे; काकवर्णः—काकवर्ण; तु—तथा; तत्-सुतः—उसका पुत्र; क्षेमधर्मा—क्षेमधर्मा; तस्य—काकवर्ण का; सुतः—पुत्र; क्षेत्रज्ञः—क्षेत्रज्ञ; क्षेमधर्म-जः—क्षेमधर्मा से उत्पन्न।

नन्दिवर्धन के शिशुनाग नामक पुत्र होगा और उसका पुत्र काकवर्ण कहलायेगा। काकवर्ण का पुत्र क्षेमधर्मा होगा तथा क्षेमधर्मा का पुत्र क्षेत्रज्ञ होगा।

विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ।
दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

विधिसारः—विधिसार; सुतः—पुत्र; तस्य—क्षेत्रज्ञ का; अजातशत्रुः—अजातशत्रु; भविष्यति—होगा; दर्भकः—दर्भक; तत्-सुतः—अजातशत्रु का पुत्र; भावी—जन्म लेगा; दर्भकस्य—दर्भक का; अजयः—अजय; स्मृतः—स्मरण किया जाता है।

क्षेत्रज्ञ का पुत्र विधिसार होगा और उसका पुत्र अजातशत्रु होगा। अजातशत्रु के दर्भक नाम का पुत्र होगा और उसका पुत्र अजय होगा।

नन्दिवर्धन आजेयो महानन्दिः सुतस्ततः ।
शिशुनागा दशैवैते सष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ६ ॥
समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः ।
महानन्दिसुतो राजन्शूद्रागर्भोद्भवो बली ॥ ७॥
महापद्मपतिः कश्चिन्नन्दः क्षत्रविनाशकृत् ।
ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

नन्दिवर्धनः—नन्दिवर्धन; आजेयः—अजय का पुत्र; महा-नन्दिः—महानन्दि; सुतः—पुत्र; ततः—तत्पश्चात् (नन्दिवर्धन के बाद); शिशुनागाः—शिशुनाग; दश—दश; एव—निस्सन्देह; एते—ये; सष्टि—साठ; उत्तर—अधिक; शत-त्रयम्—तीन सौ; समाः—वर्ष; भोक्ष्यन्ति—राज्य करेंगे; पृथिवीम्—पृथ्वी पर; कुरुश्रेष्ठ—हे कुरुओं में श्रेष्ठ; कलौ—इस कलियुग में; नृपाः—राजागण; महानन्दि-सुतः—महानन्दि का पुत्र; राजन्—हे राजा परीक्षित; शूद्रा-गर्भ—शूद्र स्त्री के गर्भ से; उद्भवः—जन्म लेकर; बली—बलवान; महा-पद्म—लाखों में गिनी जाने वाली सेना या सम्पत्ति; पतिः—स्वामी; कश्चित्—कोई; नन्दः—नन्द; क्षत्र—राजसी श्रेणी का; विनाश-कृत्—विनाशकर्ता; ततः—तब; नृपाः—राजागण; भविष्यन्ति—होंगे; शूद्र-प्रायाः—शूद्रों जैसे; तु—तथा; अधार्मिकाः—अधार्मिक।

अजय दूसरे नन्दिवर्धन का पिता बनेगा, जिसका पुत्र महानन्दि होगा। हे कुरुश्रेष्ठ, शिशुनाग वंश के ये दस राजा कलियुग में ३६० वर्षों तक राज्य करेंगे। हे परीक्षित, राजा महानन्दि की शूद्रा पत्नी के गर्भ से अत्यन्त शक्तिशाली पुत्र होगा जो नन्द कहलायेगा। वहलाखों सैनिकों तथा प्रभूत सम्पत्ति का स्वामी होगा। वह क्षत्रियों में कहर ढायेगा और उसके बाद के प्रायः सारे राजे अधार्मिक शूद्र होंगे।

तात्पर्य : यहाँ इसका वर्णन मिलता है कि विश्व में प्रामाणिक राजनीतिक सत्ता का कैसे ह्रास हुआ और किस तरह वह छिन्न-भिन्न हुई। ईश्वर के साथ ही साथ शक्तिशाली सन्त पुरुष हैं जिन्होंने सरकारी नेताओं की भूमिका ग्रहण की थी और पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधित्व किया था। किन्तु कलियुग के आते ही यह दिव्य सरकारी प्रणाली बैठ गई और अनधिकारी, असभ्य लोगों ने धीरे धीरे शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली।

स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लङ्घितशासनः ।
शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (नन्द); एक-छत्राम्—एक नायकत्व के अधीन; पृथिवीम्—सम्पूर्ण पृथ्वी; अनुल्लङ्घित—जिसका उल्लंघन न किया जा सके; शासनः—शासन; शासिष्यति—प्रभुसत्ता होगी; महापद्मः—महापद्म का स्वामी; द्वितीयः—दूसरा; इव—मानो; भार्गवः—परशुराम।

महापद्म का स्वामी, राजा नन्द, सारी पृथ्वी पर इस तरह शासन करेगा मानो द्वितीय परशुराम हो और उसकी सत्ता को कोई चुनौती नहीं दे सकेगा।

तात्पर्य : इस अध्याय के आठवें श्लोक में इसका उल्लेख हुआ है कि राजा नन्द क्षत्रिय वंश के बचेखुचे लोगों को नष्ट करेगा। इसलिए उसकी उपमा परशुराम से दी गई है, जिसने पिछले युग में क्षत्रियों को २१ बार ध्वंस किया था।

तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ।
य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानश्च शतं समाः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके (नन्द के); च—तथा; अष्टौ—आठ; भविष्यन्ति—जन्म लेंगे; सुमाल्य-प्रमुखाः—सुमाल्य इत्यादि; सुताः—पुत्र; ये—जो; इमाम्—इस; भोक्ष्यन्ति—भोग करेंगे; महीम्—पृथ्वी पर; राजानः—राजा; च—तथा; शतम्—एक सौ; समाः—वर्ष।

उसके सुमाल्य आदि आठ पुत्र होंगे जो पृथ्वी को एक सौ वर्षों तक शक्तिशाली राजाओं के रूप में अपने वश में रखेंगे।

नव नन्दान्द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति ।
तेषां अभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

नव—नौ; नन्दान्—नन्दों (नन्द तथा उसके आठ पुत्रों); द्विजः—ब्राह्मण; कश्चित्—कोई; प्रपन्नान्—विश्वास करते हुए; उद्धरिष्यति—उन्मूलन करेगा; तेषाम्—उनकी; अभावे—अनुपस्थिति में; जगतीम्—पृथ्वी; मौर्याः—मौर्य वंश; भोक्ष्यन्ति—शासन करेगा; वै—निस्सन्देह; कलौ—इस कलियुग में।

कोई एक ब्राह्मण (चाणक्य) राजा नन्द तथा उसके आठ पुत्रों के साथ विश्वासघात करेगा और उनके वंश का विनाश कर देगा। उनके न रहने पर कलियुग में मौर्यगण विश्व पर शासन करेंगे।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर दोनों ही पुष्टि करते हैं कि यहाँ पर उल्लिखित ब्राह्मण चाणक्य है, जिसका दूसरा नाम कौटिल्य या वात्स्यायन है। *श्रीमद्भागवत* की यह महान् ऐतिहासिक कथा जो विराट जगत के प्राकट्य के पूर्व की घटनाओं से प्रारम्भ होती है, अब आधुनिक प्रलेखित इतिहास के क्षेत्र में प्रवेश करती है। आधुनिक इतिहासकार मौर्य वंश को तथा चन्द्रगुप्त को जिस राजा का निम्नलिखित श्लोक में वर्णन किया गया है, दोनों को, मान्यता प्रदान करते हैं।

स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति ।
तत्सुतो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (चाणक्य); एव—निस्सन्देह; चन्द्रगुप्तम्—राजकुमार चन्द्रगुप्त को; वै—निस्सन्देह; द्विजः—ब्राह्मण; राज्ये—राज्य में; अभिषेक्ष्यति—अभिषिक्त होगा; तत्—चन्द्रगुप्त का; सुतः—पुत्र; वारिसारः—वारिसार; तु—तथा; ततः—वारिसार के बाद; च—तथा; अशोकवर्धनः—अशोकवर्धन।

यह ब्राह्मण चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठायेगा जिसका पुत्र वारिसार होगा। वारिसार का पुत्र अशोकवर्धन होगा।

सुयशा भविता तस्य सङ्गतः सुयशःसुतः ।
शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ।
शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृहद्रथः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सुयशाः—सुयशा; भविता—उत्पन्न होगा; तस्य—उसके (अशोकवर्धन के); सङ्गतः—संगत; सुयशः-सुतः—सुयशा का पुत्र; शालिशूकः—शालिशूक; ततः—तत्पश्चात्; तस्य—उस (शालिशूक) के; सोमशर्मा—सोमशर्मा; भविष्यति—होगा; शतधन्वा—शतधन्वा; ततः—तत्पश्चात्; तस्य—उस (सोमशर्मा) के; भविता—होगा; तत्—उस (शतधन्वा) के; बृहद्रथः—बृहद्रथ।

अशोकवर्धन के बाद सुयशा होगा जिसका पुत्र संगत होगा। इसका पुत्र शालिशूक होगा जिसका पुत्र सोमशर्मा होगा। सोमशर्मा का पुत्र शतधन्वा होगा और इसका पुत्र बृहद्रथ कहलायेगा।

मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ।
समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कलौ कुरुकुलोद्वह ॥ १४॥

शब्दार्थ

मौर्याः—मौर्यगण; हि—निस्सन्देह; एते—ये; दश—दस; नृपाः—राजा; सप्त-त्रिंशत्—सैतीस; शत—एक सौ; उत्तरम्—अधिक; समाः—वर्ष; भोक्ष्यन्ति—शासन करेंगे; पृथिवीम्—पृथ्वी पर; कलौ—कलियुग में; कुरु-कुल—कुरुवंश के; उद्वह—हे विख्यात वीर।

हे कुरुश्रेष्ठ, ये दस मौर्य राजा कलियुग के १३७ वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेंगे।

तात्पर्य : यद्यपि नौ राजाओं के नाम लिये गये हैं, किन्तु संगत के राज्य के पूर्व सुज्येष्ठ के बाद दशरथ हुआ। इस तरह कुल दस मौर्य राजा थे।

अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठो भविता ततः ।
वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिन्दो भविता सुतः ॥ १५॥
ततो घोषः सुतस्तस्माद्वज्रमित्रो भविष्यति ।
ततो भागवतस्तस्माद्देवभूतिः कुरूद्वह ॥ १६॥
शुङ्गा दशैते भोक्ष्यन्ति भूमिं वर्षशताधिकम् ।
ततः काण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान्नृप ॥ १७॥

शब्दार्थ

अग्निमित्रः—अग्निमित्र; ततः—पुष्य मित्र से, वह सेनापति जो बृहद्रथ का वध करेगा; तस्मात्—उस (अग्निमित्र) से; सुज्येष्ठः—सुज्येष्ठ; भविता—होगा; ततः—उससे; वसुमित्रः—वसुमित्र; भद्रकः—भद्रक; च—तथा; पुलिन्दः—पुलिन्द; भविता—होगा; सुतः—पुत्र; ततः—उस (पुलिन्द) से; घोषः—घोष; सुतः—पुत्र; तस्मात्—उससे; वज्रमित्रः—वज्रमित्र; भविष्यति—होगा; ततः—उससे; भागवतः—भागवत; तस्मात्—उससे; देवभूति—देवभूति; कुरु-उद्वह—हे कुरुश्रेष्ठ; शुङ्गाः—शुंग; दश—दस; एते—ये; भोक्ष्यन्ति—भोग करेंगे; भूमिम्—पृथ्वी का; वर्ष—वर्ष; शत—एक सौ; अधिकम्—अधिक; ततः—तब; काण्वान्—काण्व वंश; इयम्—यह; भूमिः—पृथ्वी; यास्यति—के राज्य में आ जायेगी; अल्प-गुणान्—बहुत कम गुणों वाले; नृप—हे राजा परीक्षित।

हे राजा परीक्षित, इसके बाद अग्निमित्र राजा बनेगा, तब सुज्येष्ठ बनेगा। सुज्येष्ठ के बाद वसुमित्र, भद्रक तथा भद्रक का पुत्र पुलिन्द होंगे। इसके बाद पुलिन्द का पुत्र घोष शासन करेगा जिसके बाद वज्रमित्र, भागवत तथा देवभूति होंगे। इस तरह हे कुरुश्रेष्ठ, दस शुंग राजा पृथ्वी पर एक सौ वर्षों से अधिक तक राज्य करेंगे। तब यह पृथ्वी काण्व वंश के राजाओं के अधीन हो जायेगी जिनमें बहुत ही कम गुण होंगे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार शुंग वंश तब प्रारम्भ हुआ जब सेनापति पुष्पमित्र ने अपने ही राजा बृहद्रथ का वध कर डाला और सत्ता स्वयं हथिया ली। पुष्पमित्र के बाद अग्निमित्र तथा शुंग वंश के अन्य राजा हुए जिन्होंने ११२ वर्षों तक राज्य किया।

शुङ्गं हत्वा देवभूतिं काण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ।
स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ॥ १८॥

शब्दार्थ

शुङ्गम्—शुंग को; हत्वा—मार कर; देवभूतिम्—देवभूति; काण्वः—काण्व वंश का सदस्य; अमात्यः—उसका मंत्री; तु—लेकिन; कामिनम्—कामी; स्वयम्—स्वयं; करिष्यते—करेगा; राज्यम्—राज्य; वसुदेवः—वसुदेव नामक; महा-मतिः—अत्यन्त बुद्धिमान।

काण्व वंश से सम्बद्ध एक बुद्धिमान मंत्री वसुदेव, शुंग राजाओं में से देवभूति नामक अत्यन्त विलासी अन्तिम राजा को मारेगा और स्वयं शासन सँभालेगा।

तात्पर्य : स्पष्ट है कि चूँकि राजा देवभूति अन्य पुरुषों की स्त्रियों के पीछे दीवाना रहता (लम्पट) था इसलिए उसके मंत्री ने उसको मार डाला और सत्ता हथिया ली। इस प्रकार काण्व वंश का सूत्रपात हुआ।

तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ।
काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौ युगे ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस (वसुदेव) का; पुत्रः—पुत्र; तु—तथा; भूमित्रः—भूमित्र; तस्य—उसका; नारायणः—नारायण; सुतः—पुत्र; काण्व-अयनाः—काण्व वंश के राजा; इमे—ये; भूमिम्—पृथ्वी; चत्वारिंशत्—चालीस; च—तथा; पञ्च—पाँच; च—तथा; शतानि—सौ; त्रीणि—तीन; भोक्ष्यन्ति—शासन करेंगे; वर्षाणाम्—वर्ष; च—तथा; कलौ युगे—कलियुग में।

वसुदेव का पुत्र भूमित्र होगा और उसका पुत्र नारायण होगा। काण्व वंश के ये राजा पृथ्वी पर कलियुग के अगले ३४५ वर्षों तक शासन चलायेंगे।

हत्वा काण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ।
गां भोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः कञ्चित्कालमसत्तमः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

हत्वा—मार कर; काण्वम्—काण्व राजा को; सुशर्माणम्—सुशर्मा नामक; तत्-भृत्यः—उसका नौकर; वृषलः—निम्न जाति का शूद्र; बली—बली नामक; गाम्—पृथ्वी पर; भोक्ष्यति—शासन करेगा; अन्ध्र-जातीयः—अन्ध्र जाति का; कञ्चित्—कुछ; कालम्—समय तक; असत्तमः—अत्यन्त भ्रष्ट।

काण्वों का अन्तिम राजा सुशर्मा, अन्ध्र जाति के अधम शूद्र बली नामक अपने ही नौकर के हाथों मारा जायेगा। यह अत्यन्त भ्रष्ट महाराज बली कुछ काल तक पृथ्वी पर शासन करेगा।

तात्पर्य : यहाँ पर अधिक जानकारी यह मिलती है कि किस तरह सरकारी प्रशासन में असंस्कृत लोग प्रविष्ट हो चुके थे। बली नामक तथाकथित राजा को *असत्तम* अर्थात् नितान्त अपवित्र, असभ्य व्यक्ति कहा गया है।

कृष्णनामाथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः ।
श्रीशान्तकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥

लम्बोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माच्चिबिलको नृपः ।
मेघस्वातिश्चिबिलकादटमानस्तु तस्य च ॥ २२ ॥

अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चात्मजः ।
पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ॥ २३ ॥

चकोरो बहवो यत्र शिवस्वातिररिन्दमः ।
तस्यापि गोमती पुत्रः पुरीमान्भविता ततः ॥ २४ ॥

मेदशिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ।
विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चन्द्रविज्ञः सलोमधिः ॥ २५ ॥

एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ।
षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कुरुनन्दन ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण-नाम—कृष्ण नामक; अथ—तब; तत्—उस (बली) का; भ्राता—भाई; भविता—होगा; पृथिवी-पतिः—पृथ्वी का स्वामी; श्री-शान्तकर्णः—श्री शान्तकर्ण; तत्—कृष्ण का; पुत्रः—पुत्र; पौर्णमासः—पौर्णमास; तु—तथा; तत्-सुतः—उसका पुत्र; लम्बोदरः—लम्बोदर; तु—तथा; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; तस्मात्—उस (लम्बोदर) से; चिबिलकः—चिबिलक; नृपः—राजा; मेघस्वातिः—मेघस्वाति; चिबिलकात्—चिबिलक से; अटमानः—अटमान; तु—तथा; तस्य—उस (मेघस्वाति) का; च—तथा; अनिष्टकर्मा—अनिष्टकर्मा; हालेयः—हालेय; तलकः—तलक; तस्य—उस (हालेय) का; च—तथा; आत्म-जः—पुत्र; पुरीषभीरुः—पुरीषभीरु; तत्—तलक का; पुत्रः—पुत्र; ततः—तब; राजा—राजा; सुनन्दनः—सुनन्दन; चकोरः—चकोर; बहवः—बहुगण; यत्र—जिनमें से; शिवस्वातिः—शिवस्वाति; अरिम्दमः—शत्रुओं का दमन करने वाला; तस्य—उसके; अपि—भी; गोमती—गोमती; पुत्रः—पुत्र; पुरीमान्—पुरीमान; भविता—होगा; ततः—उस (गोमती) से; मेदशिराः—मेदशिरा; शिवस्कन्दः—शिवस्कन्द; यज्ञश्रीः—यज्ञश्री; तत्—शिवस्कन्द का; सुतः—पुत्र; ततः—तब; विजयः—विजय; तत्-सुतः—उसका पुत्र; भाव्यः—होगा; चन्द्रविज्ञः—चन्द्रविज्ञ; स-लोमधिः—लोमधि सहित; एते—ये; त्रिंशत्—तीस; नृ-पतयः—राजा; चत्वारि—चार; अब्द-शतानि—शताब्दियों; च—तथा; षट्-पञ्चासत्—छप्पन; च—तथा; पृथिवीम्—पृथ्वी पर; भोक्ष्यन्ति—शासन करेंगे; कुरु-नन्दन—हे कुरुओं के प्रिय पुत्र।

बली का भाई, कृष्ण, पृथ्वी का अगला शासक बनेगा। उसका पुत्र शान्तकरण होगा और शान्तकरण का पुत्र पौर्णमास होगा। पौर्णमास का पुत्र लम्बोदर होगा जिसका पुत्र महाराज चिबिलक होगा। चिबिलक से मेघस्वाति उत्पन्न होगा जिसका पुत्र अटमान होगा। अटमान का पुत्र अनिष्टकर्मा होगा। उसका पुत्र हालेय होगा जिसका पुत्र तलक होगा। तलक का पुत्र पुरीषभीरु होगा और उसके बाद सुनन्दन राजा बनेगा। सुनन्दन के बाद चकोर तथा आठ बहुगण होंगे जिनमें से शिवस्वाति शत्रुओं का महान् दमनकर्ता होगा। शिवस्वाति का पुत्र गोमती होगा जिसका पुत्र पुरीमान होगा। पुरीमान का पुत्र मेदशिरा होगा। उसका पुत्र शिवस्कन्द होगा जिसका पुत्र यज्ञश्री होगा। यज्ञश्री का पुत्र विजय होगा जिसके दो पुत्र होंगे—चन्द्रविज्ञ तथा लोमधि। हे कुरुओं के प्रिय पुत्र, ये तीस राजा पृथ्वी पर कुल ४५६ वर्षों तक अपनी प्रभुसत्ता बनाये रखेंगे।

सप्ताभीरा आवभृत्या दश गर्दभिनो नृपाः ।
कङ्काः षोडश भूपाला भविष्यन्त्यतिलोलुपाः ॥ २७॥

शब्दार्थ

सप्त—सात; आभीराः—आभीर; आवभृत्याः—अवभृति नगरी के; दश—दस; गर्दभिनः—गर्दभी; नृपाः—राजा; कङ्काः—कंक; षोडश—सोलह; भू-पालाः—पृथ्वी के शासक; भविष्यन्ति—होंगे; अति-लोलुपाः—अत्यन्त लालची।

तत्पश्चात् अवभृति नगरी की आभीर जाति के सात राजा होंगे और तब दस गर्दभी होंगे। उनके बाद कंक के सोलह राजा शासन करेंगे और वे अपने अत्यधिक लोभ के लिए विख्यात होंगे।

ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः ।
भूयो दश गुरुण्डाश्च मौला एकादशैव तु ॥ २८॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; अष्टौ—आठ; यवनाः—यवनगण; भाव्याः—होंगे; चतुः-दश—चौदह; तुरुष्ककाः—तुरुष्क; भूयः—इसके भी आगे; दश—दस; गुरुण्डाः—गुरुण्ड; च—तथा; मौलाः—मौल; एकादश—ग्यारह; एव—निस्सन्देह; तु—तथा।

तब आठ यवन शासन सँभालेंगे जिनके बाद चौदह तुरुष्क, दस गुरुण्ड तथा ग्यारह मौल वंश के राजा होंगे।

एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दश वर्षशतानि च ।
नवाधिकां च नवतिं मौला एकादश क्षितिम् ॥ २९॥
भोक्ष्यन्त्यब्दशतान्यङ्ग त्रीणि तैः संस्थिते ततः ।
किलकिलायां नृपतयो भूतनन्दोऽथ वङ्गिरिः ॥ ३०॥
शिशुनन्दिश्च तद्भ्राता यशोनन्दिः प्रवीरकः ।
इत्येते वै वर्षशतं भविष्यन्त्यधिकानि षट् ॥ ३१॥

शब्दार्थ

एते—ये; भोक्ष्यन्ति—शासन करेंगे; पृथिवीम्—पृथ्वी पर; दश—दस; वर्ष-शतानि—शताब्दी; च—तथा; नव-अधिकाम्—और नौ; च—तथा; नवतिम्—नब्बे; मौलाः—मौल; एकादश—ग्यारह; क्षितिम्—संसार पर; भोक्ष्यन्ति—शासन करेंगे; अब्द-शतानि—शताब्दी; अङ्ग—हे परीक्षित; त्रीणि—तीन; तैः—उनके द्वारा; संस्थिते—सबों के मृत होने पर; ततः—तब; किलकिलायाम्—किलकिला नगरी में; नृ-पतयः—राजागण; भूतनन्दः—भूतनन्द; अथ—और तब; वङ्गिरिः—वंगिरि; शिशुनन्दिः—शिशुनन्दि; च—तथा; तत्—उसका; भ्राता—भाई; यशोनन्दिः—यशोनन्दि; प्रवीरकः—प्रवीरक; इति—इस प्रकार; एते—ये; वै—निस्सन्देह; वर्ष-शतम्—एक सौ वर्ष; भविष्यन्ति—होंगे; अधिकानि—अधिक, और; षट्—छः।

ये आभीर, गर्दभी तथा कंक १०९९ वर्षों तक पृथ्वी का भोग करेंगे और मौलगण ३०० वर्षों तक राज्य करेंगे। इन सबों के दिवंगत होने पर किलकिला नगरी में भूतनन्द, वंगिरि, शिशुनन्दि, उसका भाई यशोनन्दि तथा प्रवीरक नामक राजाओं का वंश उदय होगा।

किलकिला के ये राजा कुल मिलाकर १०६ वर्षों तक प्रभुत्व जमाये रखेंगे।

तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः ।
पुष्पमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ॥ ३२॥
एककाला इमे भूपाः सप्तान्ध्राः सप्त कौशलाः ।
विदूरपतयो भाव्या निषधास्तत एव हि ॥ ३३॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उनके (भूतनन्द तथा किलकिला वंश के अन्य राजाओं के); त्रयोदश—तेरह; सुताः—पुत्र; भवितारः—होंगे; च—तथा; बाह्लिकाः—बाह्लिक; पुष्पमित्रः—पुष्पमित्र; अथ—तब; राजन्यः—राजा; दुर्मित्रः—दुर्मित्र; अस्य—उसका (पुत्र); तथा—भी; एव—निस्सन्देह; च—तथा; एक-कालाः—एक ही समय शासन कर रहे; इमे—ये; भू-पाः—राजा; सप्त—सात; अन्ध्राः—अन्ध्र; सप्त—सात; कौशलाः—कौशल देश के राजा; विदूर-पतयः—विदूर के शासक; भाव्याः—होंगे; निषधाः—निषध; ततः—तब (बाह्लिकों के बाद); एव हि—निस्सन्देह।

किलकिलाओं के बाद उनके तेरह पुत्र, बाह्लिक होंगे और उनके बाद राजा पुष्पमित्र, उसका पुत्र दुर्मित्र, सात अन्ध्र, सात कौशल तथा विदूर और निषध प्रान्तों के राजा भी एक ही समय विश्व के अलग-अलग भागों में शासन करेंगे।

मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरञ्जयः ।
करिष्यत्यपरो वर्णान्पुलिन्दयदुमद्रकान् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

मागधानाम्—मगध प्रान्त के; तु—तथा; भविता—होंगे; विश्वस्फूर्जिः—विश्वस्फूर्जि; पुरञ्जयः—राजा पुरञ्जय; करिष्यति—बनायेगा; अपरः—दूसरे; वर्णान्—सारे सभ्य मनुष्य; पुलिन्द-यदु-मद्रकान्—पुलिन्द, यदु तथा मद्रक जैसे अछूतों में।

तब मागधों का राजा विश्वस्फूर्जि प्रकट होगा जो दूसरे पुरञ्जय के समान होगा। वह समस्त सभ्य वर्णों को निम्न श्रेणी के असभ्य मनुष्यों में बदल देगा, जिस तरह पुलिन्द, यदु तथा मद्रक होते हैं।

प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ।
वीर्यवान्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ।
अनुगङ्गमाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

प्रजाः—नागरिक; च—तथा; अब्रह्म—जो ब्राह्मण नहीं है; भूयिष्ठाः—मुख्य रूप से; स्थापयिष्यति—बनायेगा; दुर्मतिः—मूर्ख (विश्वस्फूर्जि); वीर्य-वन्—शक्तिशाली; क्षत्रम्—क्षत्रिय जाति; उत्साद्य—विनष्ट करके; पद्मवत्याम्—पद्मवती में; सः—वह; वै—निस्सन्देह; पुरि—नगरी में; अनु-गङ्गम्—गंगा द्वारा (हरद्वार) से; आ-प्रयागम्—प्रयाग तक; गुप्ताम्—सुरक्षित; भोक्ष्यति—शासन करेगा; मेदिनीम्—पृथ्वी पर।

मूर्ख राजा विश्वस्फूर्जि सारे नागरिकों को नास्तिकता की ओर ले जाएगा और अपनी शक्ति का उपयोग क्षत्रिय जाति को पूर्णतया ध्वंस करने में करेगा। वह अपनी राजधानी

पद्मवती में गंगा के उद्‌गम से लेकर प्रयाग तक शासन करेगा।

सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूरा अर्बुदमालवा: ।
व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिपा: ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

शौराष्ट्र—सौराष्ट्र; अवन्ती—अवन्ती; आभीरा:—तथा आभीर में निवास करने वाले; च—तथा; शूरा:—शूर प्रान्त में रहने वाले; अर्बुद-मालवा:—अर्बुद तथा मालव में रहने वाले; व्रात्या:—सारे संस्कारों से विपथ; द्विजा:—ब्राह्मण; भविष्यन्ति—होंगे; शूद्र-प्राया:—शूद्रों जैसे ही; जन-अधिपा:—राजागण।

उस काल में सौराष्ट्र, अवन्ती, आभीर, शूर, अर्बुद तथा मालव प्रान्तों के ब्राह्मण अपने सारे विधि-विधान भूल जायेंगे और इन स्थानों के राजवंशों के सदस्य शूद्रों जैसे ही होंगे।

सिन्धोस्तटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीरमण्डलम् ।
भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चस: ॥ ३७॥

शब्दार्थ

सिन्धो:—सिन्धु नदी के; तटम्—तट पर; चन्द्रभागाम्—चन्द्रभागा; कौन्तीम्—कौन्ती; काश्मीर-मण्डलम्—काश्मीर का क्षेत्र; भोक्ष्यन्ति—शासन करेगा; शूद्रा:—शूद्रजन; व्रात्य-आद्या:—ब्राह्मण-पद से च्युत ब्राह्मण तथा दूसरे अयोग्य पुरुष; म्लेच्छा:—मांसभक्षक; च—तथा; अब्रह्म-वर्चस:—आध्यात्मिक शक्ति से रहित।

सिन्धु नदी का तटवर्ती भाग तथा चन्द्रभागा, कौन्ती एवं काश्मीर के जनपद शूद्रों, पतित ब्राह्मणों और मांसाहारियों के द्वारा शासित होंगे। वे वैदिक सभ्यता के मार्ग को त्याग कर समस्त आध्यात्मिक शक्ति खो चुकेंगे।

तुल्यकाला इमे राजन्म्लेच्छप्रायाश्च भूभृत: ।
एतेऽधर्मानृतपरा: फल्गुदास्तीव्रमन्यव: ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तुल्य-काला:—एक ही समय शासन कर रहे; इमे—ये; राजन्—हे राजा परीक्षित; म्लेच्छ-प्राया:—अछूतों जैसे ही; च—तथा; भू-भृत:—राजागण; एते—ये; अधर्म—अधर्म; अनृत—तथा असत्य के प्रति; परा:—समर्पित; फल्गु-दा:—अपनी प्रजा को नाममात्र का लाभ देने वाले; तीव्र—भयानक; मन्यव:—उनका क्रोध।

हे राजा परीक्षित, एक ही समय शासन करने वाले ऐसे अनेक असभ्य राजा होंगे और वे सब के सब दान न देने वाले, अत्यन्त क्रोधी तथा अधर्म और असत्य के महान् भक्त होंगे।

स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृता: ।
उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुष: ॥ ३९ ॥
असंस्कृता: क्रियाहीना रजसा तमसावृता: ।
प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिण: ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

स्त्री—स्त्रियों; बाल—बालकों; गो—गौवों; द्विज—तथा ब्राह्मणों के; घ्नाः—हत्यारे; च—तथा; पर—अन्य मनुष्यों के; दार—स्त्रियाँ; धन—तथा धन; आहृताः—रुचि लेते हुए; उदित-अस्त-मित—बढ़ते तथा घटते स्वभाव वाले; प्रायाः—अधिकांशतः; अल्प-सत्त्व—थोड़े बल वाले; अल्पक-आयुषः—अल्पायु वाले; असंस्कृताः—वैदिक अनुष्ठानों से शुद्ध नहीं हुए; क्रिया-हीनाः—विधि-विधानों से रहित; रजसा—रजोगुण से; तमसा—तथा तमोगुण से; आवृताः—ढके; प्रजाः—नागरिक; ते—वे; भक्षयिष्यन्ति—निगल जायेंगे; म्लेच्छाः—अछूत; राजन्य-रूपिणः—राजा के रूप में।

ये बर्बर लोग राजा के वेश में निर्दोष स्त्रियों, बच्चों, गौवों तथा ब्राह्मणों की हत्या करके तथा अन्य पुरुषों की पत्नियों को लुभाकर तथा सम्पत्ति को लूट करके सारी प्रजा का भक्षण कर जायेंगे। उनका स्वभाव अनियमित होगा, उनमें चरित्र बल नहीं के बराबर होगा तथा वे अल्पायु होंगे। निस्सन्देह, किसी वैदिक अनुष्ठान से शुद्ध न होने तथा विधि-विधानों के अभाव में, वे रजो तथा तमोगुणों से पूरी तरह प्रच्छन्न होंगे।

तात्पर्य : ये श्लोक इस युग के पतित नेताओं का संक्षिप्त किन्तु यथातथ्य विवरण प्रस्तुत करते हैं।

तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ।
अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तत्-नाथाः—इन राजाओं को शासक रूप में पाने वाली प्रजा; ते—वे; जन-पदाः—नगरों के वासी; तत्—इन राजाओं के; शील—चरित्र; आचार—आचरण; वादिनः—तथा वाणी; अन्योन्यतः—परस्पर; राजभिः—राजाओं द्वारा; च—तथा; क्षयम् यास्यन्ति—विनष्ट हो जायेंगे; पीडिताः—सताये हुए।

इन निम्न जाति के राजाओं द्वारा शासित प्रजा अपने शासकों के चरित्र, आचरण तथा वाणी का अनुकरण करेगी। वे लोग अपने अपने नायकों से तथा एक-दूसरे से सताये जाकर विनष्ट हो जायेंगे।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्त में यह कहा गया है कि इस अध्याय में वर्णित सर्वप्रथम राजा, रिपुञ्जय या पुरञ्जय, का शासन भगवान् कृष्ण के समय से लगभग १,००० वर्ष बाद समाप्त हुआ था। चूँकि भगवान् कृष्ण लगभग ५,००० वर्ष पहले प्रकट हुए थे अतएव पुरञ्जय लगभग ४,००० वर्ष पूर्व हुआ होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि अंतिम राजा विश्वस्फूर्जि ईसा की बारहवीं सदी में हुआ होगा।

आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने यह झूठा आरोप लगा रखा है कि भारत के धार्मिक साहित्य में तिथिवार इतिहास नहीं है। किन्तु इस अध्याय में वर्णित विस्तृत ऐतिहासिक तिथिक्रम इस झूठे आरोप का खण्डन करता है।

इस तरह श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कंध के अन्तर्गत ''कलियुग के पतित वंश'' नामक प्रथम अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter दो

कलियुग के लक्षण

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि जब कलियुग के दुर्गुण असह्य हद तक बढ़ जायेंगे तो भगवान् कल्कि के रूप में अधर्म में रत लोगों का विनाश करने के लिए अवतरित होंगे। तब फिर नया सत्ययुग प्रारम्भ होगा।

कलियुग की प्रगति के साथ साथ लोगों में सद्गुणों का ह्रास होता है और अशुद्ध गुणों की वृद्धि होती है। तथाकथित नास्तिक धर्म वैदिक आचार संहिता को हटाकर प्रधान बन जाता है। राजा बटमार बन जाते हैं और प्रजा निम्न वृत्तियाँ अपना लेती है। सारे सामाजिक वर्ण शूद्र जैसे हो जाते हैं। सारी गौवें बकरियाँ जैसी हो जाती हैं। सारी आध्यात्मिक कुटिया भौतिकतावादी घरों जैसी हो जाती हैं और पारिवारिक सम्बन्ध निकट-विवाह-सम्बन्ध तक सीमित हो जाते हैं।

जब कलियुग समाप्त प्राय होगा तो भगवान् अवतरित होंगे। वे विष्णुयशा नामक उच्च ब्राह्मण के घर में शम्भल नामक ग्राम में प्रकट होंगे और कल्कि नाम से विख्यात होंगे। वे अपने घोड़े देवदत्त पर सवार होंगे और अपने हाथ में तलवार लेकर पृथ्वी पर विचरण करते हुए राजाओं के वेश में रहने वाले लाखों डाकुओं का वध करेंगे। तब अगले सत्ययुग के लक्षण प्रकट होने लगेंगे। जब चन्द्र, सूर्य तथा बृहस्पति एक ही राशि पर होंगे और पुष्या नक्षत्र से जा मिलेंगे तो सत्ययुग प्रारम्भ होगा। इस ब्रह्माण्ड में जीवों के समाज में चार युगों का अर्थात् सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि का इस क्रम से चक्र चलता है।

इस अध्याय का समापन अगले सत्ययुग में वैवस्वत मनु से प्रारम्भ होने वाले भावी चन्द्र तथा सूर्य वंशों के संक्षिप्त वर्णन के साथ होता है। अब भी दो सन्त स्वभाव वाले क्षत्रिय रह रहे हैं, जो इस कलियुग की समाप्ति पर सूर्य देव विवस्वान तथा चन्द्र देव के पवित्र वंशों को फिर से चालू करेंगे। इन राजाओं में से एक देवापि है, जो महाराज शान्तनु का भाई है और दूसरा मरु है, जो इक्ष्वाकु का वंशज है। वे कलाप नामक ग्राम में अज्ञात रह कर अपना समय काट रहे हैं।

श्रीशुक उवाच
ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ।
कालेन बलिना राजन्नङ्क्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; ततः—तब; च—तथा; अनुदिनम्—दिन प्रतिदिन; धर्मः—धर्म; सत्यम्—सत्य; शौचम्—शुद्धता; क्षमा—सहनशक्ति; दया—दया; कालेन—काल की शक्ति से; बलिना—प्रबल; राजन्—हे राजा परीक्षित; नङ्क्ष्यति—नष्ट हो जायेगी; आयुः—उम्र; बलम्—बल; स्मृतिः—स्मरणशक्ति।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा, तब कलियुग के प्रबल प्रभाव से धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, शारीरिक बल तथा स्मरणशक्ति दिन प्रतिदिन घटते जायेंगे।

तात्पर्य : जैसाकि इस श्लोक में वर्णन हुआ है, वर्तमान युग, कलियुग, में प्रायः सारे वांछित गुणों का क्रमशः ह्रास होगा। उदाहरणार्थ, उच्चतर सत्ता के प्रति सम्मान के सूचक धर्म का जो

धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है, ह्रास होगा।

पाश्चात्य जगत में धर्माधिकारी लोग ईश्वर के नियमों को, या स्वयं ईश्वर को, लोगों के समक्ष वैज्ञानिक रीति से प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं, फलस्वरूप पाश्चात्य बौद्धिक इतिहास में धर्मशास्त्र तथा विज्ञान के मध्य एक कठोर द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ है। इस झगड़े से निपटने के उद्देश्य से कुछ धर्माचार्य अपने सिद्धान्तों को संशोधित करने के लिए तैयार हो गये हैं जिससे वे न केवल वैज्ञानिक तथ्यों के अनुरूप बने अपितु उन छद्म वैज्ञानिक चिन्तनों तथा धारणाओं के भी अनुरूप हो, जो सिद्ध न होने पर भी विज्ञान के क्षेत्र में कपट से सम्मिलित हो गये हैं। दूसरी ओर वे उन्मादी धर्माचार्य हैं, जिन्हें वैज्ञानिक विधि बिल्कुल मान्य नहीं है और वे अपने पुरातन साम्प्रदायिक अन्धविश्वासों की सत्यता की दुहाई देते हैं।

इस तरह क्रमबद्ध वैदिक धर्मशास्त्र से विहीन, भौतिक विज्ञान स्थूल भौतिकतावाद के विध्वंसक क्षेत्र में चला गया है, जबकि चिन्तनपरक पाश्चात्य दर्शन सापेक्ष नीतिशास्त्र एवं अनिश्चित भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण की ओर बहक गया है। यद्यपि भौतिकतावादी विश्लेषण के प्रति पश्चिम के अनेक सर्वश्रेष्ठ विद्वान समर्पित हैं किन्तु बौद्धिक धारा से कटा हुआ अधिकांश पश्चिम का धार्मिक जीवन असमान उन्मादवाद तथा अवैध योगिक एवं गुह्य सम्प्रदायों से छाया हुआ है। लोग ईश-विज्ञान से इस हद तक अनजान हैं कि वे कभी कभी कृष्णभावनामृत आन्दोलन को धर्म-विज्ञान तथा धर्म के कल्पनाशील प्रयासों के इस विषम घालमेल के साथ नत्थी कर देते हैं। इस तरह, सच्चा धर्म जो भगवद्विधि का कठोर चेतन आज्ञा-पालन है, पतन की ओर अग्रसर हो रहा है।

सत्यम् का भी ह्रास हो रहा है क्योंकि लोग यह नहीं जानते कि सत्य है क्या। परब्रह्म को जाने बिना केवल काल्पनिक आपेक्षिक सत्यों का ढेर लगा देने से जीवन के असली महत्त्व या उद्देश्य को स्पष्टया नहीं समझा जा सकता।

क्षमा का भी ह्रास हो रहा है क्योंकि ऐसी कोई व्यावहारिक विधि नहीं जिसके द्वारा लोग अपने को शुद्ध बना सकें और इस तरह ईर्ष्या-द्वेष से मुक्त हो सकें। जब तक मनुष्य आध्यात्मिक सुधार के किसी प्रामाणिक कार्यक्रम के अन्तर्गत भगवन्नाम कीर्तन करके शुद्ध नहीं हो लेता, तब तक उसका मन क्रोध, ईर्ष्या तथा क्षुद्रता से भरा रहेगा। इस तरह *दया* का भी ह्रास हो रहा है। सारे जीव ईश्वर के दैवी अस्तित्व में सहभागी होने के कारण शाश्वत रूप से जुड़े हुए हैं। जब नास्तिकता तथा संशयवाद द्वारा ऐसी एकता प्रच्छन्न हो जाती है, तो लोग एक-दूसरे पर दया नहीं दिखाते; वे अन्य जीवों के कल्याण-कार्य को सम्वर्धित करने में अपना स्वार्थ नहीं पहचान पाते। वस्तुतः लोग अपने प्रति भी दयालु नहीं रह जाते। वे मदिरा, नशीली दवाओं, तम्बाकू, मांसाहार, यौन-असंयम तथा जो भी इन्द्रियतृप्ति के सस्ते साधन उपलब्ध हो सकें उनके द्वारा अपने को क्रमबद्ध रूप में विनष्ट करते रहते हैं।

क्योंकि इन सारी आत्मविनाशी आदतों तथा काल के प्रबल प्रभाव से औसत आयु घट रही

है। आधुनिक विज्ञानी जनता का विश्वास जीतने के लिए प्राय: आँकडे प्रकाशित करते रहते हैं, जो यह दिखाते प्रतीत होते हैं कि विज्ञान ने औसत आयु बढ़ा दी है। किन्तु ये आँकडे गर्भपात की क्रूर प्रक्रिया द्वारा मारे जाने वाले लोगों की संख्या का कोई लेखाजोखा नहीं बताते। जब हम गर्भपात द्वारा मारे गये बच्चों की संख्या को कुल जनसंख्या की जीवन-संभावना में सम्मिलित कर लेते हैं, तो हम देखते हैं कि कलियुग में औसत आयु बढ़ी नहीं, अपितु बड़े स्तर पर घट रही है।*

बलम् अर्थात् शारीरिक बल भी घट रहा है। वैदिक साहित्य बतलाता है कि ५,००० वर्ष पूर्व के युग में मनुष्य तो मनुष्य, पशु तथा पौधे भी लम्बे और अधिक बलवान होते थे। कलियुग के अग्रसर होने के साथ शारीरिक आकार-प्रकार तथा बल में क्रमिक ह्रास आयेगा।

स्मृति तो निश्चित रूप से क्षीण हो रही है। पूर्ववर्ती युगों में मनुष्यों की स्मृति अच्छी थी। और उन्हें आज के जैसे उग्र नौकरशाही एवं तकनीकी समाज से पाला नहीं पड़ता था। इस तरह बिना लिखे ही आवश्यक सूचना तथा विद्या सुरक्षित थी। निस्संदेह, कलियुग में सारी बातों में नाटकीय परिवर्तन आया है।

*१९८४ वर्ष के लिए अमेरिका के आँकड़ों के संक्षेपण के अनुसार, अमेरिका में १९८२ में लगभग ३७ लाख जीवित बच्चों का जन्म हुआ और जन्म के समय की औसत जीवन-संभावना ७४ वर्ष ६ मास थी। किन्तु जब जीवित-जन्म-संख्या में १५ लाख गर्भपात जोड़ दिए गए, तब गर्भित शिशुओं की औसत जीवन-संभावना गिर कर ५३ वर्ष रह गई।

वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदय: ।
धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २॥

शब्दार्थ

वित्तम्—धन; **एव**—केवल; **कलौ**—कलियुग में; **नृणाम्**—आदमियों में; **जन्म**—उत्तम जन्म का; **आचार**—अच्छा व्यवहार; **गुण**—तथा सद्गुण; **उदय:**—प्रकट होने का कारण; **धर्म**—धार्मिक कर्तव्य; **न्याय**—तथा तर्क की; **व्यवस्थायाम्**—व्यवस्था में; **कारणम्**—कारण; **बलम्**—बल; **एव**—एकमात्र; **हि**—निस्सन्देह।

कलियुग में एकमात्र सम्पत्ति को ही मनुष्य के उत्तम जन्म, उचित व्यवहार तथा सद्गुणों का लक्षण माना जायेगा। कानून तथा न्याय तो मनुष्य के बल के अनुसार ही लागू होंगे।

तात्पर्य : कलियुग में मनुष्य अपनी आर्थिक स्थिति के ही अनुसार उच्च, मध्यम या निम्न श्रेणी का माना जाता है, फिर उसका ज्ञान, संस्कृति तथा आचरण चाहे जैसे हों। इस युग में समृद्ध पड़ोस वाले अनेक औद्योगिक तथा व्यापारिक नगर धनियों के लिए सुरक्षित हैं। राजसी दिखने वालेघरों के भीतर सुन्दर वृक्षों की पंक्तिबद्ध सड़कों पर अनेक दुराचारी पापमय कृत्यों का होना कोई असामान्य बात नहीं होती। वैदिक कसौटी के अनुसार केवल वह व्यक्ति उच्च श्रेणी का माना जाता है यदि उसका आचरण प्रबुद्ध है और उसका आचरण प्रबुद्ध तब माना जाता है यदि उसके कार्यकलाप सारे प्राणियों के सुख का सम्वर्धन करने वाले हों। प्रत्येक जीव मूलत: सुखी है क्योंकि सारे जीवों में एक नित्य आध्यात्मिक स्फुलिंग रहता है, जो ईश्वर के दैवी सचेतन स्वभाव का भाग

होता है। जब हमारी मूल आध्यात्मिक जागरूकता जागृत हो उठती है, तो हम सहज ही आनन्द तथा ज्ञान और शान्ति में तुष्ट हो जाते हैं। एक प्रबुद्ध या शिक्षित मनुष्य को अपना आध्यात्मिक ज्ञान जागृत करने का प्रयास करना चाहिए और अन्यों को भी उस दिव्य चेतना का अनुभव कराने में सहायक बनना चाहिए।

महान् पाश्चात्य दार्शनिक शूकरात ने कहा था कि यदि मनुष्य को प्रबुद्ध बना दिया जाय तो वह स्वत: उत्तम कर्म करेगा और श्रील प्रभुपाद इस तथ्य की पुष्टि करते थे। किन्तु कलियुग में इस स्पष्ट सत्य की उपेक्षा की जाती है। और ज्ञान तथा सद्गुण की खोज का स्थान धन के लिए दूषित पाशविक स्पर्धा ने ले लिया है। जो लोग इसमें सफल होते हैं, वे आधुनिक समाज के उच्च लोग बन जाते हैं और उनकी उपभोग शक्ति उन्हें सर्वाधिक आदरणीय, राजसी तथा शिक्षित पद दिलाती है।

यह श्लोक यह भी बतलाता है कि कलियुग में केवल बल (*बलम् एव*) ही कानून तथा न्याय का निर्धारण करेगा। हमें यह स्मरण रखना होगा कि प्रगतिशील वैदिक संस्कृति में आध्यात्मिक तथा सर्वसाधारण जगतों में कोई कृत्रिम द्वन्द्व नहीं रहता था। सारे सभ्य लोग इसे मानकर चलते थे कि ईश्वर सर्वत्र है और उनके नियम सभी प्राणियों पर लागू होते हैं। इसलिए *धर्म* शब्द मनुष्य की सामाजिक या सार्वजनिक बाध्यता के साथ ही धार्मिक कर्तव्य का भी सूचक है। इस तरह अपने परिवार का कर्तव्य समझ कर ध्यान रखना भी धर्म है और भगवान् की प्रेमाभक्ति में संलग्न होना भी धर्म है। किन्तु यह श्लोक इंगित करता है कि कलियुग में ''जिसकी लाठी उसकी भैस'' वाली कहावत चरितार्थ होती रहेगी।

इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय में हमने देखा कि यह सिद्धान्त किस तरह भारत के भूतकाल तक घुस चुका था। इसी तरह जब पाश्चात्य जगत को ऐशियाई देशों के ऊपर राजनीतिक, आर्थिक तथा टेक्नालाजिकल नेतृत्व प्राप्त हुआ तो यह बेहूदा प्रचार किया गया कि भारतीय बल्कि सामान्यतया सभी गैर-पाश्चात्य, धर्म, धर्म-विज्ञान और दर्शन आदिम अवस्था में हैं और अवैज्ञानिक हैं—मात्र कपोल कल्पना और अंधविश्वास हैं। सौभाग्यवश अब यह उद्धत तथा तर्कशून्य दृष्टिकोण समाप्त हो रहा है और सारे विश्व के लोग भारत के संस्कृत साहित्य में उपलब्ध आध्यात्मिक दर्शन तथा विज्ञान की लड़खड़ाती सम्पत्ति की प्रशंसा करने लगे हैं। दूसरे शब्दों में, अनेक बुद्धिमान लोग परम्परागत पाश्चात्य धर्म को प्रामाणिक इसीलिए नहीं मानते क्योंकि पश्चिम ने राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से मानवता के अन्य भौगोलिक तथा धार्मिक रूपों को दमित किया है। इस तरह अब आशा बँधी है कि आध्यात्मिक मामलों को हथियारों की परीक्षा से नहीं, दार्शनिक स्तर पर वाद-विवाद से हल किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त यह श्लोक यह भी इंगित करता है कि कानून का नियम सबल तथा निर्बल पर समान रूप से लागू नहीं होगा। अनेक राष्ट्रों में से न्याय उन्हीं को मिल पा रहा है, जो खर्च कर सकते हैं और इसके लिए लड़ाई लड़ सकते हैं। सभ्य राज्य में हर पुरुष, स्त्री तथा बालक को

उपयुक्त कानूनी पद्धति तक समान तथा जल्द पहुँच होनी चाहिए। आधुनिक काल में हम इसे कभी कभी मानव अधिकार कह कर द्योतित करते हैं। निश्चय ही, कलियुग में मानव अधिकारों का हनन स्पष्ट दिखता है।

दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

दाम्-पत्ये—पति-पत्नी के सम्बन्ध में; अभिरुचिः—ऊपरी आकर्षण; हेतुः—कारण; माया—धोखा; एव—निस्सन्देह; व्यावहारिके—व्यापार में; स्त्रीत्वे—स्त्री होने में; पुंस्त्वे—पुरुष होने में; च—तथा; हि—निस्सन्देह; रतिः—कामशास्त्र; विप्रत्वे—ब्राह्मण होने में; सूत्रम्—जनेऊ; एव—एकमात्र; हि—निस्सन्देह।

पुरुष तथा स्त्रियाँ केवल ऊपरी आकर्षण के कारण एकसाथ रहेंगे और व्यापार की सफलता कपट पर निर्भर करेगी। पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व का निर्णय कामशास्त्र में उनकी निपुणता के अनुसार किया जायेगा और ब्राह्मणत्व जनेऊ पहनने पर निर्भर करेगा।

तात्पर्य : जिस तरह मानव जीवन का एक महान् तथा गम्भीर उद्देश्य है—आध्यात्मिक मोक्ष—उसी तरह विवाह तथा शिशु-पालन जैसे मूलभूत मानव संस्थानों को भी उसी महान् उद्देश्य के प्रति समर्पित होना चाहिए। दुर्भाग्यवश, वर्तमान युग में काम-वासना की तुष्टि ही विवाह का सर्वोपरि, भले ही वह एकमात्र न हो, कारण बन चुका है।

कामोत्तेजना, जो हर प्रजाति के नरों तथा मादाओं को शारीरिक रूप से संयुक्त होने के लिए प्रेरित करती है और उच्च प्रजातियों में भी भावात्मक रूप से प्रेरित करती है, अन्ततोगत्वा स्वाभाविक उत्तेजना नहीं है क्योंकि यह शरीर के साथ आत्मा की अस्वाभाविक पहचान पर आधारित है। स्वयं जीवन आध्यात्मिक प्रक्रिया है। जैव मशीन अर्थात् शरीर को जीवन देने वाला आत्मा ही है। चेतना आत्मा की व्यक्त शक्ति है अतएव चेतना मूलत: नितान्त आध्यात्मिक घटना है। जब जीवन या चेतना जैव मशीन के भीतर सीमित रहती है और भ्रमवश अपने को मशीन मान बैठती है, तो यह शरीर प्राप्त होता है और काम-वासना जागृत होती है।

ईश्वर मनुष्य जीवन को इस मायामय जगत के गुण को सुधारने और शुद्ध दैवी जगत की तृप्ति तक लौट जाने के लिए सुअवसर के रूप में देखना चाहता है। किन्तु भौतिक शरीर के साथ हमारी पहचान अत्यन्त पुरानी है और अधिकांश लोगों के लिए भौतिकता में ढले मन की माँगों से अपने को अलग कर पाना कठिन है। इसलिए वैदिक शास्त्र पवित्र विवाह की संस्तुति करते हैं जिसमें तथाकथित पुरुष और तथाकथित स्त्री धार्मिक आदेशों के अनुसार नियमित आध्यात्मिक विवाह में बँध सकें। इस प्रकार आत्म-साक्षात्कार का इच्छुक व्यक्ति, जिसने पारिवारिक जीवन का चुनाव किया है, अपनी इन्द्रियों के लिए पर्याप्त तुष्टि प्राप्त कर सकता है और उसी के साथ ही धार्मिक आदेशों का पालन करके अपने हृदय में भगवान् को भी प्रसन्न कर सकता है। तब भगवान् उसको भौतिक इच्छा से मुक्त कर देते हैं।

कलियुग में यह गहरी समझ लुप्तप्राय हो चुकी है और जैसाकि इस श्लोक में वर्णन हुआ है, स्त्री तथा पुरुष पशुओं की तरह केवल मांस, हाड़, झिल्ली, रक्त इत्यादि से बने शरीर के आकर्षण से संयुक्त होते हैं। दूसरे शब्दों में, हमारे आधुनिक ईश्वर विहीन समाज मानवता की छिछली कमजोर बुद्धि विरले ही शाश्वत आत्मा के स्थूल भौतिक आवरण को बेध पाती है। इस तरह अधिकांशतया पारिवारिक जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य तथा महत्त्व समाप्त हो चुका है।

इस श्लोक से जो गौण बात स्थापित होती है, वह यह है कि कलियुग में वह स्त्री ''अच्छी'' मानी जाती है, जो विषयवासना की दृष्टि से आकर्षक हो और विषयवासना में निपुण हो। इसी तरह विषयवासना की दृष्टि से आकर्षक पुरुष ही ''अच्छा'' है। इस उथलेपन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है बीसवीं सदी के लोगों द्वारा अविश्वसनीय रूप से मनोरंजन उद्योग के गवैयों तथा अभिनेताओं तथा अन्य महत्त्वपूर्ण लोगों की ओर विशेष ध्यान देना। विभिन्न शरीरों में विषयवासना के अनुभवों का पीछा करते रहना नई बोतलों में पुरानी शराब को पीने जैसा है। किन्तु कलयिुग में कुछ ही लोग इसे समझ सकते हैं।

अन्त में इस श्लोक में यह कहा गया है कि कलियुग में कोई भी मनुष्य वेश धारण करने के आधार पर पुरोहित या ब्राह्मण माना जायेगा। भारत में ब्राह्मण लोग जनेऊ पहनते हैं और विश्व के अन्य भागों में पुरोहित अन्य आभूषण तथा प्रतीक धारण करते हैं। किन्तु कलियुग में एकमात्र प्रतीक के बल पर कोई व्यक्ति धार्मिक नेता बन सकेगा भले ही ईश्वर के विषय में वह अज्ञानी हो।

लिङ्गमेवाश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम् ।
अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥ ४॥

शब्दार्थ

लिङ्गम्—बाह्य प्रतीक; एव—केवल; आश्रम-ख्यातौ—मनुष्य के आश्रम को जानने में; अन्योन्य—पारस्परिक; आपत्ति—विनिमय; कारणम्—कारण; अवृत्त्या—जीविका के अभाव से; न्याय—विश्वसनीयता में; दौर्बल्यम्—दुर्बलता में; पाण्डित्ये—विद्वत्ता में; चापलम्—चालाकी-भरे; वचः—शब्द।

मनुष्य का आध्यात्मिक पद मात्र बाह्य प्रतीकों से सुनिश्चित होगा और इसी आधार पर लोग एक आश्रम छोड़ कर दूसरे आश्रम को स्वीकार करेंगे। यदि किसी की जीविका उत्तम नहीं है, तो उस व्यक्ति के औचित्य में सन्देह किया जायेगा। और जो चिकनी-चुपड़ी बातें बनाने में चतुर होगा वह विद्वान पंडित माना जायेगा।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में बतलाया गया था कि कलियुग में पुरोहित वर्ग केवल बाह्य प्रतीकों के द्वारा पहचाना जायेगा और इस श्लोक में उसी बात को समाज के अन्य वर्गों—राजनैतिक या सैन्य वर्ग, व्यापारी अथवा उत्पादक वर्ग तथा श्रमिकों या कारीगरों—पर भी लागू किया गया है।

आधुनिक समाज शास्त्रियों ने यह दिखा दिया है कि उन समाजों में जिनका संचालन मुख्यता प्रोटेस्टैन्ट नीतिशास्त्र द्वारा होता है, गरीबी को आलस्य, गंदगी, मूर्खता, अनैतिकता तथा व्यर्थता का चिह्न माना जाता है। किन्तु ईश-भावनाभावित समाज में अनेक व्यक्ति स्वेच्छा से अपना जीवन ज्ञान

तथा अध्यात्म की खोज में समर्पित करते हैं, भौतिक उपलब्धि के लिए नहीं। इस तरह सरल तथा तपस्यामय जीवन के लिए वरीयता, बुद्धि, आत्मसंयम तथा जीवन के उच्च आदर्श के प्रति संवेदनशीलता को सूचित कर सकती है। निस्सन्देह, गरीबी (निर्धनता) से इन गुणों की स्थापना अपने आप नहीं होती किन्तु कभी कभी उनका परिणाम हो सकती है। किन्तु कलियुग में प्राय: इस सम्भावना को भुला दिया जाता है।

बौद्धिकता इस मोहने वाले कलियुग की अन्य दुर्घटना है। आधुनिक तथाकथित दार्शनिकों तथा विज्ञानियों ने विद्या के हर क्षेत्र में ऐसी पारिभाषिक शब्दावली बना ली है कि जब वे भाषण देते हैं, तो लोग उन्हें इसलिए विद्वान समझते हैं क्योंकि वे जो बोलते हैं उसे अन्य कोई नहीं समझ सकता। पाश्चात्य संस्कृति में ग्रीक अध्यापक सर्वप्रथम लोग थे, जो बुद्धिमत्ता तथा शुद्धि से भी ऊपर अलंकार तथा दक्षता पर वाद-विवाद करते थे। बीसवीं सदी में तो धोखाधड़ी पल्लवित हो ही रही है। आधुनिक विश्वविद्यालयों में नाममात्र की बुद्धिमत्ता है यद्यपि टेक्निकल आँकडे अनन्त हैं। यद्यपि अनेक आधुनिक चिन्तक उच्चतर आध्यात्मिक सत्य से अनजान होते हैं, किन्तु वे बहुत अच्छे ''वक्ता'' होते हैं और अधिकांश लोग उनके अज्ञान को भाँप नहीं पाते।

अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु ।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

अनाढ्यता—गरीबी, निर्धनता; एव—केवल; असाधुत्वे—असाधु होने में; साधुत्वे—सफलता में; दम्भ:—दिखावा; एव—केवल; तु—तथा; स्वी-कार:—शाब्दिक स्वीकृति; एव—केवल; च—तथा; उद्वाहे—विवाह में; स्नानम्—जल से स्नान करने; एव—केवल; प्रसाधनम्—शरीर को स्वच्छ रखना तथा अलंकृत करना।

यदि किसी व्यक्ति के पास धन नहीं है, तो वह अपवित्र माना जायेगा और दिखावे को गुण मान लिया जायेगा। विवाह मौखिक स्वीकृति के द्वारा व्यवस्थित होगा और कोई भी व्यक्ति अपने को जनता के बीच आने के लिए योग्य समझेगा यदि उसने केवल स्नान कर लिया हो।

तात्पर्य : *दम्भ* शब्द आत्म-प्रवंचक का—ऐसे व्यक्ति का सूचक है, जो सन्त स्वभाव वाला नहीं बनना चाहता अपितु ऊपर से सन्त प्रतीत होना चाहता है। कलियुग में ऐसे धार्मिक दम्भियों की संख्या बहुत बड़ी है, जो यह दावा करते हैं कि एकमात्र उन्हें ही रास्ता मालूम है, एकमात्र उन्हें ही सत्य का पता है और एकमात्र उन्हें ही प्रकाश प्राप्त है। अनेक मुस्लिम देशों में इस मनोवृत्ति के कारण धार्मिक स्वतंत्रता का निर्ममता से दमन हुआ है, जिससे प्रबुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान का सुअवसर विनष्ट हो गया है। सौभाग्यवश अधिकांश पाश्चात्य जगत में स्वतंत्र धार्मिक अभिव्यक्ति की प्रणाली है। किन्तु पश्चिम में भी दम्भी लोग दूसरे धर्मों के निष्ठावान तथा सन्त स्वभाव वाले अनुयायियों को म्लेच्छ और दानव मानते हैं।

सामान्यतया पाश्चात्य धार्मिक उन्मादी अनेक बुरी आदतों में यथा धूम्रपान, सुरापान, यौन, द्यूत-

क्रीड़ा तथा पशु-हत्या से ग्रस्त रहते हैं। यद्यपि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अनुयायी अवैध यौन, नशा, जुआ खेलना तथा पशु-हत्या का बहिष्कार करते हैं और यद्यपि वे अपना जीवन ईश्वर के निरन्तर महिमागान में समर्पित कर देते हैं किन्तु दम्भी लोग यह दावा करते हैं कि ऐसी कठोर तपस्या तथा ईश्वर-भक्ति ''शैतान की चालें'' हैं। इस तरह पापी लोग धार्मिक बन जाते हैं और सन्तों को आसुरी करार दिया जाता है। आध्यात्मिकता की प्रारम्भिक अनिवार्यताओं को भी समझ पाने की यह दयनीय असमर्थता कलियुग का प्रधान लक्षण है।

इस युग में विवाह-प्रथा का अवमूल्यन होगा। निश्चय ही, विवाह प्रमाण-पत्र को कभी कभी रूखेपन से ''कागज का टुकड़ा'' कह कर ठुकरा दिया जाता है। विवाह के आध्यात्मिक प्रयोजन को भुलाते हुए तथा यौन को गृहस्थ जीवन का हुए, कामी पुरुष तथा स्त्रियाँ कानूनी सम्बन्ध के उत्तरदायित्व और कष्टप्रद औपचारिकताओं के बिना ही धड़ल्ले से यौन-व्यापार में रत होते हैं। ऐसे मूर्ख लोग तर्क प्रस्तुत करते हैं कि, ''यौन स्वाभाविक है''। किन्तु यदि यौन स्वाभाविक है, तो गर्भावस्था तथा शिशु-जन्म भी उतने ही स्वाभाविक हैं। और शिशु के लिए यह स्वाभाविक है कि वह पिता तथा माता द्वारा स्नेहपूर्वक पाला जाय और जीवन-भर वही उसके माता-पिता रहें। मनोवैज्ञानिक अध्ययन इसकी पुष्टि करते हैं कि शिशु की देखरेख माता तथा पिता दोनों करें, अत: यह स्पष्ट है कि यौनाचार के साथ स्थायी विवाह व्यवस्था का होना स्वाभाविक है। दम्भी लोग अनियंत्रित यौन की सम्पुष्टि यह कह कर करते हैं कि यह ''स्वाभाविक है'' किन्तु यौन के स्वाभाविक परिणाम—गर्भधारण—से बचने के लिए, वे गर्भनिरोधकों का इस्तेमाल करते हैं, जो वृक्षों पर नहीं लगते। निस्सन्देह, गर्भनिरोध बिल्कुल स्वाभाविक नहीं। इस तरह दिखावे तथा मूर्खता का कलियुग में प्राधान्य है।

इस श्लोक का अन्त इस कथन से होता है कि वर्तमान युग में लोग अपने शरीरों को समुचित रीति से अलंकृत नहीं करेंगे। मनुष्य को चाहिए कि विविध धार्मिक आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत करे। वैष्णवजन अपने शरीर में *तिलक* अंकित करते हैं, जो भगवान् के पावन नाम से अभिमंत्रित होता है। किन्तु कलियुग में धार्मिक तथा भौतिक औपचारिकताओं तक का बिना समझे-बूझे बहिष्कार किया जाता है।

दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम् ।
उदरंभरता स्वार्थः सत्यत्वे धाष्ट्‍र्यमेव हि ।
दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

दूरे—दूर स्थित; **वारि**—जल का; **अयनम्**—आगार; **तीर्थम्**—तीर्थस्थान; **लावण्यम्**—सौन्दर्य; **केश**—बाल; **धारणम्**—धारण करना; **उदरम्-भरता**—पेट का भरण; **स्व-अर्थः**—जीवन-लक्ष्य; **सत्यत्वे**—तथाकथित सत्य में; **धाष्ट्‍र्यम्**—ढिठाई; **एव**—केवल; **हि**—निस्सन्देह; **दाक्ष्यम्**—दक्षता; **कुटुम्ब-भरणम्**—परिवार का पालन-पोषण; **यशः**—कीर्ति के; **अर्थे**—हेतु; **धर्म-सेवनम्**—धार्मिक नियमों का पालन।

तीर्थस्थान को दूरस्थ जलाशय और सौन्दर्य को मनुष्य की केश-सज्जा पर आश्रित, माना जायेगा। उदर-भरण जीवन का लक्ष्य बन जायेगा और जो जितना ढीठ होगा उसे उतना ही सत्यवादी मान लिया जायेगा। जो व्यक्ति परिवार का पालन-पोषण कर सकता है, वह दक्ष समझा जायेगा। धर्म का अनुसरण मात्र यश के लिए किया जायेगा।

तात्पर्य : भारत में अनेक तीर्थस्थान हैं जहाँ पवित्र नदियाँ बहती हैं। मूर्ख लोग इन नदियों में स्नान करके अपने पापों से मुक्ति की खोज करते हैं किन्तु वे इन स्थानों में निवास करने वाले विद्वान भगवद्भक्तों से उपदेश ग्रहण नहीं करते। मनुष्य को केवल अनुष्ठानिक स्नान करने नहीं अपितु आध्यात्मिक प्रकाश पाने के लिए तीर्थस्थान में जाना चाहिए।

इस युग में लोग विभिन्न शैलियों से अपने केश को व्यवस्थित करते नहीं थकते और इस तरह मुखमण्डल के सौन्दर्य और कामुकता को बढ़ाना चाहते हैं। वे यह नहीं जानते कि वास्तविक सौन्दर्य तो हृदय के भीतर से, आत्मा से आता है और केवल वही व्यक्ति सही अर्थ में आकर्षक है, जो शुद्ध है। ज्यों-ज्यों इस युग में कठिनाइयाँ बढ़ती जायेंगी, उदर-भरण को सफलता का चिह्न माना जायेगा और जो अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकता है, वह आर्थिक मामलों में बुद्धिमान माना जायेगा। यदि धर्म का पालन होगा तो वह मात्र यश पाने के लिए होगा और भगवान् की किसी अनिवार्य जानकारी के बिना सम्पन्न होगा।

एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ।
ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ॥ ७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; प्रजाभिः—जनता से; दुष्टाभिः—भ्रष्ट की हुई; आकीर्णे—एकत्र हुई; क्षिति-मण्डले—पृथ्वीमण्डल पर; ब्रह्म—ब्राह्मणों; विट्—वैश्यगण; क्षत्र—क्षत्रिय; शूद्राणाम्—तथा शूद्रों के बीच; यः—जो भी; बली—सबसे बलवान; भविता—होगा; नृपः—राजा।

इस तरह ज्यों-ज्यों पृथ्वी भ्रष्ट जनता से भरती जायेगी, त्यों-त्यों समस्त वर्णों में से जो अपने को सबसे बलवान दिखला सकेगा वह राजनैतिक शक्ति प्राप्त करेगा।

प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ।
आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम् ॥ ८॥

शब्दार्थ

प्रजाः—नागरिक; हि—निस्सन्देह; लुब्धैः—लालची; राजन्यैः—राजसी वर्ग के द्वारा; निर्घृणैः—निर्दय; दस्यु—सामान्य चोरों के; धर्मभिः—स्वभाव के अनुसार कर्म करते हुए; आच्छिन्न—हर लिए गये; दार—पत्नी; द्रविणाः—तथा सम्पत्ति; यास्यन्ति—जायेंगे; गिरि—पर्वत; काननम्—तथा जंगल में।

जनता ऐसे लोभी तथा निष्ठुर शासकों द्वारा, जिनका आचरण सामान्य चोरों जैसा होगा, अपनी पत्नियाँ तथा सम्पत्ति छीन लिये जाने पर, पर्वतों तथा जंगलों में भाग जायेगी।

शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ।
अनावृष्ट्या विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

शाक—पत्तियाँ; मूल—जड़ें; आमिष—मांस; क्षौद्र—जंगली शहद; फल—फल; पुष्प—फूल; अष्टि—तथा बीज; भोजनाः—खाकर; अनावृष्ट्या—सूखे के कारण; विनङ्क्ष्यन्ति—विनष्ट हो जायेंगे; दुर्भिक्ष—अकाल; कर—तथा टैक्स द्वारा; पीडिताः—पीड़ित।

अकाल तथा अत्यधिक कर से सताये हुए लोग पत्तियाँ, जड़ें, मांस, जंगली शहद, फल, फूल तथा बीज खाने के लिए बाध्य होंगे। सूखे से पीड़ित होकर वे पूर्णतया विनष्ट हो जायेंगे।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* में हमारे ग्रह (लोक) के भविष्य का प्रामाणिक वर्णन हुआ है। जिस तरह वृक्ष से विलग पत्ती सूख जाती है और विनष्ट हो जाती है उसी तरह जब मानव समाज का सम्बन्ध भगवान् से टूट जाता है, तो हिंसा तथा अव्यवस्था के कारण वह म्लान होकर बिखर जाता है। कम्प्यूटर तथा प्रक्षेपास्त्र होने पर भी यदि भगवान् वर्षा नहीं करें तो हम भूखों मर जायेंगे।

शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ।
क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तप्स्यन्ते च चिन्तया ॥ १० ॥

शब्दार्थ

शीत—जाड़ा; वात—हवा; आतप—तपन; प्रावृट्—मूसलाधार वर्षा; हिमैः—तथा बर्फ से; अन्योन्यतः—लड़ने-झगड़ने से; प्रजाः—नागरिक; क्षुत्—भूख; तृड्भ्याम्—तथा प्यास से; व्याधिभिः—रोगों से; च—भी; एव—निस्सन्देह; सन्तप्स्यन्ते—उन्हें महान् कष्ट भोगना होगा; च—तथा; चिन्तया—चिन्ता से।

जनता को शीत, वात, तपन, वर्षा तथा हिम से अत्यधिक कष्ट उठाना पड़ेगा। लोग आपसी झगड़ों, भूख, प्यास, रोग तथा अत्यधिक चिन्ता से भी पीड़ित होते रहेंगे।

त्रिंशद्विंशति वर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

त्रिंशत्—तीस; विंशति—बीस और; वर्षाणि—वर्ष; परम-आयुः—अधिकतम आयु; कलौ—कलियुग में; नृणाम्—मनुष्यों की।

कलियुग में मनुष्यों की अधिकतम आयु पचास वर्ष हो जायेगी।

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ।
वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥
पाषण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ।
चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥
शूद्रप्रायेषु वर्णेषु च्छागप्रायासु धेनुषु ।

गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बन्धुषु ॥ १४॥
अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ।
विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥ १५॥
इत्थं कलौ गतप्राये जनेषु खरधर्मिषु ।
धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥ १६॥

शब्दार्थ

क्षीयमाणेषु—छोटा होकर; देहेषु—शरीर में; देहिनाम्—सारे जीवों के; कलि-दोषतः—कलियुग के दूषण से; वर्ण-आश्रम-वताम्—वर्णाश्रम समाज के सदस्यों के; धर्मे—उनके धर्मों के; नष्टे—नष्ट हो जाने पर; वेद-पथे—वेदों के मार्ग पर; नृणाम्—सारे मनुष्यों के लिए; पाषण्ड-प्रचुरे—प्रायः नास्तिकता; धर्मे—धर्म में; दस्यु-प्रायेषु—प्रायः चोर; राजसु—राजा; चौर्य—लूट; अनृत—झूठ बोलना; वृथा-हिंसा—व्यर्थ की हत्या; नाना—विविध; वृत्तिषु—पेशों में; वै—निस्सन्देह; नृषु—मनुष्यों में; शूद्र-प्रायेषु—प्रायः निम्न वर्ग के शूद्र; वर्णेषु—तथाकथित वर्णों में; छाग-प्रायासु—बकरियों जैसी; धेनुषु—गौवें; गृह-प्रायेषु—घरों जैसे; आश्रमेषु—आध्यात्मिक कुटिया; यौन-प्रायेषु—विवाह से आगे तक न पहुँचने वाले; बन्धुषु—पारिवारिक बन्धन; अणु-प्रायासु—अत्यन्त लघु; ओषधीषु—जड़ी-बूटियों में; शमी-प्रायेषु—शमी वृक्षों की तरह; स्थास्नुषु—सारे वृक्षों में; विद्युत्-प्रायेषु—सदैव बिजली प्रकट करते हुए; मेघेषु—बादलों में; शून्य-प्रायेषु—धार्मिक जीवन से शून्य; सद्मसु—घरों में; इत्थम्—इस प्रकार; कलौ—कलियुग में; गत-प्राये—प्रायः समाप्त हुए; जनेषु—लोगों में; खर-धर्मिषु—गधों जैसे गुणों वाले; धर्म-त्राणाय—धर्म के उद्धार हेतु; सत्त्वेन—सतोगुण में; भगवान्—भगवान्; अवतरिष्यति—अवतरित होगा।

कलियुग समाप्त होने तक सभी प्राणियों के शरीर आकार में अत्यन्त छोटे हो जायेंगे और वर्णाश्रम मानने वालों के धार्मिक सिद्धान्त विनष्ट हो जायेंगे। मानव समाज वेदपथ को पूरी तरह भूल जायेगा और तथाकथित धर्म प्रायः नास्तिक होगा। राजे प्रायः चोर हो जायेंगे; लोगों का पेशा चोरी करना, झूठ बोलना तथा व्यर्थ हिंसा करना हो जायेगा और सारे सामाजिक वर्ण शूद्रों के स्तर तक नीचे गिर जायेंगे। गौवें बकरियों जैसी होंगी; आश्रम संसारी घरों से भिन्न नहीं होंगे तथा पारिवारिक सम्बन्ध तात्कालिक विवाह बंधन से आगे नहीं जायेंगे। अधिकांश वृक्ष तथा जड़ी-बूटियाँ छोटी होंगी और सारे वृक्ष बौने शमी वृक्षों जैसे प्रतीत होंगे। बादल बिजली से भरे होंगे; घर पवित्रता से रहित तथा सारे मनुष्य गधों जैसे हो जायेंगे। उस समय भगवान् पृथ्वी पर प्रकट होंगे। वे शुद्ध सतोगुण की शक्ति से कर्म करते हुए शाश्वत धर्म की रक्षा करेंगे।

तात्पर्य : इन लोकों में यह महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि इस युग में तथाकथित धर्म नास्तिक होंगे (*पाषण्डप्रचुरे धर्मे*)। *भागवत* की भविष्यवाणी की पुष्टि में हाल ही में संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने यह आदेश दिया है कि धर्म होने के लिए विश्वास की प्रणाली में किसी परम पुरुष को मान्यता देना आवश्यक नहीं है। यही नहीं, प्राच्य देशों से लाये गये अनेक नास्तिक, शून्यवादी विश्वास प्रणालियों ने आधुनिक नास्तिक वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट किया है, जो प्राच्य तथा पाश्चात्य शून्यवाद की समानताओं की स्थापना आकर्षक रहस्यमयी पुस्तकों में करते हैं।

इन श्लोकों में कलियुग के अनेक नीरस लक्षणों का स्पष्ट वर्णन हुआ है। अन्ततः इस युग के अन्त में, भगवान् कृष्ण कल्कि के रूप में अवतरित होंगे और पृथ्वी से पूर्णरूपेण आसुरी मनोवृत्ति

वाले लोगों का सफाया कर देंगे।

चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ।
धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये ॥ १७॥

शब्दार्थ

चर-अचर—सारे जड़ तथा चेतन प्राणी; गुरोः—गुरु का; विष्णोः—विष्णु का; ईश्वरस्य—भगवान् का; अखिल—सारे; आत्मनः—परमात्मा का; धर्म-त्राणाय—धर्म की रक्षा के लिए; साधूनाम्—साधु पुरुषों के; जन्म—जन्म; कर्म—सकाम कर्म की; अपनुत्तये—समाप्ति के लिए।.

भगवान् विष्णु जोकि सारे जड़ तथा चेतन प्राणियों के गुरु तथा सबों के परमात्मा हैं, धर्म की रक्षा करने तथा अपने सन्त भक्तों को भौतिक कर्मफल से छुटकारा दिलाने के लिए जन्म लेते हैं।

शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ १८॥

शब्दार्थ

शम्भल-ग्राम—शम्भल नामक गाँव में; मुख्यस्य—प्रमुख नागरिक के; ब्राह्मणस्य—ब्राह्मण के; महा-आत्मनः—महान् आत्मा; भवने—घर में; विष्णुयशसः—विष्णुयशा के; कल्किः—भगवान् कल्कि; प्रादुर्भविष्यति—प्रकट होगा।.

भगवान् कल्कि शम्भल ग्राम के अत्यन्त निपुण ब्राह्मण महात्मा विष्णुयशा के घर में प्रकट होंगे।

अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ।
असिनासाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९॥
विचरन्नाशुना क्षौण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ।
नृपलिङ्गच्छदो दस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥ २०॥

शब्दार्थ

अश्वम्—अपने घोड़े; आशु-गम्—तेज चलने वाले; आरुह्य—सवार होकर; देवदत्तम्—देवदत्त पर; जगत्-पतिः—ब्रह्माण्ड के स्वामी; असिना—अपनी तलवार से; असाधु-दमनम्—असाधुओं का दमन करने वाला (घोड़ा); अष्ट—आठ; ऐश्वर्य—योग ऐश्वर्यों; गुण—तथा भगवान् के दिव्य गुणों से; अन्वितः—युक्त; विचरन्—विचरण करते हुए; आशुना—तेज; क्षौण्याम्—पृथ्वी पर; हयेन—अपने घोड़े द्वारा; अप्रतिम—अद्वितीय; द्युतिः—तेज वाला; नृप-लिङ्ग—राजाओं के वेश में; छदः—अपने को भेस बदल कर रहते हुए; दस्यून्—चोरों को; कोटिशः—करोड़ों; निहनिष्यति—मार डालेगा।.

ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान् कल्कि अपने तेज घोड़े देवदत्त पर सवार होंगे और हाथ में तलवार लेकर, ईश्वर के आठ योग ऐश्वर्यों तथा आठ विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करते हुए, पृथ्वी पर विचरण करेंगे। वे अपना अद्वितीय तेज प्रदर्शित करते हुए तथा तेज चाल से सवारी करते हुए, उन करोड़ों चोरों का वध करेंगे जो राजाओं के वेश में रहने का दुस्साहस कर रहे होंगे।

तात्पर्य : इन श्लोकों में भगवान् कल्कि की लोमहर्षक लीलाओं का वर्णन हुआ है। कोई भी व्यक्ति ऐसे शक्तिशाली सुन्दर व्यक्ति की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहेगा जो बिजली की चाल वाले अद्भुत घोड़े पर सवार होकर अपने हाथ में तलवार लेकर क्रूर आसुरी लोगों को दण्ड दे रहा हो और उनका विध्वंस कर रहा हो।

निस्सन्देह, उन्मादी भौतिकतावादी लोग यह तर्क कर सकते हैं कि भगवान् कल्कि का यह चित्र मानव मन की उपज है—पौराणिक देवता का चित्र है, जो उन लोगों द्वारा चित्रित किया गया है जिनका विश्वास किसी श्रेष्ठ व्यक्ति पर होता है। किन्तु यह तर्क युक्ति संगत नहीं है और न ही इसमें कोई दम है। यह कतिपय लोगों का मत है। हमें जल चाहिए किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य जल उत्पन्न करता है। हमें भोजन, आक्सीजन तथा अन्य बहुत-सी वस्तुओं की आवश्यकता होती है जिन्हें हम उत्पन्न नहीं करते। चूँकि हमारा सामान्य अनुभव यही है कि हमारी आवश्यकताएँ बाह्य जगत में विद्यमान प्राप्य वस्तुओं के अनुरूप हैं अतएव भगवान् की आवश्यकता से यह सूचित होता है कि भगवान् का अस्तित्व है। दूसरे शब्दों में, प्रकृति हमें उन वस्तुओं की आवश्यकता का ज्ञान कराती है, जो वास्तव में विद्यमान होती हैं और जिनकी आवश्यकता हमारे कल्याण के लिए होती है। इसी तरह हमें ईश्वर की आवश्यकता का अनुभव होता है क्योंकि हम ईश्वर के अंश हैं और उनके बिना रह नहीं सकते। कलियुग के अन्त में यही ईश्वर बलशाली कल्कि अवतार के रूप में प्रकट होगा और असुरों के दूषण का सफाया कर देगा।

अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै ।
वासुदेवाङ्गरागातिपुण्यगन्धानिलस्पृशाम् ।
पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; तेषाम्—उनमें से; भविष्यन्ति—होंगे; मनांसि—मन; विशदानि—स्पष्ट; वै—निस्सन्देह; वासुदेव—भगवान् वासुदेव के; अङ्ग—शरीर का; राग—सुगन्धि पदार्थों से; अति-पुण्य—अत्यन्त पवित्र; गन्ध—गन्ध से युक्त; अनिल—वायु द्वारा; स्पृशाम्—स्पर्श किये हुओं का; पौर—नगरवासियों के; जन-पदानाम्—छोटे कस्बों तथा गाँवों के निवासियों के; वै—निस्सन्देह; हतेषु—मारे जाने पर; अखिल—सारे; दस्युषु—धूर्त राजाओं के।

जब सारे धूर्त राजा मारे जा चुकेंगे, तो शहरों तथा कस्बों के निवासी, भगवान् वासुदेव को लेपित चन्दन तथा अन्य प्रसाधनों की सुगन्धि को लाती हुई पवित्र वायु का अनुभव करेंगे और उससे उनके मन आध्यात्मिक रूप से शुद्ध हो जायेंगे।

तात्पर्य : ऐसे महान् वीर द्वारा नाटकीय ढंग से बचाया जाना जो भगवान् हो, एक दिव्य अनुभव होगा। कलियुग के अन्त में असुरों की मृत्यु के साथ ही सुगन्धित वायु चलेगी जिससे वातावरण अत्यन्त मनमोहक हो जायेगा।

तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः सम्भविष्यति ।

वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥ २२॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उनकी; प्रजा—सन्तान की; विसर्गः—उत्पत्ति; च—तथा; स्थविष्ठः—प्रचुर; सम्भविष्यति—होगा; वासुदेवे—वासुदेव में; भगवति—भगवान्; सत्त्व-मूर्तौ—सतोगुणी स्वरूप में; हृदि—हृदयों में; स्थिते—स्थित।

जब भगवान् वासुदेव बचे हुए नागरिकों के हृदयों में अपने दिव्य सात्विक रूप में प्रकट होते हैं, वे फिर से पृथ्वी की जनसंख्या को काफी बढ़ा देंगे।

यदावतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ।
कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥ २३॥

शब्दार्थ

यदा—जब; अवतीर्णः—अवतरित; भगवान्—भगवान्; कल्किः—कल्कि; धर्म-पतिः—धर्म के स्वामी; हरिः—भगवान्; कृतम्—सत्ययुग; भविष्यति—शुरू होगा; तदा—तब; प्रजा-सूतिः—प्रजा की उत्पत्ति; च—तथा; सात्त्विकी—सतोगुणी।

जब पृथ्वी पर धर्म के पालनहारे भगवान्, कल्कि के रूप में, प्रकट हो चुकेंगे, तो सत्ययुग प्रारम्भ होगा और मानव समाज सात्विक सन्तानें उत्पन्न करेगा।

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ।
एकराशौ समेष्यन्ति भविष्यति तदा कृतम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

यदा—जब; चन्द्रः—चन्द्रमा; च—तथा; सूर्यः—सूर्य; च—तथा; तथा—भी; तिष्य—तिष्य या पुष्य नक्षत्र (जो ३० २०' से लेकर १६० ४०' कर्क तक विस्तीर्ण है); बृहस्पती—बृहस्पति नक्षत्र; एक-राशौ—एक ही राशि पर (कर्कट); समेष्यन्ति—एकसाथ प्रवेश करेंगे; भविष्यति—होगा; तदा—तब; कृतम्—सत्ययुग।

जब चन्द्रमा, सूर्य तथा बृहस्पति एकसाथ कर्कट राशि में होते हैं और तीनों एक ही समय पुष्य नक्षत्र में प्रवेश करते हैं, ठीक उसी क्षण सत्य या कृतयुग प्रारम्भ होगा।

येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यन्ति च पार्थिवाः ।
ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोमसूर्ययोः ॥ २५॥

शब्दार्थ

ये—जो; अतीताः—विगत; वर्तमानाः—वर्तमान; ये—जो; भविष्यन्ति—भविष्य में होंगे; च—तथा; पार्थिवाः—पृथ्वी के राजे; ते ते—वे वे, वे सभी; उद्देशतः—संक्षिप्त कथन द्वारा; प्रोक्ताः—वर्णित; वंशीयाः—वंशों के सदस्य; सोम-सूर्ययोः—चन्द्र तथा सूर्य देव के।

इस तरह मैंने सूर्य तथा चन्द्र वंशों—भूत, वर्तमान तथा भविष्य—के सारे राजाओं का वर्णन कर दिया है।

आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।

एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

आरभ्य—प्रारम्भ करके; भवतः—आपके (परीक्षित); जन्म—जन्म; यावत्—जब तक; नन्द—महानन्दि के पुत्र राजा नन्द का; अभिषेचनम्—अभिषेक, राजतिलक; एतत्—यह; वर्ष—वर्ष; सहस्रम्—एक हजार; तु—तथा; शतम्—एक सौ; पञ्च-दश-उत्तरम्—पचास और।

तुम्हारे जन्म से लेकर राजा नन्द के राजतिलक तक ११५० वर्ष बीत चुकेंगे।

तात्पर्य : यद्यपि शुकदेव गोस्वामी, इसके पूर्व, राजवंशों के लगभग १,५०० वर्षों का वर्णन कर चुके हैं, किन्तु ऐसा समझा जाता है कि कुछ राजाओं के बीच के समय में अति व्याप्ति हुई है। इसलिए इस तिथिक्रम को प्रामाणिक मान लेना चाहिए।

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ।
तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥ २७ ॥
तेनैव ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् ।
ते त्वदीये द्विजाः काल अधुना चाश्रिता मघाः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

सप्त-ऋषीणाम्—सात ऋषियों का समूह (पाश्चात्य लोग जिसे उर्स मेजर कहते हैं); तु—तथा; यौ—जो दो नक्षत्र; पूर्वौ—प्रथम; दृश्येते—देखे जाते हैं; उदितौ—उदय हुए; दिवि—आकाश में; तयोः—दोनों (पुलह तथा क्रतु) के; तु—तथा; मध्ये—बीच में; नक्षत्रम्—नक्षत्र; दृश्यते—देखा जाता है; यत्—जो; समम्—उसी रेखा में; निशि—रात्रि के आकाश में; तेन—उस नक्षत्र से; एव—निस्सन्देह; ऋषयः—सप्तर्षिगण; युक्ताः—सम्बद्ध हैं; तिष्ठन्ति—रहते जाते हैं; अब्द-शतम्—एक सौ वर्ष; नृणाम्—मनुष्यों का; ते—ये सप्तर्षि; त्वदीये—आप में; द्विजाः—कुलीन ब्राह्मण; काले—समय में; अधुना—वर्तमान; च—तथा; आश्रिताः—स्थित हैं; मघाः—मघा नक्षत्र में।

सप्तर्षि मण्डल के सात तारों में से पुलह तथा क्रतु ही सबसे पहले रात्रिकालीन आकाश में उदय होते हैं। यदि उनके मध्य बिन्दु से होकर उत्तर दक्षिण को एक रेखा खींची जाय तो यह जिस नक्षत्र से होकर गुजरती है, वह उस काल का प्रधान नक्षत्र माना जाता है। सप्तर्षिगण एक सौ मानवी वर्षों तक उस विशेष नक्षत्र से जुड़े रहते हैं। सम्प्रति तुम्हारे जीवन-काल में वे मघा नक्षत्र में स्थित हैं।

विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः ।
तदाविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

विष्णोः—विष्णु के; भगवतः—भगवान्; भानुः—सूर्य; कृष्ण-आख्यः—कृष्ण नामक; असौ—वह; दिवम्—आध्यात्मिक आकाश तक; गतः—वापस जाकर; तदा—तब; अविशत्—प्रवेश किया; कलिः—कलियुग; लोकम्—इस जगत में; पापे—पाप में; यत्—जिस युग में; रमते—रमण करते हैं; जनः—लोग।

भगवान् विष्णु सूर्य के समान तेजवान् हैं और कृष्ण कहलाते हैं। जब वे वैकुण्ठ-लोक वापस चले गये, तो इस जगत में कलि ने प्रवेश किया और तब लोग पापकर्मों में आनन्द

लेने लगे।

यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशनास्ते रमापतिः ।
तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रन्तुं न चाशकत् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; सः—वह, श्रीकृष्ण; पाद-पद्माभ्याम्—अपने चरणकमलों से; स्पृशन्—स्पर्श करते हुए; आस्ते—रहता रहा; रमा-पतिः—लक्ष्मी देवी का पति; तावत्—तब तक; कलिः—कलियुग; वै—निस्सन्देह; पृथिवीम्—पृथ्वी को; पराक्रन्तुम्—जीतने के लिए; न—नहीं; च—तथा; अशकत्—समर्थ था।

जब तक लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणकमलों से पृथ्वी का स्पर्श करते रहे, तब तक कलि इस लोक का दमन करने में असमर्थ रहा।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् कृष्ण के समय में ही दुर्योधन तथा उनके सहयोगियों के कुकृत्यों के कारण कलि कुछ हद तक पृथ्वी में प्रवेश कर चुका था, किन्तु भगवान् कृष्ण लगातार कलि के प्रभाव को दबाते रहे। भगवान् कृष्ण द्वारा इस धराधाम का त्याग करने तक कलियुग सम्पन्न नहीं बन सका।

यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि ।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; देव-ऋषयः सप्त—देवताओं में से सात ऋषि; मघासु—मघा नक्षत्र में; विचरन्ति—विचरण करते हैं; हि—निस्सन्देह; तदा—तब; प्रवृत्तः—प्रारम्भ होता है; तु—तथा; कलिः—कलियुग; द्वादश—बारह; अब्द-शत—शताब्दी (देवताओं के ये १,२०० वर्ष बराबर हैं पृथ्वी पर ४,३२,००० वर्ष के); आत्मकः—से युक्त।

जब सप्तर्षि मण्डल मघा नक्षत्र से होकर गुजरता है, तो कलियुग प्रारम्भ होता है। यह देवताओं के १,२०० वर्षों तक रहता है।

यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः ।
तदा नन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; मघाभ्यः—मघा से; यास्यन्ति—वे जायेंगे; पूर्व-आषाढाम्—अगला नक्षत्र पूर्वाषाढा; महा-ऋषयः—सप्तर्षि; तदा—तब; नन्दात्—नन्द से लेकर; प्रभृति—तथा उसके वंशज; एषः—यह; कलिः—कलियुग; वृद्धिम्—प्रौढ़ता; गमिष्यति—प्राप्त करेगा।

जब सप्तर्षि मघा से चल कर पूर्वाषाढा में जायेंगे तो कलि अपनी पूर्ण शक्ति में होगा और राजा नन्द तथा उसके वंश से इसका सूत्रपात होगा।

यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिस पर; कृष्णः—श्रीकृष्ण; दिवम्—वैकुण्ठ को; यातः—गये हुए; तस्मिन्—उस पर; एव—वही; तदा—तब; अहनि—दिन; प्रतिपन्नम्—प्राप्त किया हुआ; कलि-युगम्—कलियुग; इति—इस प्रकार; प्राहुः—कहते हैं; पुरा—भूतकाल के; विदः—जानकार।

जो लोग भूतकाल को अच्छी तरह समझते हैं, वे यह कहते हैं कि जिस दिन भगवान् कृष्ण ने वैकुण्ठ-लोक के लिए प्रस्थान किया, उसी दिन से कलियुग का प्रभाव शुरू हो गया।

तात्पर्य : यद्यपि वैधानिक दृष्टि से कलियुग को इस पृथ्वी पर भगवान् कृष्ण के रहते हुए शुरू हो जाना था, किन्तु इस पतित युग को भगवान् के प्रस्थान तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

दिव्याब्दानां सहस्रान्ते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ।
भविष्यति तदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

दिव्य—देवताओं के; अब्दानाम्—वर्ष; सहस्र—एक हजार; अन्ते—अन्त में; चतुर्थे—चतुर्थ युग, कलियुग में; तु—तथा; पुनः—फिर; कृतम्—सत्ययुग; भविष्यति—होगा; तदा—तब; नृणाम्—मनुष्यों के; मनः—मन; आत्म-प्रकाशकम्—स्वयं प्रकाशित।

कलियुग के एक हजार दैवी वर्षों के बाद, सत्ययुग पुनः प्रकट होगा। उस समय सारे मनुष्यों के मन स्वयं प्रकाशमान् हो उठेंगे।

इत्येष मानवो वंशो यथा सङ्ख्यायते भुवि ।
तथा विट्शूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगे युगे ॥ ३५॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार (श्रीमद्भागवत के स्कन्धों में); एषः—यह; मानवः—वैवस्वत मनु से अवतरित; वंशः—वंश; यथा—जिस तरह; सङ्ख्यायते—गिनाया जाता है; भुवि—पृथ्वी पर; तथा—उस प्रकार से; विट्—वैश्यों; शूद्र—शूद्रों; विप्राणाम्—तथा ब्राह्मणों के; ताः ताः—वे वे; ज्ञेयाः—जाने जाने चाहिए; युगे युगे—प्रत्येक युग में।

इस प्रकार मैंने मनु के राजवंश का वर्णन, जिस रूप में वह पृथ्वी पर विख्यात है, कह सुनाया। इसी प्रकार से विविध युगों में रहने वाले वैश्यों, शूद्रों तथा ब्राह्मणों के इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है।

तात्पर्य : जिस तरह राजाओं के वंश में उच्च तथा निम्न, प्रतापी तथा दुष्ट राजा सम्मिलित रहते हैं उसी तरह समाज के बुद्धिजीवी, व्यापारी तथा श्रमिक वर्णों में भी अनेक प्रकार के लोग पाये जाते हैं।

एतेषां नामलिङ्गानां पुरुषाणां महात्मनाम् ।
कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरिव स्थिता भुवि ॥ ३६॥

शब्दार्थ

एतेषाम्—इनके; नाम—नामों; लिङ्गानाम्—उन्हें स्मरण रखने के साधन मात्र हैं, जो; पुरुषाणाम्—पुरुषों के; महा-आत्मनाम्—महात्माओं के; कथा—कहानियाँ; मात्र—केवल; अवशिष्टानाम्—जिनके शेषांश; कीर्तिः—यश; एव—केवल; स्थिता—उपस्थित हैं; भुवि—पृथ्वी पर।

ये पुरुष जोकि महात्मा थे अब केवल अपने नामों से जाने जाते हैं। वे भूतकाल के विवरणों में ही पाये जाते हैं और पृथ्वी पर केवल उनका यश रहता है।

तात्पर्य : कोई अपने को महान् शक्तिशाली नेता क्यों न माने, अन्ततोगत्वा उसका नाम केवल नामों की लम्बी सूची में रह जाता है। दूसरे शब्दों में, भौतिक जगत में शक्ति तथा पद से चिपके रहना व्यर्थ है।

देवापिः शान्तनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ।
कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

देवापिः—देवापि; शान्तनोः—महाराज शान्तनु का; भ्राता—भाई; मरुः—मरु; च—तथा; इक्ष्वाकु-वंश-जः—इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न; कलाप-ग्रामे—कलाप ग्राम में; आसाते—रह रहे हैं; महा—महान्; योग-बल—योगशक्ति से; अन्वितौ—युक्त।

महाराज शान्तनु का भाई देवापि तथा इक्ष्वाकु वंशी मरु, दोनों ही महान् योगशक्ति से युक्त हैं और अब भी कलाप ग्राम में रह रहे हैं।

ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ ।
वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तौ—वे दोनों (मरु तथा देवापि); इह—मानव समाज में; एत्य—लौट कर; कलेः—कलियुग के; अन्ते—अन्त में; वासुदेव—भगवान् वासुदेव द्वारा; अनुशिक्षितौ—आदेश दिया जाकर; वर्ण-आश्रम—वर्ण तथा आश्रम से; युतम्—युक्त; धर्मम्—नित्य धर्म-संहिता; पूर्व-वत्—पहले की ही तरह; प्रथयिष्यतः—लागू करेंगे।

कलियुग के अन्त में, ये दोनों ही राजा भगवान् वासुदेव का आदेश पाकर, मानव समाज में लौट आयेंगे और मनुष्य के शाश्वत धर्म की पुनः स्थापना करेंगे जिसमें वर्ण तथा आश्रम का विभाजन पूर्ववत् रहेगा।

तात्पर्य : इस तथा पिछले श्लोक के अनुसार, कलियुग के अन्त होने के बाद, मानव संस्कृति की पुनर्स्थापना करने वाले दो महान् राजा पहले ही पृथ्वी पर अवतरित हो चुके हैं जहाँ वे भगवान् विष्णु की भक्ति करने के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

कृतम्—सत्ययुग; त्रेता—त्रेतायुग; द्वापरम्—द्वापर युग; च—तथा; कलिः—कलियुग; च—तथा; इति—इस प्रकार; चतुः-युगम्—चार युगों का चक्र; अनेन—इससे; क्रम—क्रमवार; योगेन—व्यवस्था; भुवि—पृथ्वी पर; प्राणिषु—जीवों के बीच; वर्तते—लगातार चल रही है।

इस पृथ्वी पर जीवों के बीच चार युगों का—सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग का—चक्र निरन्तर चलता रहता है, जिससे घटनाओं का वही सामान्य अनुक्रम पिष्टपेषित होता है।

राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथापरे ।
भूमौ ममत्वं कृत्वान्ते हित्वेमां निधनं गताः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

राजन्—हे राजा परीक्षित; एते—ये; मया—मेरे द्वारा; प्रोक्ताः—वर्णित; नर-देवाः—राजा; तथा—और; अपरे—अन्य मनुष्य; भूमौ—पृथ्वी पर; ममत्वम्—आत्मीयता; कृत्वा—दिखाते हुए; अन्ते—अन्तमें; हित्वा—त्याग कर; इमाम्—यह जगत; निधनम्—विनाश को; गताः—प्राप्त हुए।

हे राजा परीक्षित, मेरे द्वारा वर्णित ये सारे राजे तथा अन्य सारे मनुष्य इस पृथ्वी पर आते हैं, अपना प्रभुत्व जताते हैं किन्तु अन्त में उन्हें यह जगत त्यागना पड़ता है और वे विनाश को प्राप्त होते हैं।

कृमिविड्भस्मसंज्ञान्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च ।
भूतध्रुक्तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कृमि—कीड़ों का; विट्—मल; भस्म—तथा राख; संज्ञा—उपाधि; अन्ते—अन्त में; राज-नाम्नः—राजा नाम से विख्यात; अपि—यद्यपि; यस्य—जिस (शरीर) का; च—तथा; भूत—जीवों का; ध्रुक्—शत्रु; तत्-कृते—उस शरीर के लिए; स्व-अर्थम्—अपने हित को; किम्—क्या; वेद—जानता है; निरयः—नरक में दण्ड; यतः—जिसके कारण।

भले ही अभी मनुष्य का शरीर राजा की उपाधि से युक्त हो, किन्तु अन्त में इसका नाम कीड़े, मल या राख हो जायेगा। जो व्यक्ति अपने शरीर के लिए अन्य जीवों को पीड़ा पहुँचाता है, वह अपने हित के विषय में क्या जान सकता है क्योंकि उसके कार्य उसे नरक की ओर ले जाने वाले होते हैं?

तात्पर्य : मृत्यु के बाद शरीर को दफना दिया जाता है और कीड़े उसे खा जाते हैं या फिर उसे सड़क पर या जंगल में फेंक दिया जाता है, जिससे पशु उसे खाकर शेष भाग को मल रूप में निकाल दें या फिर उसे जलाकर भस्म कर दिया जाता है। इसलिए अन्य जीवों के शरीरों को चोट पहुँचाने के लिए अपने नश्वर शरीर का उपयोग करके मनुष्य को नरक का मार्ग प्रशस्त नहीं करना चाहिए। इस श्लोक में *भूत* शब्द में वे अमानुषी जीव भी सम्मिलित हैं, जिन्हें ईश्वर ने ही बनाया है। मनुष्य को ईर्ष्यापूर्ण हिंसा त्याग कर कृष्णभावनामृत की विधि से हर वस्तु में ईश्वर का दर्शन करना सीखना चाहिए।

कथं सेयमखण्डा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ।

मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य वा ॥ ४२॥

शब्दार्थ

कथम्—कैसे; सा इयम्—यह वही; अखण्डा—असीम; भूः—पृथ्वी; पूर्वैः—पूर्वजों द्वारा; मे—मेरे; पुरुषैः—पुरुषों द्वारा; धृता—वश में की गई; मत्-पुत्रस्य—मेरे पुत्र के; च—तथा; पौत्रस्य—पौत्र के; मत्-पूर्वा—अब मेरे अधीन; वंश-जस्य—वंशजों के; वा—अथवा।

[भौतिकतावादी राजा सोचता हैं] ''यह असीम पृथ्वी मेरे पूर्वजों के अधीन थी और अब मेरी प्रभुसत्ता में है। मैं इसे अपने पुत्रों, पौत्रों तथा अन्य वंशजों के हाथों में रहते जाने की किस तरह व्यवस्था करूँ?''

तात्पर्य : यह मूर्खतापूर्ण स्वामित्व का उदाहरण है।

तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वात्मतयाबुधाः ।
महीं ममतया चोभौ हित्वान्तेऽदर्शनं गताः ॥ ४३॥

शब्दार्थ

तेजः—अग्नि; अप्—जल; अन्न—तथा पृथ्वी; मयम्—से बना; कायम्—यह शरीर; गृहीत्वा—स्वीकार करके; आत्मतया—''मैं'' भाव से; अबुधाः—मूर्ख; महीम्—इस पृथ्वी को; ममतया—''मेरे'' भाव से; च—तथा; उभौ—दोनों; हित्वा—त्याग कर; अन्ते—अन्ततः; अदर्शनम्—अन्तर्धान; गताः—हो गये।

यद्यपि मूर्ख लोग पृथ्वी, जल तथा अग्नि से बने शरीर को ''मैं'' और इस पृथ्वी को ''मेरी'' स्वीकार करते हैं, किन्तु अन्ततः उन सबों को अपना शरीर तथा पृथ्वी दोनों त्यागना पड़ा और वे विस्मृति के गर्भ में चले गये।

तात्पर्य : यद्यपि आत्मा शाश्वत है, हमारी तथाकथित पारिवारिक परंपरा तथा पार्थिव यश निश्चित रूप से विस्मृत हो जायेंगे।

ये ये भूपतयो राजन्भुञ्जते भुवमोजसा ।
कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४॥

शब्दार्थ

ये ये—जो भी; भू-पतयः—राजा; राजन्—हे राजा परीक्षित; भुञ्जते—भोग करते हैं; भुवम्—संसार का; ओजसा—अपने पराक्रम से; कालेन—काल की शक्ति से; ते—वे; कृताः—बनाये गये; सर्वे—सभी; कथा-मात्राः—मात्र वृत्तान्त; कथासु—विविध इतिहासों में; च—तथा।

हे राजा परीक्षित, ये सारे राजे जिन्होंने अपने बल से पृथ्वी का भोग करना चाहा, सारे के सारे, काल की शक्ति से ऐतिहासिक वृत्तान्त मात्र बन कर रह गये।

तात्पर्य : इस श्लोक में *राजन्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। परीक्षित महाराज अपना शरीर त्याग कर भगवद्धाम जाने की तैयारी कर रहे थे और उनके परम दयालु गुरु शुकदेव गोस्वामी ने उनकी रही सही आसक्ति को जो राजा होने के कारण शेष थी, इस पद की अन्ततोगत्वा नगण्यता बताकर, ध्वस्त कर दिया। गुरु की अहैतुकी कृपा से कोई भी व्यक्ति भगवद्धाम जाने के लिए तैयार किया जा सकता है। गुरु उसे भौतिक माया पर अपनी मजबूत पकड़ को ढीला करने और माया के राज्य

को पीछे छोड़ने की शिक्षा देता है। यद्यपि शुकदेव गोस्वामी भौतिक जगत की तथाकथित कीर्ति के विषय में इस अध्याय में बड़ी रुखाई से बोलते हैं, वे उस गुरु की अहैतुकी कृपा दिखा रहे हैं, जो अपने शरणागत शिष्य को भगवद्धाम या वैकुण्ठ ले जाते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कंध के अन्तर्गत ''कलियुग के लक्षण'' नामक द्वितीय अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तीन

भूमि गीत

इस अध्याय में यह बताया गया है कि पृथ्वी ने किस तरह उन अनेक राजाओं की मूर्खता देखी जो उसे जीतने पर तुले थे। इसमें यह भी बताया गया है कि यद्यपि कलियुग दोषों से पूर्ण है, किन्तु हरि-नाम के कीर्तन से वे सारे दोष नष्ट हो जाते हैं।

बड़े-बड़े राजा जो मृत्यु के खिलौने हैं अपने छ: आन्तरिक शत्रुओं—पाँच इन्द्रियाँ तथा मन—का दमन करना चाहते हैं। फिर वे यह कल्पना करने लगते हैं कि इसके बाद वे पृथ्वी तथा उसके सारे समुद्रों को जीत लेंगे। उनकी झूठी आशाएँ देख कर पृथ्वी उन पर हँसती है क्योंकि अन्तत: उन्हें यह लोक छोड़ कर अन्यत्र जाना होगा जैसाकि विगत बड़े बड़े राजे तथा बादशाह जा चुके हैं। यही नहीं, पृथ्वी को या इसके किसी खण्ड को हड़प लेने के बाद पिता, पुत्र, भाई, मित्र तथा सम्बन्धी उसके लिए परस्पर झगड़ते हैं।

इतिहास के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सारी सांसारिक उपलब्धियाँ नश्वर हैं और इस सहज निष्कर्ष से वैराग्य की भावना उत्पन्न होती है। अन्ततोगत्वा किसी भी जीव के लिए जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य भगवान् कृष्ण की शुद्ध भक्ति है, जो सारे अमंगलों को विनष्ट करती है। सत्ययुग में धर्म पूर्ण था जिसमें सत्य, दया, तपस्या तथा दान के चारों पैर अभी तक विद्यमान थे। त्रेता के बाद हर युग के धार्मिक गुणों में एक चौथाई ह्रास आता गया। कलियुग में धर्म के पैरों में केवल एक चौथाई शक्ति रह गई है किन्तु इस युग के अग्रसर होने पर यह भी समाप्त हो जायेगी। सत्ययुग में सतोगुण प्रधान रहता है और त्रेतायुग में रजोगुण। द्वापर युग में रजो तथा तमोगुण का मिश्रण प्रधान रहता है और कलियुग में तमोगुण प्रधान रहता है। कलियुग में नास्तिकता, समस्त वस्तुओं की लघुता तथा निकृष्टता एवं जननांगों और उदर के प्रति आसक्ति अत्यन्त मुखर रहते हैं। कलि के प्रभाव से दूषित जीव भगवान् हरि को नहीं पूजते। यद्यपि भगवन्नाम का कीर्तन करने और उनकी शरण में जाने से सारे बन्धन से छुटकारा मिल सकता है और परम गन्तव्य की सहज प्राप्ति हो सकती है। किन्तु यदि कलियुग में किसी तरह से बद्धजीवों के हृदयों में भगवान् प्रकट हो जाते हैं, तो इस युग में व्याप्त देश, काल तथा व्यक्ति के सारे दोष विनष्ट हो जाते हैं। कलियुग दोषों का सागर है किन्तु इसमें एक महान् गुण है—कृष्ण-नाम का कीर्तन करने से ही मनुष्य सारी भौतिक संगति से उद्धार पा लेता है और परब्रह्म को प्राप्त करता है। सत्ययुग में जो कुछ ध्यान से, त्रेता में

यज्ञ करने से तथा द्वापर में मन्दिर पूजा से प्राप्त होता था, उसे कलियुग में केवल *हरि–कीर्तन* द्वारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

श्रीशुक उवाच

दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् ।
अहो मा विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; दृष्ट्वा—देख कर; आत्मनि—अपने आपमें; जये—विजय में; व्यग्रान्—व्यस्त; नृपान्—राजाओं को; हसति—हँसती है; भूः—पृथ्वी; इयम्—यह; अहो—ओह; मा—मुझको; विजिगीषन्ति—जीतना चाहते हैं; मृत्योः—मृत्यु के; क्रीडनकाः—खिलौने; नृपाः—राजा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस जगत के राजाओं को अपने पर विजय प्राप्त करने के प्रयास में व्यस्त देख कर, पृथ्वी हँसने लगी। उसने कहा : ''जरा देखो तो इन राजाओं को जो मृत्यु के हाथों में खिलौनों जैसे हैं, मुझ पर विजय पाने की इच्छा कर रहे हैं!''

काम एष नरेन्द्राणां मोघः स्याद्विदुषामपि ।
येन फेनोपमे पिण्डे येऽतिविश्रम्भिता नृपाः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

कामः—काम; एषः—यह; नर-इन्द्राणाम्—मनुष्यों के शासकों की; मोघः—असफलता; स्यात्—हो जाती है; विदुषाम्—विद्वानों के; अपि—भी; येन—जिस (काम) से; फेन-उपमे—क्षणिक बुलबुले के सदृश; पिण्डे—इसपिण्ड में; ये—जो; अति-विश्रम्भिताः—पूरी तरह विश्वास करते हुए; नृपः—राजागण।

''मनुष्यों के महान् शासक, यहाँ तक कि जो विद्वान भी हैं, भौतिक कामेच्छा के कारण हताशा तथा असफलता को प्राप्त होते हैं। ये राजा काम से प्रेरित होकर, मांस के मृत पिण्ड में, जिसे हम शरीर कहते हैं, अत्यधिक आशा तथा श्रद्धा रखते हैं यद्यपि भौतिक ढाँचा जल पर तैरते फेन के बुलबुलों के समान क्षणभंगुर है।''

पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमन्त्रिणः ।
ततः सचिवपौराप्तकरीन्द्रानस्य कण्टकान् ॥ ३ ॥
एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ।
इत्याशाबद्धहृदया न पश्यन्त्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

पूर्वम्—सर्वप्रथम; निर्जित्य—जीत कर; षट्-वर्गम्—पाँच इन्द्रियाँ तथा मन; जेष्यामः—हम जीत लेंगे; राज-मन्त्रिणः—राजा के मंत्रियों को; ततः—तब; सचिव—निजी सचिवों; पौर—राजधानी के नागरिकों; आप्त—मित्रों; करि-इन्द्रान्—हाथी रखने वालों; अस्य—छुटकारा पाकर; कण्टकान्—काँटों; एवम्—इस तरह; क्रमेण—धीरे धीरे; जेष्यामः—जीत लेंगे; पृथ्वीम्—पृथ्वी को; सागर—समुद्र रूपी; मेखलाम्—मेखला (कमर की पेटी); इति—इस तरह सोचते हुए; आशा—आशा से; बद्ध—बँधे; हृदयाः—हृदय वाले; न पश्यन्ति—नहीं देखते; अन्तिके—निकटस्थ; अन्तकम्—अपना अन्त।

''राजे तथा राजनीतिज्ञ यह कल्पना करते हैं, ''सर्वप्रथम मैं अपनी इन्द्रियों तथा मन को जीतूँगा; फिर मैं अपने मुख्य मंत्रियों का दमन करूँगा और अपने सलाहकारों, नागरिकों, मित्रों तथा सम्बन्धियों एवं अपने हाथियों के रखवालों रूपी कंटकों से अपने को मुक्त कर लूँगा। इस तरह मैं धीरे धीरे पूरी पृथ्वी को जीत लूँगा।'' चूँकि इन नेताओं के हृदयों में बड़ी-बड़ी आशाएँ रहती हैं अतएव ये पास ही खड़ी प्रतीक्षारत मृत्यु को नहीं देख पाते।

तात्पर्य : दृढ़-संकल्प राजनीतिज्ञ, तानाशाह तथा सैन्य, प्रमुख आत्मानुशासन के साथ, कठिन तप तथा त्याग करते हैं जिससे शक्ति के लिए उनके लोभ की पूर्ति हो सके। तब वे समुद्र, स्थल, वायु तथा आकाश पर अधिकार करने के लिए बड़े-बड़े राष्ट्रों को भिड़ा देते हैं। यद्यपि ये राजनीतिज्ञ तथा उनके अनुयायी शीघ्र ही कालकवलित हो जायेंगे क्योंकि इस जगत में जन्म तथा मृत्यु अपरिहार्य हैं, किन्तु वे क्षणिक यश के लिए अपना उन्मादी संघर्ष जारी रखते हैं।

समुद्रावरणां जित्वा मां विशन्त्यब्धिमोजसा ।
कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

समुद्र-आवरणाम्—समुद्र द्वारा सीमाबद्ध; जित्वा—जीत कर; माम्—मुझमें; विशन्ति—प्रवेश करते हैं; अब्धिम्—समुद्र को; ओजसा—अपने बल से; कियत्—कितना; आत्म-जयस्य—आत्मा पर विजय का; एतत्—यह; मुक्तिः—मुक्ति; आत्म-जये—आत्मा पर विजय का; फलम्—फल।

''ये गर्वित राजागण मेरे तल पर सारी भूमि को जीत लेने के बाद, समुद्र को जीतने के लिए बलपूर्वक समुद्र में प्रवेश करते हैं। भला उनके ऐसे आत्मसंयम से क्या लाभ जिसका लक्ष्य राजनीतिक शोषण हो? आत्मसंयम का वास्तविक लक्ष्य तो आध्यात्मिक मुक्ति है।''

यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ।
गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यन्त्यबुद्धयः ॥ ६॥

शब्दार्थ

याम्—जिसको; विसृज्य—त्याग कर; एव—निस्सन्देह; मनवः—मनुष्यगण; तत्-सुताः—उनके पुत्र; च—भी; कुरु-उद्वह—हे कुरुश्रेष्ठ; गताः—चले गये; यथा-आगतम्—जिस तरह वे पहले आये; युद्धे—युद्ध में; ताम्—उसको; माम्—मुझ पृथ्वी को; जेष्यन्ति—जीतने का प्रयास करते हैं; अबुद्धयः—अज्ञानी।

हे कुरुश्रेष्ठ, पृथ्वी आगे कहती है, ''यद्यपि भूतकाल में बड़े-बड़े पुरुष तथा उनके वंशज इस संसार से मुझे छोड़ कर, उसी असहायवस्था में चले गये जिस रूप में इसमें आये थे, किन्तु आज भी मूर्ख लोग मुझे जीतने का प्रयास कर रहे हैं।

मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः ।
जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

मत्-कृते—मेरे हेतु; पितृ-पुत्राणाम्—पिता तथा पुत्र के बीच; भ्रातृणाम्—भाइयों के बीच; च—तथा; अपि—भी; विग्रहः—झगड़ा; जायते—उठ खड़ा होता है; हि—निस्सन्देह; असताम्—भौतिकतावादियों के बीच; राज्ये—राज्य में; ममता—स्वामित्व बोध के कारण; बद्ध—बद्ध; चेतसाम्—हृदयों वाले।

''मुझे जीतने के उद्देश्य से भौतिकतावादी लोग परस्पर लड़ते हैं। पिता अपने पुत्र का विरोध करता है और भाई एक-दूसरे से झगड़ते हैं क्योंकि उनके हृदय राजनीतिक शक्ति पाने के लिए बँधे रहते हैं।''

ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः ।
स्पर्धमाना मिथो घ्नन्ति म्रियन्ते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; एव—निस्सन्देह; इयम्—यह; मही—पृथ्वी; कृत्स्ना—पूरी; न—नहीं; ते—तुम्हारी; मूढ—रे मूर्ख; इति वादिनः—इस प्रकार बोलते; स्पर्धमानाः—लड़ते-झगड़ते; मिथः—परस्पर; घ्नन्ति—मार डालते हैं; म्रियन्ते—मारे जाते हैं; मत्-कृते—मेरे लिए; नृपाः—राजे।

''राजनीतिक लोग एक-दूसरे को ललकारते हैं ''यह सारी भूमि मेरी है। अरे मूर्ख। यह तुम्हारी नहीं है।'' इस तरह वे एक-दूसरे पर हमला करते हैं और मर जाते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में उस संसारी राजनीतिक मनोवृत्ति को उजागर किया गया है, जिससे संसार में असंख्य विवादों को प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरणार्थ, *श्रीमद्भागवत* के इस के समय, छोटे-से फाकलैड द्वीप-समूह के कारण अंग्रेजी तथा अर्जेन्टीना की फौजें घमासान युद्ध कर रही हैं।

वस्तुतः भगवान् सारी भूमि के स्वामी हैं। निस्संदेह, ईश-भावनाभावित जगत में भी राजनीतिक सीमाएँ पाई जाती हैं। लेकिन ऐसे ईश-भावनाभावित वातावरण में राजनैतिक तनाव बहुत हद तक दूर हो जाते हैं और सारे देशों के लोग एक-दूसरे का स्वागत करते हैं और शान्तिपूर्वक रहने के एक-दूसरे के अधिकार का आदर करते हैं।

पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ।
मान्धाता सगरो रामः खट्वाङ्गो धुन्धुहा रघुः ॥ ९ ॥
तृणबिन्दुर्ययातिश्च शर्यातिः शन्तनुर्गयः ।
भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥
हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ।
नमुचिः शम्बरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥
अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ।
सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥
ममतां मय्यवर्तन्त कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ।
कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पृथुः पुरूरवाः गाधिः—महाराज पृथु, पुरूरवा तथा गाधि; नहुषः भरतः अर्जुनः—नहुष, भरत तथा कार्तवीर्य अर्जुन; मान्धाता सगरः रामः—मान्धाता, सगर तथा राम; खट्वाङ्गः धुन्धुहा रघुः—खट्वांग, धुन्धुहा तथा रघु; तृणबिन्दुः ययातिः च—तृणबिन्दु तथा ययाति; शर्यातिः शन्तनुः गयः—शर्याति, शन्तनु तथा गय; भगीरथः कुवलयाश्वः—भगीरथ तथा कुवलयाश्व; ककुत्स्थः नैषधः नृगः—ककुत्स, नैषध तथा नृग; हिरण्यकशिपुः वृत्रः—हिरण्यकशिपु तथा वृत्रासुर; रावणः—रावण; लोक-रावणः—जिसने सारे जगत को रुला मारा; नमुचिः शम्बरः भौमः—नमुचि, शम्बर तथा भौम; हिरण्याक्षः—हिरण्याक्ष; अथ—तथा; तारकः—तारक; अन्ये—दूसरे; च—भी; बहवः—अनेक; दैत्याः—दैत्यगण; राजानः—राजे; ये—जो; महा-ईश्वराः—महान् नियन्ता; सर्वे—वे सभी; सर्व-विदः—सबकुछ जानने वाले; शूराः—वीर; सर्वे—सभी; सर्व-जितः—सबों को जीतने वाले; अजिताः—न जीते जा सकने योग्य; ममताम्—ममत्व; मयि—मेरे लिए; अवर्तन्त—वे जीवित रहे; कृत्वा—व्यक्त करके; उच्चैः—बहुत हद तक; मर्त्य-धर्मिणः—जन्म-मृत्यु के नियमों के अधीन; कथा-अवशेषाः—केवल ऐतिहासिक कथा के रूप में बचे हुए; कालेन—काल के बल से; हि—निस्सन्देह; अकृत-अर्थाः—जिनकी इच्छाएँ अपूर्ण रह गईं; कृताः—बनाये गये; विभो—हे स्वामी।

''पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, भरत, कार्तवीर्य अर्जुन, मान्धाता, सगर, राम, खट्वांग, धुन्धुहा, रघु, तृणबिन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नैषध, नृग, हिरण्यकशिपु, वृत्र, सारे जग को रुलाने वाला रावण, नमुचि, शम्बर, भौम, हिरण्याक्ष तथा तारक के साथ साथ अन्य असुर तथा अन्यों पर शासन करने की महान् शक्ति से युक्त राजे—ये सारे के सारे ज्ञानी, शूर, सबको जीतने वाले तथा अजेय थे। तो भी हे सर्वशक्तिमान प्रभु, ये सारे राजा मुझे पाने के लिए गहन प्रयास करते हुए जीवन बिताते रहे, किन्तु काल के अधीन थे जिसने सबों को मात्र ऐतिहासिक वृत्तान्त बना दिया है। इनमें से एक भी स्थायी रूप से अपना शासन स्थापित नहीं कर सका।''

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा उसी की सम्पुष्टि के अनुसार, यहाँ पर उल्लिखित राम अवतारी भगवान् रामचन्द्र नहीं हैं। पृथु महाराज को भगवान् का अवतार माना जाता है जिन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी पर स्वामित्व का दावा करते हुए पार्थिव राजा के गुणों को पूरी तरह प्रकट किया। किन्तु पृथु महाराज जैसे सन्त राजा पृथ्वी का नियंत्रण भगवान् की ओर से करते हैं जबकि हिरण्यकशिपु या रावण जैसे असुर, पृथ्वी का दुरुपयोग अपनी निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए करना चाहते हैं। फिर भी सन्त स्वभाव वाले राजाओं तथा असुरों—इन दोनों ही को यह पृथ्वी छोड़नी पड़ती है। इस तरह उनकी राजनीतिक सर्वश्रेष्ठता काल के वेग से निरसित हो जाती है।

आधुनिक राजनीतिक नेता न तो सम्पूर्ण पृथ्वी का अस्थायी रूप से नियंत्रण कर सकते हैं, न ही उनका ऐश्वर्य तथा उनकी बुद्धि असीम हैं। अत्यन्त खंडित शक्ति के स्वामी बन कर, अल्प आयु को भोगते हुए और गहन बुद्धि से रहित, ये आधुनिक नेता हताशा तथा कुनिर्दिष्ट आकांक्षा के प्रतीक हैं।

कथा इमास्ते कथिता महीयसां
विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ।

विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो
वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

कथाः—कथाएँ; इमाः—ये; ते—तुमसे; कथिताः—कही गई; महीयसाम्—महान् राजाओं की; विताय—फैलाकर; लोकेषु—सारे जगतों में; यशः—उनका यश; परेयुषाम्—प्रस्थान कर चुके; विज्ञान—दिव्य ज्ञान; वैराग्य—तथा वैराग्य; विवक्षया—शिक्षा देने की इच्छा से; विभो—हे शक्तिशाली परीक्षित; वचः—शब्दों का; विभूतीः—अलंकरण; न—नहीं; तु—लेकिन; पारम-अर्थ्यम्—अत्यन्त आवश्यक तात्पर्य का।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे बलशाली परीक्षित, मैंने इन सारे महान् राजाओं की कथाएँ तुमसे बतला दीं जिन्होंने संसार-भर में अपना यश फैलाया और फिर चले गये। मेरा असली उद्देश्य दिव्य ज्ञान तथा वैराग्य की शिक्षा देना था। राजाओं की कथाएँ इन वृत्तान्तों को शक्ति तथा ऐश्वर्य प्रदान करती हैं लेकिन वे स्वयं ज्ञान के चरम पक्ष से युक्त नहीं हैं।

तात्पर्य : चूँकि *श्रीमद्भागवत* की सारी कथाएँ पाठक को दिव्य ज्ञान की पूर्णता प्रदान कराने वाली हैं, अत: वे राजाओं या अन्य संसारी विषयों के माध्यम से सर्वोच्च आध्यात्मिक शिक्षाएँ देती हैं। कृष्ण के प्रसंग में सारी सामान्य कथाएँ दिव्य बन जाती हैं जिनमें पाठक को जीवन की पूर्णता प्रदान करने की शक्ति होती है।

यस्तूत्तमःश्लोकगुणानुवादः
सङ्गीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः ।
तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं
कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५॥

शब्दार्थ

यः—जो; तु—दूसरी ओर; उत्तमः-श्लोक—दिव्य श्लोकों द्वारा प्रशंसित भगवान् के; गुण—गुणों की; अनुवादः—वर्णन; सङ्गीयते—गाया जाता है; अभीक्ष्णम्—सदैव; अमङ्गल-घ्नः—अमंगल का विनाश करने वाला; तम्—उसको; एव—निस्सन्देह; नित्यम्—नियमित रूप से; शृणुयात्—सुने; अभीक्ष्णम्—निरन्तर; कृष्णे—कृष्ण के प्रति; अमलाम्—निर्मल; भक्तिम्—भक्ति; अभीप्समानः—इच्छा रखने वाला।

जो व्यक्ति भगवान् कृष्ण की शुद्ध भक्ति चाहता है उसे भगवान् उत्तमश्लोक के यश:पूर्ण गुणों की कथाएँ सुननी चाहिए जिनके निरन्तर कीर्तन से सारे अमंगल विनष्ट हो जाते हैं। भक्तों को नियमित दैनिक सभाओं में ऐसे श्रवण में अपने को लगाना चाहिए और दिन-भर इसी में लगे रहना चाहिए।

तात्पर्य : चूँकि कृष्ण विषयक कोई भी कथा शुभ तथा दिव्य होती है, भगवान् कृष्ण के अपने राजनीतिक तथा गैर-राजनीतिक कार्यों का सीधा वर्णन निश्चय ही सुनने के लिए सर्वश्रेष्ठ विषयवस्तु है। यहाँ पर *नित्यम्* शब्द कृष्ण-कथाओं के नियमित अनुशीलन का सूचक है और *अभीक्ष्णम्* शब्द ऐसे नियमित आध्यात्मिक अनुभवों के निरन्तर स्मरण का सूचक है।

श्रीराजोवाच

केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः ।
विधमिष्यन्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; केन—किस; उपायेन—उपाय से; भगवन्—हे प्रभु; कलेः—कलियुग के; दोषान्—बुराइयों को; कलौ—कलियुग में रहते हुए; जनाः—लोग; विधमिष्यन्ति—समूल नष्ट करेंगे; उपचितान्—संचित; तत्—वह; मे—मुझसे; ब्रूहि—कहिए; यथा—उपयुक्त रीति से; मुने—हे मुनि।

राजा परीक्षित ने कहा : हे स्वामी, कलियुग में रहने वाले लोग किस तरह इस युग के संचित कल्मष से अपने को छुटा सकते हैं? हे महामुनि, यह मुझे बतलायें।

तात्पर्य : राजा परीक्षित दयालु साधु शासक थे। अत: कलियुग के गर्हित गुणों के विषय में सुनने के बाद स्वभावत: उन्होंने पूछा कि इस युग में उत्पन्न लोग किस तरह इसमें निहित कल्मष से अपने को मुक्त करा सकते हैं?

युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ।
कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

युगानि—विश्व इतिहास के युग; युग-धर्मान्—प्रत्येक युग के विशिष्ट गुण; च—तथा; मानम्—माप; प्रलय—संहार; कल्पयोः—तथा ब्रह्माण्ड की स्थिति; कालस्य—समय का; ईश्वर-रूपस्य—भगवान् का प्रतिनिधित्व; गतिम्—चाल; विष्णोः—विष्णु की; महा-आत्मनः—परमात्मा।

कृपया विश्व इतिहास के विभिन्न युगों, प्रत्येक युग के विशिष्ट गुणों, ब्रह्माण्ड स्थिति की अवधि तथा संहार एवं परमात्मा स्वरूप विष्णु के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि काल की गति के बारे में बतलायें।

श्रीशुक उवाच
कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ।
सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कृते—सत्ययुग में; प्रवर्तते—पाया जाता है; धर्मः—धर्म; चतुः-पात्—चार पैरों वाला; तत्—उस युग के; जनैः—लोगों के द्वारा; धृतः—धारण किया हुआ; सत्यम्—सत्य; दया—दया; तपः—तपस्या; दानम्—दान; इति—इस प्रकार; पादाः—पैर; विभोः—शक्तिशाली धर्म के; नृप—हे राजा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा, प्रारम्भ में, सत्ययुग में, धर्म अपने चार अक्षत पैरों से युक्त रहता है और उस युग के लोगों द्वारा सावधानी से धारण किया जाता है। शक्तिशाली धर्म के चार पैर हैं—सत्य, दया, तपस्या तथा दान।

तात्पर्य : जिस तरह चार ऋतुएँ होती हैं उसी तरह पृथ्वी के चार युग होते हैं जिनमें से प्रत्येक लाखों वर्षों तक चलता है। इनमें से पहला युग सत्ययुग है, जिसमें दान जैसे सद्गुणों का प्राधान्य रहता है।

यहाँ पर *दानम्* का प्रसंग आया है, जो वस्तुतः निर्भयता तथा अन्यों को स्वतंत्रता प्रदान करना है, किसी क्षणिक आनन्द या राहत का भौतिक साधन प्रदान करना नहीं। कोई भी भौतिक "दानी" व्यवस्था अन्ततोगत्वा काल-प्रवाह द्वारा कुचल दी जायेगी। इसलिए काल की पहुँच के परे अपने नित्य अस्तित्व का साक्षात्कार ही मनुष्य को निर्भय बना सकता है और भौतिक इच्छा से छुटकारा ही असली स्वतंत्रता है क्योंकि इससे प्रकृति के नियमों के बन्धन से छूटा जा सकता है। इसलिए असली दान तो लोगों में उनकी नित्य आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने में सहायता करना है।

धर्म को यहाँ पर *विभु* अर्थात् "शक्तिशाली" कहा गया है क्योंकि विश्वजनीन धार्मिक सिद्धान्त स्वयं भगवान् से भिन्न नहीं हैं और वे अन्ततः मनुष्य को भगवद्धाम ले जाने वाले हैं। यहाँ पर उल्लिखित गुण—सत्य, दया, तपस्या तथा दान—पवित्र जीवन के विश्वजनीन, असाम्प्रदायिक पक्ष हैं।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध में धर्म का चौथा पाँव स्वच्छता बतलाया गया है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार यह *दानम्* शब्द की वर्तमान संदर्भ में, वैकल्पिक परिभाषा है।

सन्तुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्तास्तितिक्षवः ।
आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सन्तुष्टाः—आत्मतुष्ट; करुणाः—दयालु; मैत्राः—मैत्री भाव वाले; शान्ताः—शान्त; दान्ताः—आत्मसंयमी; तितिक्षवः—सहिष्णु; आत्म-आरामाः—भीतर से आनन्दित; सम-दृशः—समदृष्टि रखने वाला; प्रायशः—अधिकांशतः; श्रमणाः—(आत्म-साक्षात्कार के लिए) उद्योगशील; जनाः—लोग।

सत्ययुग के लोग प्रायः आत्मतुष्ट, दयालु, सबों के मित्र, शान्त, गम्भीर तथा सहिष्णु होते हैं। वे अन्तःकरण से आनन्द लेने वाले, सभी वस्तुओं को एक-सा देखने वाले तथा आध्यात्मिक सिद्धि के लिए सदैव उद्योगशील होते हैं।

तात्पर्य : *सम-दर्शन* अर्थात् समान दृष्टि का आधार है सारी भौतिक विविधता के पीछे तथा सारे जीवों के भीतर भगवान् की अनुभूति।

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ।
अधर्मपादैरनृतहिंषासन्तोषविग्रहैः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

त्रेतायाम्—द्वितीय युग में; धर्म-पादानाम्—धर्म के पैरों का; तुर्य—एक चौथाई; अंशः—अंश; हीयते—नष्ट हो जाता है; शनैः—धीरे धीरे; अधर्म-पादैः—अधर्म के पैरों द्वारा; अनृत—झूठ; हिंसा—हिंसा; असन्तोष—असंतोष; विग्रहैः—तथा झगड़े से, कलह से।

त्रेतायुग में अधर्म के चार पैरों—झूठ, हिंसा, असंतोष तथा कलह—के प्रभाव से धर्म का प्रत्येक पैर क्रमशः एक चौथाई क्षीण हो जाता है।

तात्पर्य : झूठ से सत्य क्षीण होता है, हिंसा से दया, असंतोष से तपस्या और कलह से दान तथा स्वच्छता क्षीण होते हैं।

तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लम्पटाः ।
त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब (त्रेतायुग में); क्रिया—कर्मकाण्ड; तपः—तथा तप के प्रति; निष्ठाः—अनुरक्ति; न अति-हिंस्राः—अधिक उग्र नहीं; न लम्पटाः—मनमानी इन्द्रियतृप्ति चाहने वाले; त्रै-वर्गिकाः—धर्म, अर्थ तथा इन्द्रियतृप्ति के तीन सिद्धान्तों में रुचि रखने वाले; त्रयी—तीन वेदों के द्वारा; वृद्धाः—सम्पन्न बने; वर्णाः—समाज की चार श्रेणियाँ; ब्रह्म-उत्तराः—प्रायः ब्राह्मण; नृप—हे राजा।

त्रेतायुग में लोग कर्मकाण्ड तथा कठिन तपस्या में लगे रहते हैं। वे न तो अत्यधिक उग्र होते हैं न ऐन्द्रिय आनन्द के पीछे अत्यधिक कामुक होते हैं। उनकी रुचि मुख्यतः धर्म, आर्थिक विकास तथा नियमित इन्द्रियतृप्ति में रहती है और वे तीन वेदों की संस्तुतियों का पालन करते हुए सम्पन्नता प्राप्त करते हैं। हे राजा, यद्यपि इस युग में समाज में चार पृथक्-पृथक् श्रेणियाँ (वर्ण) उत्पन्न हो जाती हैं, किन्तु अधिकांश लोग ब्राह्मण होते हैं।

तपःसत्यदयादानेष्वर्धं ह्रस्वति द्वापरे ।
हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; सत्य—सत्य; दया—दया; दानेषु—तथा दान का; अर्धम्—अर्धम्; ह्रस्वति—घट जाता है; द्वापरे—द्वापर युग में; हिंसा—हिंसा; अतुष्टि—असंतोष; अनृत—झूठ; द्वेषैः—तथा घृणा से; धर्मस्य—धर्म का; अधर्म-लक्षणैः—अधर्म के लक्षणों से।

द्वापर युग में तपस्या, सत्य, दया तथा दान के धार्मिक गुण अपने अधार्मिक विलोम अंशों—असंतोष, असत्य, हिंसा तथा शत्रुता—के द्वारा घट कर आधे हो जाते हैं।

यशस्विनो महाशीलाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ।
आध्याः कुटुम्बिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

यशस्विनः—यश के लिए इच्छुक; महा-शीलाः—नेक; स्वाध्याय-अध्ययने—वैदिक वाङ्मय के अध्ययन में; रताः—लीन; आढ्याः—ऐश्वर्य से युक्त; कुटुम्बिनः—बड़े-बड़े परिवारों वाले; हृष्टाः—प्रसन्न; वर्णाः—समाज की चार श्रेणियाँ; क्षत्र-द्विज-उत्तराः—प्रायः क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों की प्रधानता।

द्वापर युग में लोग यश के भूखे तथा अत्यन्त नेक होते हैं। वे वेदाध्ययन में अपने को लगाते हैं, प्रचुर ऐश्वर्य वाले होते हैं, बड़े-बड़े परिवारों वाले होते हैं और जीवन का ओजपूर्वक आनन्द लूटते हैं। चारों वर्णों में से क्षत्रिय तथा ब्राह्मण ही सर्वाधिक संख्या में होते हैं।

कलौ तु धर्मपादानां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ।
एधमानैः क्षीयमाणो ह्यन्ते सोऽपि विनङ्क्ष्यति ॥ २४॥

शब्दार्थ

कलौ—कलियुग में; तु—तथा; धर्म-पादानाम्—धर्म के पैरों का; तुर्य-अंशः—एक चौथाई; अधर्म—अधर्म के; हेतुभिः—सिद्धान्तों से; एधमानैः—बढ़ने से; क्षीयमाणः—घटते हुए; हि—निस्सन्देह; अन्ते—अन्तमें; सः—वह चतुर्थांश; अपि—भी; विनङ्क्ष्यति—नष्ट हो जायेगा।

कलियुग में धार्मिक सिद्धान्तों का केवल एक चौथाई शेष रहता है। और यह अवशेष भी अधर्म के सदैव बढ़ने के कारण लगातार घटता जायेगा और अन्त में नष्ट हो जायेगा।

तस्मिन्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः ।
दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदासोत्तराः प्रजाः ॥ २५॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस युग में; लुब्धाः—लालची; दुराचाराः—बुरे आचरण वाले; निर्दयाः—निर्दयी; शुष्क-वैरिणः—व्यर्थ झगड़ा करने के लिए उद्यत; दुर्भगाः—अभागे; भूरि-तर्षाः—अनेक प्रकार की लालसाओं से त्रस्त; च—तथा; शूद्र-दास-उत्तराः—प्रमुखतया निम्न जाति के श्रमिक तथा बर्बर; प्रजाः—लोग।

कलियुग में लोग लोभी, दुराचारी तथा निर्दयी होते हैं और वे बिना कारण ही एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते हैं। कलियुग के लोग अभागे तथा भौतिक इच्छाओं से त्रस्त होकर, प्रायः सभी शूद्र तथा बर्बर होते हैं।

तात्पर्य : इस युग में हम देख सकते हैं कि अधिकांश लोग श्रमिक, क्लर्क, मछुवारे, कारीगर या शूद्र वर्ग के अन्तर्गत अन्य प्रकार के कर्मी हैं। प्रबुद्ध भगवद्भक्तों तथा नेक राजनीतिक नेताओं का सर्वथा अभाव है और स्वतंत्र व्यापारियों तथा किसानों का भी लोप हो रहा है क्योंकि बड़े-बड़े व्यापार के संघटन उन्हें लगातार अधीनस्थ कर्मचारियों में परिणत करते जा रहे हैं। पृथ्वी के विविध भागों में पहले से बर्बर तथा अर्ध-बर्बर लोग बसे हुए हैं जिससे सारी स्थिति अत्यन्त खतरनाक तथा धूमिल हो रही है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन में वर्तमान निराशाप्रद स्थिति को सुधारने की शक्ति प्राप्त है। घोर कलियुग के लिए यही एकमात्र आशा है।

सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ।
कालसञ्चोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ॥ २६॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतो; रजः—रजो; तमः—तमो; इति—इस प्रकार; दृश्यन्ते—देखे जाते हैं; पुरुषे—पुरुष में; गुणाः—गुण; काल-सञ्चोदिताः—काल से प्रेरित; ते—वे; वै—निस्सन्देह; परिवर्तन्ते—परिवर्तन को प्राप्त होते हैं; आत्मनि—मन के भीतर।

सतो, रजो तथा तमोगुण, जिनके रूपान्तर पुरुष के मन के भीतर देखे जाते हैं, काल की शक्ति से गतिमान होते हैं।

तात्पर्य : इन श्लोकों में वर्णित चारों युग भौतिक प्रकृति के विभिन्न गुणों की अभिव्यक्तियाँ हैं। सत्ययुग में भौतिक सतोगुण (अच्छाई) का प्राधान्य होता है और कलियुग तमोगुण की प्रधानता को प्रकट करता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार प्रत्येक युग में अन्य तीन युग यदाकदा उपयुगों के रूप में प्रकट होते हैं। इस तरह सत्ययुग में भी तमोगुणी राक्षस प्रकट हो सकता है और कलियुग में, कुछ काल तक, सर्वोच्च धर्म के सिद्धान्त पल्लवित हो सकते हैं। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* में वर्णन हुआ है, तीनों गुण सर्वत्र तथा सभी वस्तुओं में उपस्थित रहते हैं लेकिन प्रधान गुण या गुणों का मेल किसी भौतिक घटना के सामान्य आचरण को निश्चित करता है। इसलिए प्रत्येक युग में तीनों गुण विभिन्न अनुपातों में पाये जाते हैं। अच्छाई (सत्य), काम (त्रेता) तथा काम एवं अज्ञान (द्वापर) अथवा अज्ञान(कलि) द्वारा सूचित होने वाला युग विशेष अन्य युगों में भी पाया जाता है।

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।
तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥ २७॥

शब्दार्थ

प्रभवन्ति—प्रधान रूप से प्रकट होते हैं; यदा—जब; सत्त्वे—सतोगुण में; मनः—मन; बुद्धि—बुद्धि; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; च—तथा; तदा—तब; कृत-युगम्—कृतयुग में; विद्यात्—समझा जाना चाहिए; ज्ञाने—ज्ञान में; तपसि—तथा तपस्या में; यत्—जब; रुचिः—रुचि।

जब मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ पूरी तरह से सतोगुण में स्थित हैं, तो उस काल को सत्ययुग समझना चाहिए। तब लोग ज्ञान तथा तपस्या में रुचि लेते हैं।

तात्पर्य : *कृत* शब्द का अर्थ है "किया हुआ"। इस तरह सत्ययुग में सारे धार्मिक कृत्य ढंग से सम्पन्न किये जाते हैं और लोग आध्यात्मिक ज्ञान तथा तपस्या में पर्याप्त रुचि लेते हैं। यहाँ तक कि कलियुग में भी जो लोग सात्विक होते हैं, वे आध्यात्मिक ज्ञान के अनुशीलन तथा नियमित तपस्या करने में रुचि लेते हैं। यह दिव्य अवस्था उसके लिए सम्भव है, जिसने यौन-इच्छा को जीत लिया हो।

यदा कर्मसु काम्येषु भक्तिर्यशसि देहिनाम् ।
तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; कर्मसु—कर्म में; काम्येषु—स्वार्थ पर आधारित; भक्तिः—भक्ति; यशसि—सम्मान में; देहिनाम्—देहधारी आत्माओं के; तदा—तब; त्रेता—त्रेतायुग; रजः-वृत्तिः—राजसिक कार्यों की प्रधानता; इति—इस तरह; जानीहि—जानो; बुद्धि-मन्—हे बुद्धिमान राजा परीक्षित।

हे परम बुद्धिमान, जब बद्धजीव अपने कर्मों के प्रति समर्पित तो होते हैं किन्तु उनमें बाह्य मनोभाव पाये जाते हैं और वे निजी प्रतिष्ठा की खोज करते हैं, तो तुम यह जान लो कि ऐसी स्थिति त्रेतायुग की है, जिसमें राजसिक कर्मों की प्रधानता होती है।

यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः ।
कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; लोभः—लोभ; तु—निस्सन्देह; असन्तोषः—असन्तोष; मानः—मिथ्या अहंकार; दम्भः—दिखावा; अथ—तथा; मत्सरः—ईर्ष्या; कर्मणाम्—कर्मों का; च—तथा; अपि—भी; काम्यानाम्—स्वार्थी; द्वापरम्—द्वापर युग; तत्—वह; रजः-तमः—रजो तथा तमोगुण के मिश्रण की प्रधानता से।

जब लोभ, असन्तोष, मिथ्या अहंकार, दिखावा तथा ईर्ष्या प्रधान बन जाते हैं और साथ में स्वार्थपूर्ण कार्यों के लिए आकर्षण होता है, तो ऐसा काल द्वापर युग है, जिसमें रजो तथा तमोगुण के मिश्रण की प्रधानता होती है।

यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ।
शोकमोहौ भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; माया—धोखा; अनृतम्—झूठी वाणी; तन्द्रा—आलस्य; निद्रा—नींद तथा नशा; हिंसा—हिंसा; विषादनम्—विषाद; शोक—शोक; मोहौ—तथा मोह; भयम्—डर; दैन्यम्—दरिद्रता; सः—वह; कलिः—कलियुग; तामसः—तमोगुणी; स्मृतः—माना जाता है।

जब धोखा (कपट), झूठ, तन्द्रा, निद्रा, हिंसा, विषाद, शोक, मोह, भय तथा दरिद्रता का बोलबाला होता है, वह युग कलियुग अर्थात् तमोगुण का युग होता है।

तात्पर्य : कलियुग में लोग बुरी तरह से स्थूल भौतिकतावाद के प्रति अनुरक्त होते हैं। उनमें आत्म-साक्षात्कार के लिए शायद ही कोई आकर्षण होता हो।

तस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ।
कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—कलियुग के इन गुणों के कारण; क्षुद्र-दृशः—क्षुद्र दृष्टि; मर्त्याः—मनुष्य; क्षुद्र-भाग्याः—अभागे; महा-अशनाः—पेटू; कामिनः—काम-वासना से युक्त; वित्त-हीनाः—सम्पत्ति से रहित; च—तथा; स्वैरिण्यः—सामाजिक आचरण में स्वतंत्र; च—तथा; स्त्रियः—स्त्रियाँ; असतीः—असाध्वी, कुलटा।

कलियुग के दुर्गुणों के कारण मनुष्य क्षुद्र दृष्टि वाले, अभागे, पेटू, कामी तथा दरिद्र होंगे। स्त्रियाँ कुलटा होने से एक पुरुष को छोड़ कर दूसरे के पास स्वतंत्रतापूर्वक चली जायेंगी।

तात्पर्य : कलियुग में कुछ छद्म बुद्धिजीवी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की खोज करने के कारण, यौन मिश्रण का समर्थन करते हैं। वस्तुतः शरीर के साथ आत्मा की पहचान तथा आत्मा की बजाय शरीर में "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" की खोज निरे अज्ञान तथा काम की दासता के चिह्न हैं। जब स्त्रियाँ कुलटा हो जाती हैं, तो शादी से काम की उपज के रूप में अनेक बच्चे उत्पन्न होते हैं। ये बच्चे

प्रतिकूल परिस्थितियों में बढ़ते हैं जिससे मनोरोगी, अनभिज्ञ समाज का जन्म होता है। इसके लक्षण पहले से सारे जगत में दिख रहे हैं।

दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषण्डदूषिताः ।
राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

दस्यु-उत्कृष्टाः—चोरों का प्राधान्य होना; **जन-पदाः**—बसे हुए स्थान; **वेदाः**—वैदिक शास्त्र; **पाषण्ड**—नास्तिकों द्वारा; **दूषिताः**—दूषित; **राजानः**—राजनीतिक नेता; **च**—तथा; **प्रजा-भक्षाः**—जनता के भक्षक; **शिश्न-उदर**—जननांग तथा उदर; **पराः**—भक्त; **द्विजाः**—ब्राह्मण।

शहर चोरों से भरे होंगे, वेद नास्तिकों के द्वारा की गई मनमानी व्याख्या से दूषित किये जायेंगे, राजनीतिक नेता प्रजा का भक्षण करेंगे और तथाकथित पुरोहित तथा बुद्धिजीवी अपने पेट तथा जननांग के भक्त होंगे।

तात्पर्य : बड़े-बड़े शहर रात में असुरक्षित रहते हैं। उदाहरणार्थ, ऐसा सुना जाता है, कि रात के समय कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति न्यू यार्क के सेन्ट्रल पार्क में घूमने नहीं जायेगा क्योंकि उसे पता है कि उसका संभवतः गला घोट दिया जायेगा। बड़े-बड़े शहरों में सामान्य चोरों के अलावा जो इस युग में भरे पड़े हैं गला काटने वाले व्यापारी होते हैं, जो ग्राहकों को व्यर्थ की, बल्कि हानिकारक, वस्तुएँ खरीदने के लिए राजी कर लेते हैं। यह भलीभाँति ज्ञात है कि गो-मांस, तम्बाकू, मदिरा तथा अन्य आधुनिक सामग्रियाँ स्वास्थ्य को बर्बाद करनेवाली हैं, मानसिक स्वास्थ्य की बात जाने दें; तिस पर भी आधुनिक पूँजीपति इन वस्तुओं को बेचने के लिए तरह-तरह की मनोवैज्ञानिक युक्तियों का प्रयोग करने में संकोच नहीं करते हैं। आधुनिक शहर मानसिक तथा वायु-मण्डलीय प्रदूषण से भरे पड़े हैं और वे सामान्य नागरिकों तक के लिए असह्य हो चुके हैं।

इस श्लोक में यह भी इंगित है कि वैदिक शास्त्रों की शिक्षाएँ इस युग में तोड़ी-मरोड़ी जायेंगी। बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में हिन्दूवाद की शिक्षा दी जाती है, जिसमें भारतीय धर्म को बहुदेववादी करके बतलाया जाता है, जिसका उद्देश्य निर्विशेष मोक्ष है यद्यपि इसके विपरीत असीम प्रमाण मिलते हैं। वास्तव में सारा वैदिक वाङ्मय एक है, जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में स्वयं भगवान् कृष्ण ने कहा है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—सारे वेदों द्वारा मुझे ही जानना होता है। सारे वैदिक वाङ्मय का उद्देश्य परम पुरुष परब्रह्म विष्णु या कृष्ण के विषय में हमें प्रबुद्ध करना है। यद्यपि ईश्वर अनेक नामों से जाना जाता है और अनेक रूपों में प्रकट होता है, फिर भी वह एक है और पुरुष है। किन्तु कलियुग में यह असली वैदिक ज्ञान गुप्त है।

इस श्लोक में शुकदेव चतुराई से कहते हैं कि, ''राजनीतिक नेता जनता को खा जायेंगे और तथाकथित पुरोहित तथा बुद्धिजीवी अपने पेट तथा जननांग के भक्त होंगे।'' यह दुखद कथन कितना सटीक बैठता है!

अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ।
तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनोऽत्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

अव्रताः—अपने व्रतों को न कर पाने वाले; बटवः—ब्रह्मचारी; अशौचाः—अस्वच्छ; भिक्षवः—भीख माँगने को उन्मुख; च—तथा; कुटुम्बिनः—गृहस्थ जन; तपस्विनः—जंगल में जाकर तपस्या करने वाले; ग्राम-वासाः—ग्रामवासी; न्यासिनः—संन्यासी; अत्यर्थ-लोलुपाः—धनके लिए अत्यधिक लालची।

ब्रह्मचारी अपने व्रतों को सम्पन्न नहीं कर सकेंगे और सामान्यतया अस्वच्छ रहेंगे। गृहस्थ लोग भिखारी बन जायेंगे; वानप्रस्थी गाँवों में रहेंगे और संन्यासी लोग धन के लालची बन जायेंगे।

तात्पर्य : कलियुग में ब्रह्मचर्य एक तरह से लुप्त ही है। अमेरिका में अनेक बालक-विद्यालयों में सहशिक्षा दी जाती है क्योंकि युवा पुरुष विलासी युवतियों की संगति के बिना रहने से इंकार करते हैं। यही नहीं, हमने स्वयं देखा है कि समूचे पाश्चात्य जगत में छात्रावास सबसे गन्दे स्थान हैं जैसाकि *अशौचाः* शब्द से यहाँ भविष्यवाणी की गई है।

जहाँ तक गृहस्थ भिक्षुकों की बात है, जब भगवद्भक्त द्वार-द्वार जाकर दिव्य साहित्य बाँटते तथा ईश्वर की महिमा के प्रचारार्थ दान माँगते हैं, तो गृहस्थ लोग चिढ़ कर कहते हैं, ''कोई मुझे दान दे।'' कलियुग में गृहस्थ लोग दानी प्रवृत्ति वाले नहीं हैं। प्रत्युत अपनी दरिद्र मनोवृत्ति के कारण साधुओं के पहुँचने पर चिढ़ जाते हैं।

वैदिक संस्कृति में पचास वर्ष की आयु में, दम्पति तपस्वी जीवन तथा आध्यात्मिक सिद्धि के लिए तीर्थस्थानों में जाकर रहते हैं। किन्तु अमरीका जैसे देशों में विश्राम नगरियाँ बना दी गई हैं जिनमें बूढ़े लोग गोल्फ, पिंगपोंग और शफलबोर्ड जैसे खेल खेलने तथा प्रेमालाप करने के दयनीय प्रयासों में अपने जीवन के अन्तिम वर्षों को गँवाकर, अपने आप को मूर्ख बनाते हैं यद्यपि उनके शरीर जर्जर होते हैं और मन बूढ़े हो रहे होते हैं। जीवन के अन्तिम दिनों का यह शर्मनाक दुरुपयोग मानव जीवन के असली उद्देश्य को स्वीकार न करने की प्रबल अनिच्छा का सूचक है और निश्चित रूप से ईश्वर के प्रति अपराध है।

न्यासिनोत्यर्थलोलुपाः शब्द सूचित करते हैं कि करिश्मा दिखाने वाले तथा बिना करिश्मा वाले धार्मिक नेता अपने को पैगम्बर, सन्त तथा अवतार घोषित करेंगे जिससे अबोध जनता को ठग कर अपना बैंक-खाता भर सकें। इसीलिए इस्कान सारे विश्व में प्रामाणिक ब्रह्मचर्य जीवन, धार्मिक गृहस्थ जीवन, प्रतिष्ठित तथा प्रगतिशील अवकाश-काल तथा असली आध्यात्मिक अगुवई स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है। ९ मई १९८२ को हमने ब्राजील के रायोडि जनीरो जैसे विलासी शहर में तीन युवकों को, जिनमें से दो ब्राजील के निवासी तथा एक अमरीकी है, इस आशा के साथ संन्यास प्रदान किया है कि वे संन्यास के कठिन व्रत को विश्वसनीय ढंग से पूरा करेंगे और दक्षिण अमेरिका में सही आध्यात्मिक अगुवाई करेंगे।

ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ।
शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

ह्रस्व-कायाः—नाटे शरीर वाली; महा-आहाराः—अत्यधिक खाने वाली; भूरि-अपत्याः—अनेक सन्तानों वाली; गत-ह्रियः—बेशर्म; शश्वत्—निरन्तर; कटुक—कटु, कड़वा; भाषिण्यः—बोलने वाली; चौर्य—चोरी की प्रवृत्ति वाली; माया—कपट; उरु-साहसाः—तथा अत्यधिक साहस।.

स्त्रियों का आकार काफी छोटा हो जायेगा और वे अधिक भोजन करेंगी, अधिक सन्तानें उत्पन्न करेंगी जिनका पालन-पोषण करने में वे अक्षम होंगी और सारी लाज खो बैठेंगी। वे सदैव कड़वा बोलेंगी और चोरी, कपट तथा अनियंत्रित साहस के गुण प्रदर्शित करेंगी।

पणयिष्यन्ति वै क्षुद्राः किराटाः कूटकारिणः ।
अनापद्यपि मंस्यन्ते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

पणयिष्यन्ति—व्यापार में लगेंगे; वै—निस्सन्देह; क्षुद्राः—क्षुद्र; किराटाः—व्यापारी; कूट-कारिणः—ठगी में लगे हुए; अनापदि—जब कोई आपात् काल न हो; अपि—भी; मंस्यन्ते—मानेंगे; वार्ताम्—वृत्ति, पेशा; साधु—उत्तम; जुगुप्सिताम्—वास्तव में घृणित।.

व्यापारी लोग क्षुद्र व्यापार में लगे रहेंगे और धोखाधड़ी से धन कमायेंगे। आपात् काल न होने पर भी लोग किसी भी अधम पेशे को अपनायेंगे।

तात्पर्य : यद्यपि अन्य पेशे उपलब्ध रहते हैं किन्तु लोग कोयला-खानों, कसाई-घरों, इस्पात के कारखानों, मरुस्थलों, तैरते हुए तेल निकालने के संयत्रों, पनडुब्बियों तथा इसी तरह के अन्य घृणित स्थानों पर कार्य करने से नहीं हिचकिचाते। जैसाकि यहाँ बताया गया है, व्यापारी लोग धोखाधड़ी तथा झूठ बोलने को व्यापार के लिए उचित मानेंगे। ये सभी कलियुग के लक्षण हैं।

पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ।
भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

पतिम्—स्वामी को; त्यक्ष्यन्ति—छोड़ देंगे; निर्द्रव्यम्—धन से रहित; भृत्याः—नौकर; अपि—भी; अखिल-उत्तमम्—गुणों में सर्वश्रेष्ठ; भृत्यम्—नौकर को; विपन्नम्—अक्षम; पतयः—स्वामी; कौलम्—पीढ़ियों से परिवार से सम्बद्ध; गाः—गौवें; च—तथा; अपयस्विनीः—जिन्होंने दूध देना बन्द कर दिया है।.

नौकर उस मालिक को छोड़ देंगे जिसकी सम्पत्ति नष्ट हो चुकी है भले ही वह मालिक सन्त उत्कृष्ट आचरण का क्यों न हो। मालिक भी अक्षम नौकर को त्याग देंगे भले ही वह नौकर पीढ़ियों से उस परिवार में क्यों न रहा हो। दूध न देने वाली गौवों को या तो छोड़ दिया जायेगा या मार दिया जायेगा।

तात्पर्य : भारत में गाय को पवित्र माना जाता है, इसलिए नहीं कि भारत के लोग

अन्धविश्वासी भक्त हैं अपितु इसलिए कि हिन्दू अच्छी तरह समझते हैं कि गाय माता है। बचपन में, हम सभी गाय के दूध से पले हैं इसलिए गाय हमारी माताओं में से है। निस्सन्देह, किसी की माता पवित्र होती है, अतएव हमें पवित्र गाय की हत्या नहीं करनी चाहिए।

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः ।
ननान्दृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

पितृ—अपने पिता; भ्रातृ—भाइयों; सुहृत्—शुभचिन्तक मित्रों; ज्ञातीन्—तथा निकट सम्बन्धियों को; हित्वा—छोड़ कर; सौरत—यौन-सम्बन्ध पर आधारित; सौहृदाः—मित्रता की धारणा; ननान्दृ—श्यालियों के साथ; श्याल—तथा साले; संवादाः—लगातार संगति करते हुए; दीनाः—कंजूस; स्त्रैणाः—स्त्री-भक्त; कलौ—कलियुग में; नराः—पुरुष।

कलियुग में मनुष्य कंजूस तथा स्त्रियों द्वारा नियंत्रित होंगे। वे अपने पिता, भाई, अन्य सम्बन्धियों तथा मित्रों को त्याग कर साले तथा सालियों की संगति करेंगे। इस तरह उनकी मैत्री की धारणा नितान्त यौन-सम्बन्धों पर आधारित होगी।

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः ।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

शूद्राः—निम्न जाति के श्रमिक; प्रतिग्रहीष्यन्ति—धार्मिक दान लेंगे; तपः—तपस्या का दिखावा करके; वेष—तथा साधु का वेश बनाकर; उपजीविनः—अपनी जीविका कमाते हुए; धर्मम्—धर्म के सिद्धान्तों के विषय में; वक्ष्यन्ति—बोलेंगे; अधर्म-ज्ञाः—धर्म से अनभिज्ञ; अधिरुह्य—चढ़ कर; उत्तम-आसनम्—उच्च आसन पर।

असंस्कृत लोग भगवान् के नाम पर दान लेंगे और तपस्या का स्वाँग रचाकर तथा साधु का वेश धारण करके अपनी जीविका चलायेंगे। धर्म न जानने वाले उच्च आसन पर बैठेंगे और धार्मिक सिद्धान्तों का प्रवचन करने का ढोंग रचेंगे।

तात्पर्य : यहाँ पर कुत्सित गुरुओं, स्वामियों, पुरोहितों इत्यादि का खुल कर वर्णन हुआ है।

नित्यं उद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरकर्शिताः ।
निरन्ने भूतले राजननावृष्टिभयातुराः ॥ ३९ ॥
वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ।
हीनाः पिशाचसन्दर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

नित्यम्—निरन्तर; उद्विग्न—अशान्त; मनसः—उनके मन; दुर्भिक्ष—अकाल; कर—तथा टैक्स से; कर्शिताः—दुर्बल; निरन्ने—जब खाने को भोजन न मिले; भू-तले—पृथ्वी पर; राजन्—हे राजा परीक्षित; अनावृष्टि—सूखे का; भय—भय के कारण; आतुराः—उद्विग्न; वासः—वस्त्र; अन्न—भोजन; पान—पेय; शयन—विश्राम; व्यवाय—यौन; स्नान—स्नान; भूषणैः—तथा निजी आभूषणों से; हीनाः—रहित; पिशाच-सन्दर्शाः—पिशाचों की तरह लगने वाले; भविष्यन्ति—होंगे; कलौ—कलियुग में; प्रजाः—लोग।

कलियुग में लोगों के मन सदैव अशान्त रहेंगे। हे राजा, वे अकाल तथा कर-भार से दुर्बल हो जायेंगे और सूखे के भय से सदैव विचलित रहेंगे। उन्हें पर्याप्त वस्त्र, भोजन तथा पेय का अभाव रहेगा; वे न तो ठीक से विश्राम कर सकेंगे, न संभोग या स्नान कर सकेंगे। उनकेपास अपने शरीरों को सुसज्जित करने के लिए आभूषण नहीं होंगे। वस्तुतः कलियुग के लोग धीरे-धीरे पिशाच दिखने लगेंगे।

तात्पर्य : यहाँ पर वर्णित लक्षण पहले ही अनेक देशों में प्राप्य हैं और धीरे-धीरे ये अन्य स्थानों में फैल जायेंगे जो अभक्ति तथा भौतिकतावाद में फँसे हुए हैं।

कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ।
त्यक्ष्यन्ति च प्रियान्प्राणान्हनिष्यन्ति स्वकानपि ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कलौ—कलियुग में; काकिणिके—छोटे-से सिक्के के; अपि—भी; अर्थे—हेतु; विगृह्य—शत्रुता उत्पन्न करके; त्यक्त—छोड़ते हुए; सौहृदाः—मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों; त्यक्ष्यन्ति—त्याग देंगे; च—तथा; प्रियान्—प्रिय; प्राणान्—अपने जीवनों को; हनिष्यन्ति—मारेंगे; स्वकान्—अपने सगों को; अपि—भी।

कलियुग में लोग कुछ ही सिक्कों के लिए शत्रुता ठान लेंगे। वे सारे मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को त्याग कर स्वयं मरने तथा अपने ही सम्बन्धियों को मार डालने पर उतारू हो जायेंगे।

न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ।
पुत्रान्भार्यां च कुलजां क्षुद्राः शिश्नोदरंभराः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

न रक्षिष्यन्ति—रक्षा नहीं करेंगे; मनुजाः—मनुष्य; स्थविरौ—वृद्ध; पितरौ—माता-पिता; अपि—भी; पुत्रान्—बच्चों को; भार्याम्—पत्नी को; च—भी; कुल-जाम्—अच्छे परिवार में जन्मे; क्षुद्राः—नीच; शिश्न-उदरम्—अपने जननांगों तथा पेट को; भराः—भरण करते हुए।

लोग अपने बूढ़े माता-पिता, अपने बच्चों या अपनी सम्मान्य पत्नियों की रक्षा नहीं कर सकेंगे। वे अत्यन्त पतित होकर अपने पेटों तथा जननांगों की तुष्टि में लगे रहेंगे।

तात्पर्य : इस युग में अनेक लोग अपने वृद्ध माता-पिता को एकान्त और प्रायः अनोखे, वृद्धावस्था निकेतनों में भेज रहे हैं यद्यपि उनके वृद्ध माता-पिता ने अपने बच्चों की सेवा करने में अपना सारा जीवन बिता दिया था।

इस युग में तरुण बच्चों को भी अनेक प्रकार से सताया जाता है। हाल के वर्षों में बच्चों में आत्महत्या की घटनाओं में नाटकीय अभिवृद्धि हुई है क्योंकि उनका जन्म प्रेमी धार्मिक माता-पिता के यहाँ नहीं, अपितु अधम, स्वार्थी स्त्री-पुरुषों से होता है। वस्तुतः बच्चे प्रायः इसलिए जन्म लेते हैं क्योंकि गर्भनिरोध की गोली या ऐसी ही कोई और गर्भ निरोधक युक्ति ठीक से काम नहीं करती। ऐसी परिस्थितियों में माता-पिता के लिए अपने बच्चों का सही मार्गदर्शन कर पाना अत्यन्त कठिन है। आध्यात्मिक विद्या से सामान्यतया अनजान माता-पिता अपने बच्चों को मुक्ति के मार्ग

पर नहीं ले जा पाते और इस तरह पारिवारिक जीवन में अपना प्रारम्भिक उत्तरदायित्व नहीं पूरा कर पाते।

जैसी कि इस श्लोक में भविष्यवाणी की गई है, वर्ण-संकरता अति सामान्य हो चुकी है और लोग सामान्य रूप से भोजन तथा यौन की ही चिन्ता करते हैं क्योंकि वे परब्रह्म को जानने की अपेक्षा इन्हें अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं।

कलौ न राजन्जगतां परं गुरुं
त्रिलोकनाथानतपादपङ्कजम् ।
प्रायेण मर्त्या भगवन्तमच्युतं
यक्ष्यन्ति पाषण्डविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

कलौ—कलियुग में; न—नहीं; राजन्—हे राजा; जगताम्—ब्रह्माण्ड के; परम्—परम; गुरुम्—गुरु को; त्रि-लोक—तीनों लोकों के; नाथ—विविध स्वामियों द्वारा; आनत—झुकाये गये; पाद-पङ्कजम्—जिनके चरणकमल; प्रायेण—प्रायः; मर्त्याः—मनुष्य; भगवन्तम्—भगवान्; अच्युतम्—अच्युत को; यक्ष्यन्ति—भेंट चढ़ायेंगे; पाषण्ड—नास्तिकता द्वारा; विभिन्न—पृथक्-पृथक्; चेतसः—बुद्धि वाले।

हे राजा, कलियुग में लोगों की बुद्धि नास्तिकता के द्वारा विचलित हो जायेगी और वे ब्रह्माण्ड के परम गुरु स्वरूप भगवान् को कभी भी उपहार नहीं चढ़ायेंगे। तीनों लोकों के नियन्ता महापुरुष तक भगवान् के चरणकमलों पर अपना शीश झुकाते हैं, किन्तु इस युग के क्षुद्र एवं दुखी लोग ऐसा नहीं करेंगे।

तात्पर्य : सारे जगत के उद्गम परब्रह्म को ढूँढने की प्रेरणा सनातन काल से विभिन्न मतों के दार्शनिकों, धर्माचार्यों तथा अन्य बुद्धिजीवियों को प्रोत्साहित करती रही है और आज भी कर रही है। किन्तु तथाकथित दर्शनों, धर्मों, मार्गों, जीवन-शैलियों का गंभीरता से विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि लगभग सभी का परम लक्ष्य तो निर्विशेष या निराकार हैं। किन्तु इस निर्विशेष या निराकार परब्रह्म के विचार में अनेक गम्भीर तार्किक दोष हैं। तर्कशास्त्र के सामान्य नियमों के अनुसार, किसी भी कार्य का कारण तो होना ही चाहिए। इसलिए जिसका व्यक्तित्व या कर्म न हो वह सारे व्यक्तित्व तथा कर्म का उद्गम नहीं हो सकता।

परम सत्य को दार्शनिकता का जामा पहनाने की हमारी दुर्दम प्रवृत्ति उस वस्तु को खोजने के लिए वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा योगिक प्रयास कराती है, जिससे हर वस्तु उद्भूत होती है। यह भौतिक जगत, जो ऊपर से कार्यकारण का अनन्त जाल प्रतीत होता है, निश्चित रूप से परब्रह्म नहीं है क्योंकि भौतिक पदार्थों का वैज्ञानिक परीक्षण हमें बताता है कि भौतिक शक्ति ही विभिन्न रूपों तथा अवस्थाओं में परिणत होती है इसलिए कोई एक भौतिक सत्य अन्य सारी वस्तुओं का चरम स्रोत नहीं हो सकता।

हम यह कल्पना कर सकते हैं कि पदार्थ किसी न किसी आकार में सदैव विद्यमान रहता है।

किन्तु यह सिद्धान्त आधुनिक ब्रह्माण्ड-विदों के लिए यथा मेसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टेकनालीजी के वैज्ञानिकों के लिए आकर्षक नहीं रहा। यदि हम यह मान भी लें कि पदार्थ सदैव से विद्यमान रहा है, तो हमें चेतना का स्रोत बताना होगा यदि हम परम सत्य की खोज के लिए अपनी दार्शनिक प्रेरणा को संतुष्ट करना चाहते हों। यद्यपि आधुनिक संकल्पनावादी लोग कहते हैं कि पदार्थ के अलावा कुछ भी सत्य नहीं है किन्तु लोगों का यह सामान्य अनुभव है कि चेतना पत्थर, पेंसिल या जल जैसी कोई वस्तु नहीं है। जागरूकता चेतना की वस्तुओं की तुलना में अपने आप में कोई भौतिक सत्ता नहीं है अपितु यह अनुभूति तथा ज्ञान की विधि है। यद्यपि पदार्थ तथा चेतना के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के अनेक प्रमाण हैं किन्तु इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं है कि पदार्थ चेतना का *कारण* है। इस तरह यह सिद्धान्त कि भौतिक जगत सदा से विद्यमान रहा है अतएव यही परम सत्य है, न तो वैज्ञानिक रूप से, न ही आन्तरिक रूप से चेतना के स्रोत को बता पाता है, जबकि चेतना हमारे जीवन का सबसे मूलभूत असली पक्ष है।

इसके अतिरिक्त, जैसाकि न्यू यार्क स्टेट विश्वविद्यालय, बिंधमटन के डा. रिचर्ड थाम्प्सन ने प्रदर्शित किया है और भौतिक विज्ञान के नोबेल विजेताओं ने, उनके कार्य की प्रशंसा करते हुए, पुष्टि की है, पदार्थ के रूपान्तरण-सम्बन्धी प्रकृति के नियमों में पर्याप्त सूचना-सामग्री उपलब्ध नहीं है, जिससे हमारे तथा अन्य जीवों के शरीरों के भीतर घट रही अकल्पनीय जटिल घटनाओं पर प्रकाश पड़ सके। दूसरे शब्दों में, न केवल प्रकृति के भौतिक नियम, चेतना के अस्तित्व का कारण बता सकने में असफल रहे हैं, अपितु वे जटिल जैविक स्तर पर भौतिक तत्त्वों की पारस्परिक प्रक्रिया का स्पष्टीकरण करने में भी असमर्थ हैं। पाश्चात्य देशों के प्रथम महान् दार्शनिक सॉक्रेटिज भी, यांत्रिक सिद्धान्तों के आधार पर, अन्तिम कार्य-कारण स्थापित करने के प्रयासों पर, हताश थे।

सूर्य की किरणों की तपन तथा चमक यह प्रत्येक बुद्धिसंगत मनुष्य को संतोष दिलाती है कि इन किरणों का स्रोत सूर्य कोई अंधकारपूर्ण ठंडा मण्डल नहीं अपितु असीम तपन तथा प्रकाश का आगार है। इसी तरह सृष्टि में व्यक्ति तथा उसकी चेतना के अनेक उदाहरण यह दिखाने के लिए पर्याप्त हैं कि चेतना तथा साकार आचरण का कोई असीम आगार है।

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने अपने वार्तालाप 'फिलेबस' में, तर्क किया था कि जिस प्रकार हमारे शरीर के भौतिक तत्त्व, ब्रह्माण्ड में विद्यमान भौतिक तत्त्वों के विशाल आगार से उद्धृत किए जाते हैं, उसी तरह हमारी तर्कसंगत बुद्धि भी ब्रह्माण्ड में विद्यमान महान् सृष्ट्यात्मक बुद्धि से प्राप्त की जाती है और यह परम बुद्धि विश्व-स्रष्टा भगवान् ही हैं। दुर्भाग्यवश, कलियुग में, अनेक प्रमुख विचारक इसे नहीं समझ सकते और वे उलटे, इस तथ्य से इनकार करते हैं कि हमारी निजी चेतना का स्रोत, परम सत्य, भी चेतना तथा रूप रखता है।यह उतना ही तर्कपूर्ण है जितना यह कहना कि सूर्य शीतल और अंधकारमय है।

कलियुग में कई लोग सस्ते तर्क प्रस्तुत करते हैं कि, ''यदि ईश्वर के शरीर या व्यक्तित्व है, तो

इससे वह सीमित हो जाता है।'' तर्क के इस असफल प्रयास में, एक योग्य शब्दावली व्यापक दृष्टि में गलत तौर पर प्रस्तुत की जाती है। हमें वास्तव में यह कहना चाहिए ''यदि ईश्वर के ऐसा भौतिक शरीर अथवा भौतिक व्यक्तित्व उन लोगों की भाँति होता जिसका हमें अनुभव है, तो वह सीमित होगा।''

भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत तथा अन्य वैदिक ग्रंथ हमें शिक्षा देते हैं कि परब्रह्म का दिव्य रूप तथा व्यक्तित्व असीम है। स्पष्ट है कि सचमुच ही अनन्त होने के लिए ईश्वर को न केवल मात्रा की दृष्टि से अपितु गुणात्मक दृष्टि से असीम होना चाहिए। दुर्भाग्यवश, हमारे मशीनी तथा औद्योगिक युग में हम अनन्तता को मात्रात्मक रूप में परिभाषित करते हैं। इस तरह हम व्यक्ति के गुणों की अनन्तता में उसका आवश्यक पक्ष नहीं देख पाते। दूसरे शब्दों में, ईश्वर में असीम सौन्दर्य, असीम धन, असीम बुद्धि, अनन्त रस, अनन्त करुणा, अनन्त क्रोध, इत्यादि होने चाहिए। अनन्त परम है और यदि इस संसार में किसी दृश्य वस्तु का, किसी कारण, परम की हमारी इस धारणा में समावेश नहीं है, तो वह धारणा किसी सीमित पदार्थ की है, अनन्त की बिल्कुल नहीं।

केवल कलियुग में दार्शनिक जन इतने मूर्ख हैं कि वे ईश्वर की परिभाषा भौतिकतावादी सापेक्ष विधियों से बड़े गर्व से करते हैं और अपने को प्रबुद्ध चिन्तक घोषित करते हैं। हमारा मस्तिष्क कितना ही बड़ा क्यों न हो, हममें उसे भगवान् के चरणों पर रखने की सामान्य बुद्धि होनी चाहिए।

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन्स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

यत्—जिसका; नामधेयम्—नाम; म्रियमाणः—मर रहा व्यक्ति; आतुरः—पीड़ित; पतन्—गिरता; स्खलन्—शब्द रुद्ध होते; वा—अथवा; विवशः—असहाय; गृणन्—कीर्तन करते; पुमान्—पुरुष; विमुक्त—मुक्त; कर्म—सकाम कर्म का; अर्गलः—जंजीरों से; उत्तमाम्—सर्वोच्च; गतिम्—लक्ष्य; प्राप्नोति—पाता है; यक्ष्यन्ति न—नहीं पूजते; तम्—उसको, भगवान् को; कलौ—कलियुग में; जनाः—लोग।

मरने वाला व्यक्ति भयभीत होकर अपने बिस्तर पर गिर जाता है। यद्यपि उसकी वाणी अवरुद्ध हुई रहती है और उसे इसका बोध नहीं रहता कि वह क्या कह रहा है, किन्तु यदि वह भगवान् का पवित्र नाम लेता है, तो कर्मफल से मुक्त हो सकता है और चरम गन्तव्य को प्राप्त कर सकता है। किन्तु तो भी कलियुग में लोग भगवान् की पूजा नहीं करेंगे।

तात्पर्य : आप घोड़े को नदी के पास तो ले जा सकते हैं किन्तु आप उसे पानी पीने को बाध्य नहीं कर सकते।

पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ।
सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ४५॥

शब्दार्थ

पुंसाम्—मनुष्यों को; कलि-कृतान्—कलि के प्रभाव से उत्पन्न; दोषान्—दोष; द्रव्य—पदार्थ; देश—स्थान; आत्म—तथा साक्षात् प्रकृति; सम्भवान्—पर आधारित; सर्वान्—सारे; हरति—चुरा लेता है; चित्त-स्थः—हृदय के भीतर स्थित; भगवान्—सर्वशक्तिमान प्रभु; पुरुष-उत्तमः—परम पुरुष।

कलियुग में वस्तुएँ, स्थान तथा व्यक्ति सभी प्रदूषित हो जाते हैं। किन्तु भगवान् उस व्यक्ति के जीवन से ऐसा सारा कल्मष हटा सकते हैं, जो अपने मन के भीतर भगवान् को स्थिर कर लेता है।

श्रुतः सङ्कीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा ।
नृणां धुनोति भगवान्हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्रुतः—सुना हुआ; सङ्कीर्तितः—महिमागान किया हुआ; ध्यातः—ध्यान धरा हुआ; पूजितः—पूजित; च—तथा; आदृतः—सम्मानित; अपि—भी; वा—अथवा; नृणाम्—मनुष्यों का; धुनोति—धो देता है; भगवान्—भगवान्; हृत्-स्थः—उनके हृदयों के भीतर स्थित; जन्म-अयुत—हजारों जन्मों का; अशुभम्—अशुभ कल्मष।

यदि कोई व्यक्ति हृदय के भीतर स्थित परमेश्वर के विषय में सुनता है, उनकी महिमा का गान करता है, उनका ध्यान करता है, उनकी पूजा करता है या परमेश्वर का अत्यधिक आदर करता है, तो भगवान् उसके मन से हजारों जन्मों से संचित कल्मष को दूर कर देते हैं।

यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम् ।
एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; हेम्नि—सोने में; स्थितः—स्थित; वह्निः—आग; दुर्वर्णम्—बदरंगपना; हन्ति—नष्ट कर देती है; धातु-जम्—अन्य धातुओं के कारण उत्पन्न रंग; एवम्—इसी तरह; आत्म-गतः—आत्मा में प्रवेश करके; विष्णुः—भगवान् विष्णु; योगिनाम्—योगियों का; अशुभ-आशयम्—गंदा मन।

जिस तरह सोने को गलाने पर अग्नि अन्य धातुओं की रंचमात्र उपस्थिति से उत्पन्न बदरंग को दूर कर देती है उसी तरह हृदय के भीतर स्थित भगवान् विष्णु योगियों के मन को शुद्ध कर देते हैं।

तात्पर्य : भले ही कोई व्यक्ति योग प्रणाली का अभ्यास करता हो किन्तु उसकी वास्तविक आध्यात्मिक प्रगति हृदय के भीतर स्थित भगवान् की कृपा के कारण होती है। यह उसकी तपस्या तथा ध्यान का प्रत्यक्ष फल नहीं होता। यदि कोई मूर्खतावश योग के नाम पर गर्वित हो, तो उसका आध्यात्मकि पद हास्यास्पद बन जाता है।

विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्री-
तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा

यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

विद्या—देवताओं की पूजा से; तपः—तपस्या; प्राण-निरोध—प्राणायाम्; मैत्री—दया; तीर्थ-अभिषेक—तीर्थ-स्नान; व्रत—कठिन व्रत; दान—दान; जप्यैः—तथा मंत्रोच्चार द्वारा; न—नहीं; अत्यन्त—पूर्ण; शुद्धिम्—शुद्धि; लभते—प्राप्त कर सकता है; अन्तः-आत्मा—मन; यथा—जिस तरह; हृदि-स्थे—हृदय के भीतर स्थित रहने पर; भगवति—भगवान् में; अनन्ते—असीम भगवान्, अनन्त।

देवपूजा, तपस्या, प्राणायाम, दया, तीर्थ-स्नान, कठिन व्रत, दान तथा विविध मंत्रों के उच्चारण से मनुष्य के मन को वैसी परम शुद्धि प्राप्त नहीं हो सकती जैसी कि हृदय के भीतर अनन्त भगवान् के प्रकट होने पर होती है।

तस्मात्सर्वात्मना राजन्हृदिस्थं कुरु केशवम् ।
म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; सर्व-आत्मना—सारे प्रयास से; राजन्—हे राजा; हृदि-स्थम्—हृदय के भीतर; कुरु—करो; केशवम्—भगवान् केशव को; म्रियमाणः—मरते हुए; हि—निस्सन्देह; अवहितः—एकाग्र; ततः—तब; यासि—जा सकोगे; परम्—परम; गतिम्—गन्तव्य को।

इसलिए हे राजा, अपनी शक्ति-भर अपने हृदय में परम भगवान् केशव को स्थिर करने का प्रयास करो। यह एकाग्रता भगवान् पर बनाये रखो और अपनी मृत्यु के समय तुम निश्चित रूप से परम गन्तव्य को प्राप्त करोगे।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् हर एक जीव के हृदय में सदैव रहते हैं, किन्तु *हृदि-स्थं कुरु केशवम्* शब्द सूचित करते हैं कि हर एक को भगवान् की उपस्थिति हृदय में अनुभव करनी चाहिए और हर क्षण इस जागरूकता को बनाये रखना चाहिए। परीक्षित महाराज इस संसार को त्यागने वाले थे और वे अपने गुरु शुकदेव गोस्वामी से अन्तिम उपदेश प्राप्त कर रहे थे। राजा के आसन्न प्रयाण की दृष्टि से यह श्लोक विशेष महत्त्व रखता है।

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ।
आत्मभावं नयत्यङ्ग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

म्रियमाणैः—मरने वालों के द्वारा; अभिध्येयः—ध्यान किये गये; भगवान्—भगवान्; परम-ईश्वरः—परमेश्वर; आत्म-भावम्—अपनी असली पहचान; नयति—उन्हें ले जाती है; अङ्ग—हे राजा; सर्व-आत्मा—परमात्मा; सर्व-संश्रयः—सभी प्राणियों के आश्रय।

हे राजा, भगवान् परम नियन्ता हैं। वे परमात्मा हैं और सारे प्राणियों के परम आश्रय हैं। मरणासन्न लोगों के द्वारा ध्यान किये जाने पर वे उन्हें अपना नित्य आध्यात्मिक स्वरूप प्रकट करते हैं।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

कलेः—कलियुग के; दोष-निधेः—दोष के सागर में; राजन्—हे राजा; अस्ति—है; हि—निश्चय ही; एकः—एक; महान्—महान्; गुणः—सद्गुण; कीर्तनात्—कीर्तन से; एव—निश्चय ही; कृष्णस्य—कृष्ण-नाम के; मुक्त-सङ्गः—भवबंधन से मुक्त; परम्—दिव्य धाम को; व्रजेत्—जा सकता है।

हे राजन्, यद्यपि कलियुग दोषों का सागर है फिर भी इस युग में एक अच्छा गुण है—केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने से मनुष्य भवबन्धन से मुक्त हो जाता है और दिव्य धाम को प्राप्त होता है।

तात्पर्य : इस कलियुग के असंख्य दोषों का उल्लेख करने के बाद शुकदेव गोस्वामी अब उसके एक अच्छे पक्ष का उल्लेख करते हैं। जिस तरह एक शक्तिशाली राजा असंख्य चोरों को मार सकता है, उसी तरह एक आध्यात्मिक सद्गुण इस युग के सारे कल्मष को नष्ट कर सकता है। इस पतित युग में हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे कीर्तन करने के महत्त्व का अनुमान लगा पाना असम्भव है।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

कृते—सत्ययुग में; यत्—जो; ध्यायतः—ध्यान से; विष्णुम्—एक विष्णु को; त्रेतायाम्—त्रेतायुग में; यजतः—पूजा करने से; मखैः—यज्ञ करने से; द्वापरे—द्वापर युग में; परिचर्यायाम्—भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की पूजा करने से; कलौ—कलियुग में; तत्—वही फल (प्राप्त किया जा सकता है); हरि-कीर्तनात्—केवल हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन से।

जो फल सत्ययुग में विष्णु का ध्यान करने से, त्रेतायुग में यज्ञ करने से तथा द्वापर युग में भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने से, प्राप्त होता है, वही कलियुग में केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करके प्राप्त किया जा सकता है।

तात्पर्य : ऐसा ही श्लोक *विष्णु पुराण* (६.२.१७) में और *पद्म पुराण* (उत्तर खंड ७२.२५) तथा *बृहन्नारदीय पुराण* (३८.९७) में भी पाया जाता है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रैतायां द्वापरेर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥

"सत्ययुग में जो ध्यान के द्वारा, त्रेता में यज्ञ करने से तथा द्वापर में कृष्ण के चरणकमलों की पूजा से प्राप्त किया जाता है, उसे कलियुग में भगवान् केशव के नाम-कीर्तन द्वारा प्राप्त किया जाता है।"

श्रील जीव गोस्वामी ने कलियुग में लोगों की पतितावस्था के विषय में *ब्रह्मवैवर्त पुराण* से उद्धरण दिया है—

अत: कलौ तपोयोगविद्यायज्ञादिका: क्रिया: ।
सांगा भवन्ति न कृता: कुशलैरपि देहिभि: ॥

''इस तरह कलियुग में अत्यन्त दक्ष देहधारी आत्माओं द्वारा भी तप, योग–ध्यान, अर्चापूजन, यज्ञ के साथ साथ अन्य गौण कार्यों का अभ्यास ठीक से नहीं चल पाता।''

श्रील जीव गोस्वामी ने इस युग में हरे कृष्ण कीर्तन की आवश्यकता के विषय में *स्कन्द पुराण* के *चातुर्मास माहात्म्य* का भी उद्धरण दिया है—

तथा चैवोत्तमं लोके तप: श्रीहरिकीर्तनम्।
कलौ युगे विशेषेण विष्णुप्रीत्यै समाचरेत्॥

''इस तरह इस जगत में जो सर्वाधिक पूर्ण तपस्या की जानी है, वह श्री हरि के नाम का कीर्तन है। विशेष रूप से कलियुग में संकीर्तन द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया जा सकता है।''

निष्कर्ष यह निकला कि सारे संसार में हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करने के लिए लोगों को प्रेरित करने हेतु व्यापक प्रचार की आवश्यकता है, जिससे मानव समाज को कलियुग के भयावह समुद्र से बचाया जा सके।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत 'भूमि गीत' नामक तृतीय अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चार

ब्रह्माण्ड के प्रलय की चार कोटियाँ

इस अध्याय में प्रलय के चार प्रकारों (स्थायी, नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक) की तथा भौतिक जीवन–चक्र के रोकने के एकमात्र साधन हरि–नाम कीर्तन की व्याख्या हुई है।

चार युगों के एक हजार चक्र ब्रह्मा के एक दिन के तुल्य होते हैं और ब्रह्मा का प्रत्येक दिन *कल्प* कहलाता है, जिसमें चौदह मनुओं की आयु (मन्वन्तर) निहित है। ब्रह्मा की रात की अवधि भी वही है, जो दिन की है। रात्रि में ब्रह्मा सोते हैं और तीनों लोकों का संहार हो जाता है। यह *नैमित्तिक* प्रलय है। जब ब्रह्मा की आयु के एक सौ वर्ष समाप्त होते हैं, तो *प्राकृतिक* प्रलय या पूर्ण भौतिक प्रलय होता है। उस समय भौतिक प्रकृति के *महत्* इत्यादि सातों तत्त्व तथा इनसे बना समूचा ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जाते हैं। जब मनुष्य को ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो असलियत समझ में आती है। वह सम्पूर्ण सृष्ट ब्रह्माण्ड को ब्रह्म से विलग अतएव असत्य मानता है। यह *आत्यन्तिक* प्रलय अथवा अन्तिम प्रलय (मोक्ष) कहलाता है। हर क्षण काल अदृश्य रूप से समस्त उत्पन्न जीवों के शरीर को तथा पदार्थ के अन्य सारे रूपों को बदल देता है। इस रूपान्तर की क्रिया से जीव निरन्तर जन्म तथा मृत्यु के स्थायी प्रलय को प्राप्त होता है। जिन्हें सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त है उनका कहना है कि ब्रह्मा समेत सारे प्राणी सदैव जन्म लेते तथा विनष्ट होते रहते हैं। भौतिक

जीवन का अर्थ ही होता है जन्म तथा मृत्यु अथवा उत्पत्ति और प्रलय। भवसागर को पार करने के लिए जिसे पार करना असंभव होता है, एकमात्र उपयुक्त नाव भगवान् की अमृतमयी लीलाओं का विनीत भाव से श्रवण करना है।

श्रीशुक उवाच

कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप ।
कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कालः—समय; ते—तुमको; परम-अणु—अखंड परमाणु; आदिः—इत्यादि; द्वि-पर-अर्ध—ब्रह्मा की आयु के दो अर्धांश; अवधिः—समाप्ति; नृप—हे राजा परीक्षित; कथितः—वर्णित की गई; युग-मानम्—युग की अवधि; च—तथा; शृणु—अब सुनो; कल्प—ब्रह्मा का दिन; लयौ—संहार, प्रलय; अपि—भी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा, मैं पहले ही तुम्हें एक परमाणु की गति से मापे जाने वाले सबसे छोटे अंश से लेकर ब्रह्मा की कुल आयु तक काल की माप बतला चुका हूँ। मैंने ब्रह्माण्ड के इतिहास के विभिन्न युगों की माप भी बतला दी है। अब ब्रह्मा के दिन तथा प्रलय की प्रक्रिया के विषय में सुनो।

चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशाम्पते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

चतुः-युग—चार युग; सहस्रम्—एक हजार; तु—निस्सन्देह; ब्रह्मणः—ब्रह्मा का; दिनम्—दिन; उच्यते—कहा जाता है; सः—वह; कल्पः—कल्प; यत्र—जिसमें; मनवः—मानव जाति का आदि प्रजापति; चतुर्दश—चौदह; विशाम्-पते—हे राजा।

चार युगों के एक हजार चक्रों से ब्रह्मा का एक दिन बनता है, जो कल्प कहलाता है। हे राजा, इस अवधि में चौदह मनु आते-जाते हैं।

तदन्ते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता ।
त्रयो लोका इमे तत्र कल्पन्ते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तत्-अन्ते—उन (युगों के हजार चक्रों) के बाद; प्रलयः—प्रलय; तावान्—उसी अवधि के; ब्राह्मी—ब्रह्मा की; रात्रिः—रात; उदाहृता—कहा जाता है; त्रयः—तीन; लोकाः—लोक; इमे—ये; तत्र—उस समय; कल्पन्ते—अभिमुख रहते हैं; प्रलयाय—प्रलय के लिए; हि—निस्सन्देह।

ब्रह्मा के एक दिन के बाद, उनकी रात के समय, जो उतनी ही अवधि की होती है, प्रलय होता है। उस समय तीनों लोक विनष्ट हो जाते हैं, उनका संहार हो जाता है।

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ।
शेतेऽनन्तासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४॥

शब्दार्थ

एषः—यह; नैमित्तिकः—यदा-कदा; प्रोक्तः—कहा जाता है; प्रलयः—प्रलय; यत्र—जिसमें; विश्व-सृक्—ब्रह्माण्ड का सृजनकर्ता, भगवान् नारायण; शेते—लेट जाते हैं; अनन्त-आसनः—अनन्त शेष की शय्या पर; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; आत्म-सात्-कृत्य—अपने भीतर लीन करके; च—भी; आत्म-भूः—ब्रह्मा।

यह नैमित्तिक प्रलय कहलाता है, जिसमें आदि स्त्रष्टा नारायण अनन्त शेष की शैय्या पर लेट जाते हैं और ब्रह्मा के सोते समय वे समूचे ब्रह्माण्ड को अपने में लीन कर लेते हैं।

द्विपरार्धे त्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै ॥ ५॥

शब्दार्थ

द्वि-परार्धे—दो परार्ध; तु—तथा; अतिक्रान्ते—पूर्ण होने पर; ब्रह्मणः—ब्रह्मा का; परमे-ष्ठिनः—अत्युच्च स्थित जीव; तदा—तब; प्रकृतयः—प्रकृति के तत्त्व; सप्त—सात; कल्पन्ते—अधीन होते हैं; प्रलयाय—प्रलय के; वै—निस्सन्देह।

जब सर्वोच्च जीव भगवान् ब्रह्मा के जीवन काल के दो परार्ध पूरे हो जाते हैं, तो सृष्टि के सात मूलभूत तत्त्व विनष्ट हो जाते हैं।

एष प्राकृतिको राजन्प्रलयो यत्र लीयते ।
अण्डकोषस्तु सङ्घातो विघाट उपसादिते ॥ ६॥

शब्दार्थ

एषः—यह; प्राकृतिकः—प्रकृति के तत्त्वों का; राजन्—हे राजा परीक्षित; प्रलयः—संहार; यत्र—जिसमें; लीयते—लय हो जाता है; अण्ड-कोषः—ब्रह्माण्ड; तु—तथा; सङ्घाटः—मिश्रण; विघाते—विच्छिन्न होने का कारण; उपसादिते—सामना करना होता है।

हे राजा, भौतिक तत्त्वों के प्रलय के बाद, सृष्टि के तत्त्वों के मिश्रण से बने ब्रह्माण्ड को विनाश का सामना करना होता है।

तात्पर्य : यह महत्त्वपूर्ण बात है कि राजा परीक्षित के गुरु शुकदेव गोस्वामी अपने शिष्य की मृत्यु के पूर्व ब्रह्माण्ड के प्रलय की विशद व्याख्या कर रहे हैं। ब्रह्माण्ड के संहार की कहानी को ध्यानपूर्वक सुनने से मनुष्य यह आसानी से समझ सकता है कि इस नश्वर जगत से उसका प्रयाण सम्पूर्ण भौतिक जगत के विराट परिप्रेक्ष्य में नगण्य घटना है। ईश्वर की उत्पत्ति के विषय में गम्भीर तथा प्रासंगिक व्याख्याओं से, आदर्श गुरु, शुकदेव गोस्वामी, अपने शिष्य को मृत्यु के लिए तैयार कर रहे हैं।

पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति ।
तदा निरन्ने ह्यन्योन्यं भक्ष्यमाणाः क्षुधार्दिताः ।
क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ॥ ७॥

शब्दार्थ

पर्जन्यः—बादल; शत-वर्षाणि—एक सौ वर्षों तक; भूमौ—पृथ्वी पर; राजन्—हे राजा; न वर्षति—वृष्टि नहीं करेगा; तदा—तब; निरन्ने—अकाल आने पर; हि—निस्सन्देह; अन्योन्यम्—परस्पर; भक्ष्यमाणाः—खाते हुए; क्षुधा—भूख से; अर्दिताः—पीड़ित; क्षयम्—विनाश को; यास्यन्ति—जाते हैं; शनकैः—क्रमशः; कालेन—काल की शक्ति से; उपद्रुताः—दिग्भ्रमित; प्रजाः—लोग।

हे राजा, ज्यों-ज्यों प्रलय निकट आयेगा, त्यों-त्यों पृथ्वी पर एक सौ वर्षों तक वर्षा नहीं होगी। सूखे से दुर्भिक्ष पड़ जायेगा और भूखी मरने वाली जनता एक-दूसरे को सचमुच खा जायेगी। पृथ्वी के निवासी काल की शक्ति से मोहग्रस्त होकर धीरे-धीरे नष्ट हो जाएँगे।

सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तको रविः ।
रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सामुद्रम्—समुद्र का; दैहिकम्—शरीरों का; भौमम्—भूमि का; रसम्—रस; सांवर्तकः—संहार करने वाला; रविः—सूर्य; रश्मिभिः—किरणों से; पिबते—पी जाता है; घोरैः—घोर; सर्वम्—सर्वस्व; न—नहीं; एव—तक; विमुञ्चति—देता है।

सूर्य अपने संहारक रूप में अपनी घोर किरणों के द्वारा, समुद्र का, शरीरों का तथा पृथ्वी का सारा पानी पी लेगा। किन्तु बदले में यह विनाशकारी सूर्य वर्षा नहीं करेगा।

ततः संवर्तको वह्निः सङ्कर्षणमुखोत्थितः ।
दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान्भूविवरानथ ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; संवर्तकः—संहार का; वह्निः—अग्नि; सङ्कर्षण—भगवान् संकर्षण के; मुख—मुख से; उत्थितः—निकला; दहति—जलाता है; अनिल-वेग—वायु के वेग से; उत्थः—उठा हुआ; शून्यान्—रिक्त; भू—पृथ्वी-लोक के; विवरान्—दरारों; अथ—उसके बाद।

इसके बाद प्रलय की विशाल अग्नि भगवान् संकर्षण के मुख से धधक उठेगी। वायु के प्रबल वेग से ले जाई गई, यह अग्नि निर्जीव विराट खोल को झुलसाकर, सारे ब्रह्माण्ड में जल उठेगी।

उपर्यधः समन्ताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ।
दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

उपरि—ऊपर; अधः—तथा नीचे; समन्तात्—सभी दिशाओं में; च—तथा; शिखाभिः—लपटों से; वह्नि—अग्नि का; सूर्ययोः—तथा सूर्य का; दह्यमानम्—जलना; विभाति—जगमगाता है; अण्डम्—ब्रह्माण्ड; दग्ध—जला हुआ; गो-मय—गोबर के; पिण्ड-वत्—गोले के समान।

ऊपर से दहकते सूर्य के तथा नीचे से भगवान् संकर्षण की अग्नि से—इस तरह सभी दिशाओं से—जलता हुआ ब्रह्माण्ड गोबर के दहकते पिंड की तरह चमकने लगेगा।

ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ।
परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसावृतम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; प्रचण्ड—भीषण; पवनः—वायु; वर्षाणाम्—वर्षों का; अधिकम्—अधिक; शतम्—एक सौ; परः—महान्; साम्वर्तकः—प्रलय लाने वाली; वाति—बहती है; धूम्रम्—भूरा; खम्—आकाश; रजसा—धूल से; आवृतम्—ढका।

महान् तथा भीषण विनाशकारी वायु एक सौ वर्षों से भी अधिक काल तक बहेगी और धूल से आच्छादित आकाश भूरा हो जायेगा।

ततो मेघकुलान्यङ्ग चित्र वर्णान्यनेकशः ।
शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; मेघ-कुलानि—बादल; अङ्ग—हे राजा; चित्र-वर्णानि—नाना प्रकार के रंगों के; अनेकशः—असंख्य; शतम्—एक सौ; वर्षाणि—वर्ष; वर्षन्ति—मूसलाधार वर्षा करते हैं; नदन्ति—गरजते हैं; रभस-स्वनैः—घोर ध्वनि से।

हे राजा, उसके बाद नाना रंग के बादलों के समूह बिजली के साथ घोर गर्जना करते हुए एकत्र होंगे और एक सौ वर्षों तक मूसलाधार वर्षा करते रहेंगे।

तत एकोदकं विश्वं ब्रह्माण्डविवरान्तरम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; एक-उदकम्—जल की एक राशि; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; ब्रह्म-अण्ड—सृष्टि के अंडे के; विवर-अन्तरम्—भीतर।

उस समय ब्रह्माण्ड की खोल जल से भर जायेगी और एक विराट सागर का निर्माण करेगी।

तदा भूमेर्गन्धगुणं ग्रसन्त्याप उदप्लवे ।
ग्रस्तगन्धा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब; भूमेः—पृथ्वी का; गन्ध-गुणम्—सुगन्ध का गुण; ग्रसन्ति—हर लेते हैं; आपः—जल; उद-प्लवे—बाढ़ के समय; ग्रस्त-गन्धा—सुगन्ध से विहीन; तु—तथा; पृथिवी—भूमि; प्रलयत्वाय कल्पते—अप्रकटहो जाती है।

जब सारा ब्रह्माण्ड जलमग्न हो जाता है, तो यह जल पृथ्वी के अद्वितीय सुगन्धि गुण को हर लेगा और पृथ्वी, अपने इस विभेदकारी गुण से विहीन होकर, विलीन हो जायेगी।

तात्पर्य : जैसाकि समूचे *श्रीमद्भागवत* में बतलाया गया है प्रथम तत्त्व आकाश में ध्वनि का अनूठा गुण पाया जाता है। ज्यों-ज्यों सृष्टि का प्रसार होता है, दूसरा तत्त्व वायु उत्पन्न हो जाता है, जिसमें ध्वनि तथा स्पर्श के गुण पाये जाते हैं। तीसरा तत्त्व अग्नि है, जिसमें ध्वनि, स्पर्श तथा रूप होता है और चौथा तत्त्व जल है, जिसमें ध्वनि, स्पर्श, रूप तथा रस होते हैं। पृथ्वी में ध्वनि, स्पर्श,

रूप, रस तथा गंध पाये जाते हैं। ज्यों-ज्यों हर तत्त्व अपने अनोखे विभेदक गुण को खोता जाता है त्यों-त्यों अधिक सूक्ष्म तत्त्वों से उसकी पहचान नहीं हो पाती और इस तरह उसकी अपनी अनोखी सत्ता पूर्णरूपेण समाप्त हो जाती है।

अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसाः ।
ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ १५॥
लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ।
स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥ १६॥
शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते ।
तैजसश्चेन्द्रियाण्यङ्ग देवान्वैकारिको गुणैः ॥ १७॥
महान्ग्रसत्यहङ्कारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ।
ग्रसतेऽव्याकृतं राजन्गुणान्कालेन चोदितम् ॥ १८॥
न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः ।
अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १९॥

शब्दार्थ

अपाम्—जल का; रसम्—स्वाद; अथ—तब; तेजः—अग्नि; ताः—वह जल; लीयन्ते—विलीन कर लेता है; अथ—उसके बाद; नीरसाः—स्वाद-गुण से रहित; ग्रसते—हर लेता है; तेजसः—अग्नि का; रूपम्—रूप; वायुः—वायु; तत्-रहितम्—उस रूप से विहीन; तदा—तब; लीयते—विलीन हो जाता है; च—तथा; अनिले—वायु में; तेजः—अग्नि; वायोः—वायु का; खम्—आकाश; ग्रसते—हरण कर लेता है; गुणम्—अनुभव होनेवाले गुण (स्पर्श); सः—वह वायु; वै—निस्सन्देह; विशति—प्रवेश करती है; खम्—आकाश में; राजन्—हे राजा परीक्षित; ततः—तत्पश्चात्; च—तथा; नभसः—आकाश का; गुणम्—गुण; शब्दम्—शब्द, ध्वनि; ग्रसति—हर लेती है; भूत-आदिः—तमोगुणी अहंकार तत्त्व को; नभः—आकाश; तम्—उस मिथ्या अहंकार में; अनु—पीछे-पीछे; लीयते—विलीन हो जाता है; तैजसः—रजोगुणी मिथ्या अहंकार; च—तथा; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; अङ्ग—हे राजा; देवान्—देवतागण; वैकारिकः—सतोगुणी मिथ्या अहंकार में; गुणैः—(मिथ्या अहंकार के) प्रकट कार्यों समेत; महान्—महत् तत्त्व; ग्रसति—पकड़ लेता है; अहङ्कारम्—मिथ्या अहंकार को; गुणाः—प्रकृति के गुण; सत्त्व-आदयः—सतो, रजो तथा तमो; च—तथा; तम्—उस महत् को; ग्रसते—पकड़ लेता है; अव्याकृतम्—प्रकृति का अव्यक्त आदि रूप; राजन्—हे राजा; गुणान्—गुणों को; कालेन—समय के द्वारा; चोदितम्—प्रेरित; न—नहीं; तस्य—अव्यक्त प्रकृति का; काल—समय का; अवयवैः—खंडों द्वारा; परिणाम-आदयः—रूपान्तर तथा दृश्य पदार्थ के अन्य परिवर्तन (सृजन, वृद्धि आदि); गुणाः—ऐसे गुण; अनादि—आदि रहित; अनन्तम्—बिना अन्त के; अव्यक्तम्—अप्रकट; नित्यम्—नित्य; कारणम्—कारण; अव्ययम्—अव्यय।

तब अग्नि जल से स्वाद ग्रहण करती है, जो अपने अद्वितीय गुण स्वाद को त्याग कर, अग्नि में लीन हो जाता है। वायु, अग्नि में निहित रूप को ग्रहण करता है और तब अग्नि अपना रूप खोकर वायु में विलीन हो जाती है। आकाश, वायु के गुण स्पर्श को पा लेता है और वह वायु आकाश में प्रवेश करती है। तब हे राजा, तमोगुणी मिथ्या अहंकार, आकाश के गुण ध्वनि को ग्रहण करता है, जिसके बाद आकाश मिथ्या अहंकार में विलीन हो जाता है। रजोगुणी मिथ्या अहंकार, इन्द्रियों को ग्रहण करता है और सतोगुणी अहंकार देवताओं को विलीन कर लेता है। तब सम्पूर्ण महत् तत्त्व मिथ्या अहंकार को उसके विविध कार्यों

समेत ग्रहण करता है और यह महत् प्रकृति के तीन गुणों—सतो, रजो तथा तमो—द्वारा जकड़ लिया जाता है। हे राजा परीक्षित, ये गुण काल द्वारा प्रेरित प्रकृति के मूल अव्यक्त रूप द्वारा अधिगृहीत हो जाते हैं। यह अव्यक्त प्रकृति काल के प्रभाव द्वारा उत्पन्न छः प्रकार के विकारों के अधीन नहीं होती, प्रत्युत् इसका न तो आदि होता है, न अन्त। यह सृष्टि का अव्यक्त, शाश्वत, अव्यय कारण है।

न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं
तमो रजो वा महदादयोऽमी ।
न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा
न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ २० ॥
न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं
न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ।
संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं
तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यत्र—जहाँ; वाचः—वाणी; न—नहीं; मनः—मन; न—नहीं; सत्त्वम्—सतोगुण; तमः—तमोगुण; रजः—रजोगुण; वा—अथवा; महत्—महत् तत्त्व; आदयः—इत्यादि; अमी—ये तत्त्व; न—नहीं; प्राण—प्राणवायु; बुद्धि—बुद्धि; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; देवताः—तथा अधिष्ठाता देवता; वा—अथवा; न—नहीं; सन्निवेशः—विशेष रचना; खलु—निस्सन्देह; लोक-कल्पः—ग्रहों की व्यवस्था का; न—नहीं; स्वप्न—नींद; जाग्रत्—जाग्रत अवस्था; न—नहीं; च—तथा; तत्—वह; सुषुप्तम्—गहरी नींद; न—नहीं; खम्—आकाश; जलम्—जल; भूः—पृथ्वी; अनिलः—वायु; अग्निः—अग्नि; अर्कः—सूर्य; संसुप्त-वत्—गहरी नींद में रहने वाले के समान; शून्य-वत्—शून्य की तरह; अप्रतर्क्यम्—तर्क के द्वारा अभेद्य; तत्—वह प्रधान; मूल-भूतम्—आधार के रूप में; पदम्—वस्तु; आमनन्ति—महापुरुष कहते हैं।

प्रकृति की अव्यक्त अवस्था, जिसे प्रधान कहते हैं, में न वाणी, न मन, न महत् इत्यादि सूक्ष्म तत्त्व और न ही सतो, रजो तथा तमोगुण होते हैं। उसमें न तो प्राणवायु, न बुद्धि, न कोई इन्द्रियाँ या देवता रहते हैं। उसमें न तो ग्रहों की स्पष्ट व्यवस्था होती है, न ही चेतना की विभिन्न अवस्थाएँ—सुप्त, जागृत तथा सुषुप्त—ही होती हैं। उसमें आकाश, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि या सूर्य नहीं होते। यह स्थिति सुषुप्ति अथवा शून्य जैसी होती है। निस्सन्देह, यह अवर्णनीय है। किन्तु आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता बताते हैं कि प्रधान के मूल वस्तु होने से यह भौतिक सृष्टि का वास्तविक कारण है।

लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा ।
शक्तयः सम्प्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

लयः—प्रलय; प्राकृतिकः—भौतिक तत्त्वों की; हि—निस्सन्देह; एषः—यह; पुरुष—परमेश्वर का; अव्यक्तयोः—तथा अव्यक्त रूप में उनकी भौतिक प्रकृति का; यदा—जब; शक्तयः—शक्तियाँ; सम्प्रलीयन्ते—पूर्णतया लीन हो जाती हैं; विवशाः—असहाय; काल—काल द्वारा; विद्रुताः—अव्यवस्थित।

यह प्रलय प्राकृतिक कहलाती है, जिसके अन्तर्गत परम पुरुष तथा उनकी अव्यक्त भौतिक प्रकृति से सम्बन्धित शक्तियाँ, काल के वेग द्वारा अव्यवस्थित होकर, उनकी शक्तियों से विहीन होकर, पूरी तरह से लीन हो जाती हैं।

बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् ।
दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

बुद्धि—बुद्धि; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; अर्थ—तथा अनुभूति की वस्तुओं के; रूपेण—रूप में; ज्ञानम्—परब्रह्म; भाति—प्रकट करता है; तत्—इन तत्त्वों का; आश्रयम्—आधार; दृश्यत्व—देखे जाने के कारण; अव्यतिरेकाभ्याम्—अपने कारण से अभिन्न होने के कारण; आदि-अन्त-वत्—जिसका आदि तथा अन्त है; अवस्तु—अपर्याप्त है; यत्—जो भी।

एकमात्र परब्रह्म ही बुद्धि, इन्द्रियों तथा इन्द्रिय-अनुभूति की वस्तुओं के रूपों में प्रकट होता है और वही उनका परम आधार है। जिसका भी आदि तथा अन्त होता है, वह अपर्याप्त (अवस्तु) है क्योंकि वह सीमित इन्द्रियों के द्वारा अनुभूत वस्तु है और अपने कारण से अभिन्न है।

तात्पर्य : *दृश्यत्व* शब्द सूचित करता है कि सारे सूक्ष्म तथा स्थूल भौतिक रूप परमेश्वर की शक्ति से दृश्य बनते हैं और प्रलय के समय अदृश्य या अप्रकट हो जाते हैं। इसीलिए वे अपने प्रसार तथा विलीन होने के स्रोत से मूल रूप में पृथक् नहीं हैं।

दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत् ।
एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

दीपः—दीपक; चक्षुः—देखने वाली आँख; च—तथा; रूपम्—देखा गया रूप; च—तथा; ज्योतिषः—मूल तत्त्व अग्नि से; न—नहीं; पृथक्—विलग; भवेत्—हैं; एवम्—इसी तरह; धीः—बुद्धि; खानि—इन्द्रियाँ; मात्राः—अनुभूतियाँ; च—तथा; न स्युः—नहीं हैं; अन्यतमात्—जो स्वयं पूर्णतया विलग है; ऋतात्—सत्य से।

दीपक, उस दीपक के प्रकाश से देखने वाली आँख तथा देखा जाने वाला दृश्य रूप, मूलतः अग्नि तत्त्व से अभिन्न हैं। इसी तरह बुद्धि, इन्द्रियों तथा इन्द्रिय अनुभूतियों का परम सत्य से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है यद्यपि वह परम सत्य (परब्रह्म) उनसे सर्वथा भिन्न होता है।

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते ।
मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

बुद्धेः—बुद्धि का; जागरणम्—जागृत चेतना; स्वप्नः—नींद; सुषुप्तिः—गहरी नींद; इति—इस तरह; च—तथा; उच्यते—कहलाते हैं; माया-मात्रम्—निरी माया; इदम्—यह; राजन्—हे राजा; नानात्वम्—द्वैत; प्रत्यक्-आत्मनि—शुद्ध आत्मा द्वारा अनुभव किया हुआ।

बुद्धि की तीन अवस्थाएँ जाग्रत, सुप्त तथा सुषुप्त कहलाती हैं। लेकिन हे राजा, इन विभिन्न अवस्थाओं से शुद्ध जीव के लिए उत्पन्न नाना प्रकार के अनुभव माया के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं।

तात्पर्य : शुद्ध कृष्ण-चेतना भौतिक जागरूकता की विभिन्न अवस्थाओं के परे स्थित होती है। जिस तरह प्रकाश की उपस्थिति में अँधेरा दूर हो जाता है उसी तरह मायामयी भौतिक बुद्धि जो सामान्य अनुभूति, स्वप्न तथा गहरी नींद के रूप में अनुभव की जाती है, शुद्ध कृष्ण-चेतना की तेजोमयी उपस्थिति में पूर्णतया लुप्त हो जाती है क्योंकि कृष्ण-चेतना हर जीव की स्वाभाविक स्थिति है।

यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च ।
ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; जल-धराः—बादल; व्योम्नि—आकाश में; भवन्ति—हैं; न भवन्ति—नहीं होते; च—तथा; ब्रह्मणि—परब्रह्म में; इदम्—यह; तथा—उसी तरह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; अवयवि—अंशों से युक्त; उदय—उत्पत्ति; अप्ययात्—तथा प्रलय के कारण।

जिस तरह आकाश में बादल बनते हैं और तब अपने घटक तत्त्वों के मिश्रण तथा विलय के द्वारा इधर-उधर बिखर जाते हैं, उसी तरह यह भौतिक ब्रह्माण्ड, परब्रह्म के भीतर, अपने अवयव रूपी तत्त्वों के मिश्रण तथा विलय से, बनता और विनष्ट होता है।

सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ।
विनार्थेन प्रतीयेरन्पटस्येवाङ्ग तन्तवः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

सत्यम्—सत्य; हि—क्योंकि; अवयवः—अवयवी कारण; प्रोक्तः—कहा गया है; सर्व-अवयविनाम्—समस्त अवयवों का; इह—इस जगत में; विना—से विलग; अर्थेन—प्रकट फल; प्रतीयेरन्—अनुभव किये जा सकते हैं; पटस्य—वस्त्र के; इव—सदृश; अङ्ग—हे राजा; तन्तवः—धागे।

हे राजा, (वेदान्त-सूत्र में) यह कहा गया है कि इस ब्रह्माण्ड में किसी व्यक्त पदार्थ को निर्मित करने वाला अवययी कारण, पृथक् सत्य के रूप में, उसी तरह देखा जा सकता है, जिस तरह वस्त्र को बनाने वाले धागे उनसे बनी हुई वस्तु (वस्त्र) से अलग देखे जा सकते हैं।

यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः ।
अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो भी; सामान्य—सामान्य कारण के रूप में; विशेषाभ्याम्—तथा विशेष कार्य के रूप में; उपलभ्येत—अनुभव किया जाता है; सः—वह; भ्रमः—मोह; अन्योन्य—पारस्परिक; अपाश्रयात्—अधीनता के कारण; सर्वम्—हर वस्तु; आदि-अन्त-वत्—आदि तथा अन्त होने से; अवस्तु—असत्य; यत्—जो।

सामान्य कारण तथा विशिष्ट कार्य के रूप में अनुभव की हुई कोई भी वस्तु भ्रम होनी चाहिए क्योंकि ऐसे कारण तथा कार्य एक-दूसरे के सापेक्ष होते हैं। निस्सन्देह, जिसका भी आदि तथा अन्त है, वह असत्य है।

तात्पर्य : भौतिक कारण के स्वभाव को कार्य के बिना अनुभव नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, अग्नि के जलने के स्वभाव को उसके कार्य यथा वस्तुओं को जलाने के बिना या राख के बिना, अनुभव नहीं किया जा सकता। इसी तरह जल के भिगोने के गुण को उसके कार्य को देखे बिना, यथा भीगे कपड़े या कागज को देखे बिना, नहीं समझा जा सकता। मनुष्य की संघटनात्मक शक्ति उसके प्रभावशाली कार्य अर्थात् ठोस संस्था को देखे बिना नहीं समझी जा सकती। इस तरह कार्य न केवल अपने कारणों पर निर्भर करते हैं अपितु कारण की अनुभूति भी कार्य के अवलोकन पर निर्भर करती है। इस तरह दोनों का सापेक्षतः वर्णन किया जाता है और वे आदि तथा अन्त से युक्त होते हैं। निष्कर्ष यह निकलता है कि ऐसे सारे कारण तथा कार्य अनिवार्यतः क्षणिक तथा सापेक्ष हैं, इसलिए भ्रामक हैं।

भगवान् यद्यपि समस्त कारणों के कारण हैं, किन्तु उनका न तो आदि है, न अन्त। इसलिए वे न तो भौतिक हैं न भ्रामक। भगवान् कृष्ण के ऐश्वर्य तथा उनकी शक्तियाँ परम सत्य हैं, जो भौतिक कार्यकारण पर आश्रित नहीं होतीं।

विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमन्तरा ।
न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

विकारः—जगत का रूपान्तर; ख्यायमानः—प्रकट होने वाला; अपि—यद्यपि; प्रत्यक्-आत्मानम्—परमात्मा; अन्तरा—बिना; न—नहीं; निरूप्यः—चिन्तनीय; अस्ति—है; अणुः—एक परमाणु; अपि—भी; स्यात्—ऐसा हो; चेत्—यदि; चित्-समः—समान रूप से आत्मा; आत्म-वत्—बिना परिवर्तन के उसी रूप में।

भौतिक प्रकृति के एक भी परमाणु का अनुभव किया जाने वाला रूपान्तर, उस परमात्मा के उल्लेख के बिना कोई परम अर्थ नहीं रखता। किसी वस्तु को यथार्थ रूप में विद्यमान होने के लिए उस वस्तु को शुद्ध आत्मा जैसा ही गुण वाला—नित्य तथा अव्यय—होना चाहिए।

तात्पर्य : मरुस्थल में दिखने वाली मृगमरीचिका वास्तव में प्रकाश की अभिव्यक्ति है। जल का झूठा प्राकट्य प्रकाश का विशिष्ट रूपान्तर है। इसी तरह स्वतंत्र भौतिक प्रकृति के रूप में जो झूठमूठ दिखता है, वह भगवान् का रूपान्तर है। भौतिक प्रकृति भगवान् की बहिरंगा शक्ति है।

न हि सत्यस्य नानात्वमविद्वान्यदि मन्यते ।
नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं है; हि—निस्सन्देह; सत्यस्य—परम सत्य का; नानात्वम्—द्वैत; अविद्वान्—अज्ञानी; यदि—यदि; मन्यते—सोचता है; नानात्वम्—द्वैत; छिद्रयो:—दो आकाशों का; यद्वत्—जिस तरह; ज्योतिषो:—दो स्वर्गिक प्रकाशों का; वातयो:—दो वायुओं का; इव—यथा।

परम सत्य में कोई भौतिक द्वैत नहीं है। अज्ञानी व्यक्ति द्वारा अनुभूत द्वैत, रिक्त पात्र के भीतर तथा पात्र के बाहर के आकाश के अन्तर के समान, अथवा जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब तथा आकाश में सूर्य के अन्तर के समान, अथवा एक शरीर के भीतर की प्राणवायु तथा दूसरे शरीर की प्राणवायु में, जो अन्तर है उसके समान है।

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते
नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु ।
एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो
व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; हिरण्यम्—स्वर्ण; बहुधा—अनेक रूपों में; समीयते—प्रकट होता है; नृभि:—पुरुषों के लिए; क्रियाभि:—विभिन्न कर्मों के रूप में; व्यवहार-वर्त्मसु—सामान्य उपयोग में; एवम्—उसी तरह से; वचोभि:—विभिन्न प्रकार से; भगवान्—भगवान्; अधोक्षज:—भौतिक इन्द्रियों के लिए अचिन्त्य दिव्य प्रभु; व्याख्यायते—वर्णन किया जाता है; लौकिक—संसारी; वैदिकै:—तथा वैदिक; जनै:—लोगों द्वारा।

लोग विभिन्न कार्यों के अनुसार सोने का उपयोग नाना प्रकार से करते हैं, इसलिए सोना विविध रूपों में देखा जाता है। इसी तरह भौतिक इन्द्रियों के लिए अगम्य भगवान् का वर्णन विभिन्न प्रकार के लोगों द्वारा विभिन्न रूपों में—सामान्य तथा वैदिक रूप में—किया जाता है।

तात्पर्य : जो लोग भगवान् के शुद्ध भक्त नहीं हैं, वे सभी भगवान् तथा उनकी शक्तियों का दुरुपयोग करने का प्रयास करते हैं। इस दुरुपयोग की रणनीति के अनुसार, वे परम सत्य का चिन्तन और वर्णन विविध प्रकार से करते हैं। *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में परम सत्य परब्रह्म अपने यथारूप में उन निष्ठावान लोगों के लाभार्थ प्रकट होते हैं, जो मूर्खतावश भगवान् का मनमाना उपयोग नहीं करना चाहते।

यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो
ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ।
एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो
ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मबन्धनः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; घनः—बादल; अर्क—सूर्य का; प्रभवः—फल; अर्क—सूर्य द्वारा; दर्शितः—दिखलाया जाता है; हि—निस्सन्देह; अर्क—सूर्य; अंश-भूतस्य—जो अंश रूप है; च—तथा; चक्षुषः—आँख का; तमः—अंधकार; एवम्—उसी तरह से; तु—निस्सन्देह; अहम्—मिथ्या अहंकार; ब्रह्म-गुणः—परब्रह्म का गुण; तत्-ईक्षितः—परब्रह्म के माध्यम से दृश्य; ब्रह्म-अंशकस्य—परब्रह्म के अंश का; आत्मनः—जीवात्मा का; आत्म-बन्धनः—परमात्मा की अनुभूति में बाधक।

यद्यपि बादल सूर्य की ही उपज है और सूर्य द्वारा दृश्य भी होता है, तो भी यह देखने वाली आँख के लिए जो सूर्म का ही दूसरा अंश है, अंधेरा उत्पन्न कर देता है। इसी तरह परब्रह्म की विशेष उपज मिथ्या अहंकार जो परब्रह्म द्वारा ही दृश्य बनाई जाती है, आत्मा को परब्रह्म का साक्षात्कार करने से रोकता है यद्यपि आत्मा भी परब्रह्म का ही अंश है।

घनो यदार्कप्रभवो विदीर्यते
चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ।
यदा ह्यहङ्कार उपाधिरात्मनो
जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

घनः—बादल; यदा—जब; अर्क-प्रभवः—सूर्य की उपज; विदीर्यते—तितर-बितर कर दिया जाता है; चक्षुः—आँख; स्वरूपम्—अपने असली रूप में; रविम्—सूर्य को; ईक्षते—देखता है; तदा—तब; यदा—जब; हि—भी; अहङ्कारः—मिथ्या अहंकार; उपाधिः—बाहरी आवरण; आत्मनः—आत्मा का; जिज्ञासया—आध्यात्मिक पूछताछ से; नश्यति—नष्ट हो जाता है; तर्हि—उस समय; अनुस्मरेत्—मनुष्य को सही स्मृति प्राप्त होती है।

जब सूर्य से उत्पन्न बादल तितर-बितर हो जाता है, तो आँख सूर्य के वास्तविक स्वरूप को देख सकती है। इसी तरह, जब आत्मा दिव्य विज्ञान के विषय में पूछताछ करके, मिथ्या अहंकार के अपने भौतिक आवरण को नष्ट कर देता है, तो वह अपनी मूल आध्यात्मिक जागरूकता को फिर से प्राप्त होता है।

तात्पर्य : जिस तरह सूर्य उन बादलों को जला सकता है, जो किसी के देखने में अवरोध डालते हैं उसी तरह परमेश्वर (तथा एकमात्र वे ही) उस मिथ्या अहंकार को हटा सकते हैं, जो किसी को उन्हें देखने से रोकता है। किन्तु कुछ प्राणी ऐसे होते हैं, जैसे कि उल्लू, जो सूर्य को देखने के अनिच्छुक होते हैं। इसी तरह जो लोग आध्यात्मिक ज्ञान में रुचि नहीं रखते, वे ईश्वर को कभी भी नहीं देख पायेंगे।

यदैवमेतेन विवेकहेतिना
मायामयाहङ्करणात्मबन्धनम् ।
छित्त्वाच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते
तमाहुरात्यन्तिकमङ्ग सम्प्लवम् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

यदा—जब; एवम्—इस तरह; एतेन—इससे; विवेक—विवेक की; हेतिना—तलवार से; माया-मय—माया से युक्त; अहङ्करण—मिथ्या अहंकार; आत्म—आत्मा का; बन्धनम्—बन्धन का कारण; छित्त्वा—काट कर; अच्युत—अच्युत; आत्म—परमात्मा का; अनुभवः—अनुभूति; अवतिष्ठते—दृढ़ता से उत्पन्न करता है; तम्—उसको; आहुः—कहते हैं; आत्यन्तिकम्—चरम; अङ्ग—हे राजा; सम्प्लवम्—प्रलय।

हे राजा परीक्षित, जब आत्मा को बाँधने वाले मायामय मिथ्या अहंकार को विवेक-शक्ति की तलवार से काट दिया जाता है और मनुष्य परमात्मा अच्युत का अनुभव प्राप्त कर लेता है, तो वह भौतिक जगत का आत्यन्तिक या परम प्रलय कहलाता है।

नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परन्तप ।
उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

नित्यदा—निरन्तर; सर्व-भूतानाम्—सारे प्राणियों का; ब्रह्म-आदीनाम्—ब्रह्मा इत्यादि; परम्-तप—हे शत्रुओं के दमनकर्ता; उत्पत्ति—सृजन; प्रलयौ—तथा संहार; एके—कुछ; सूक्ष्म-ज्ञाः—सूक्ष्म वस्तुओं के ज्ञाता; सम्प्रचक्षते—घोषित करते हैं।

हे शत्रुओं के दमनकर्ता, प्रकृति की सूक्ष्म कार्य-प्रणाली के ज्ञाताओं ने घोषित किया है कि उत्पत्ति तथा प्रलय की प्रक्रियायें निरन्तर चलती रहती हैं जिनसे ब्रह्मा इत्यादि सारे प्राणी निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं।

कालस्त्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा ।
परिणामिनां अवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

काल—समय का; स्त्रोतः—प्रबल प्रवाह का; जवेन—वेग से; आशु—तेजी से; ह्रियमाणस्य—बहाये जाने वाले का; नित्यदा—निरन्तर; परिणामिनाम्—रूपान्तरशील वस्तुओं की; अवस्थाः—विभिन्न अवस्थाएँ; ताः—वे; जन्म—जन्म; प्रलय—तथा प्रलय के; हेतवः—कारण।

सारी भौतिक वस्तुओं में रूपान्तर होते हैं और वे काल के प्रबल प्रवाह द्वारा तेजी से क्षीण की जाती हैं। भौतिक वस्तुओं द्वारा प्रदर्शित अपने अस्तित्व की विविध अवस्थाएँ उनकी उत्पत्ति तथा प्रलय के शाश्वत कारण हैं।

अनाद्यन्तवतानेन कालेनेश्वरमूर्तिना ।
अवस्था नैव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषां इव ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

अनादि-अन्त-वता—बिना आदि अथवा अन्त के; अनेन—इस; कालेन—काल के द्वारा; ईश्वर—भगवान् की; मूर्तिना—प्रतिनिधि द्वारा; अवस्थाः—विभिन्न अवस्थाएँ; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; दृश्यन्ते—देखी जाती हैं; वियति—बाह्य अवकाश में; ज्योतिषाम्—गतिशील नक्षत्रों के; इव—सदृश।

भगवान् के निर्विशेष प्रतिनिधि स्वरूप, आदि हीन तथा अन्तहीन काल द्वारा उत्पन्न, जगत की ये अवस्थाएँ उसी तरह दृश्य नहीं हैं जिस तरह आकाश में नक्षत्रों की स्थिति में होने

वाले अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तनों को नहीं देखा जा सकता।

तात्पर्य : यद्यपि हर कोई जानता है कि सूर्य आकाश में निरन्तर गतिशील है किन्तु सूर्य को गति करते सामान्य रूप से कोई नहीं देख पाता। इसी तरह, कोई भी व्यक्ति अपने बालों या नाखुनों को बढ़ते नहीं देख पाता यद्यपि काल के बीतने के साथ उनमें वृद्धि दिखती है। भगवान् की शक्तिरूप काल अत्यन्त सूक्ष्म तथा प्रबल है और जो मूर्ख लोग भौतिक सृष्टि का दोहन करना चाहते हैं उनके लिए वह दुर्लंघ्य अवरोध है।

नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ।
आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

नित्यः—संतत; नैमित्तिकः—आकस्मिक; च—तथा; एव—निस्सन्देह; तथा—भी; प्राकृतिकः—प्राकृतिक; लयः—प्रलय; आत्यन्तिकः—अन्तिम; च—तथा; कथितः—वर्णित होते हैं; कालस्य—काल की; गतिः—प्रगति; ईदृशी—इस तरह की।

इस प्रकार काल की प्रगति को चार प्रकार के प्रलय के रूप में वर्णित किया जाता है। ये हैं स्थायी, नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक।

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातु-
र्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
लीलाकथास्ते कथिताः समासतः
कात्स्न्र्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

एताः—ये; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरुओं में श्रेष्ठ; जगत्-विधातुः—ब्रह्माण्ड के स्रष्टा का; नारायणस्य—नारायण का; अखिल-सत्त्व-धाम्नः—सारे अस्तित्वों के आगार; लीला-कथाः—लीलाओं की कथाएँ; ते—तुमसे; कथिताः—कही जा चुकी हैं; समासतः—संक्षेप में; कात्स्न्र्येन—पूरी तरह; न—नहीं; अजः—अजन्मा ब्रह्मा; अपि—तक; अभिधातुम्—बतला सकने में; ईशः—सक्षम है।

हे कुरुश्रेष्ठ, मैंने तुम्हें भगवान् नारायण की लीलाओं की ये कथाएँ संक्षेप में बतला दीं हैं। भगवान् इस जगत के स्रष्टा हैं और सारे जीवों के अन्ततः आगार हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मा भी उन कथाओं को पूरी तरह बतलाने में अक्षम हैं।

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

संसार—संसार के; सिन्धुम्—सागर को; अति-दुस्तरम्—पार करने में असम्भव; उत्तितीर्षोः—पार करने की इच्छा करने वाले के लिए; न—नहीं; अन्यः—कोई दूसरी; प्लवः—नाव; भगवतः—भगवान्; पुरुष-उत्तमस्य—परमेश्वर की; लीला-कथा—लीलाओं की कथाएँ; रस—दिव्य आस्वाद के प्रति; निषेवणम्—सेवा भाव; अन्तरेण—इसके अतिरिक्त; पुंसः—पुरुष के लिए; भवेत्—हो सकता है; विविध—अनेक; दुःख—भौतिक दुख की; दव—अग्नि द्वारा; अर्दितस्य—पीड़ित।

असंख्य संतापों की अग्नि से पीड़ित तथा दुर्लंघ्य संसार सागर को पार करने के इच्छुक व्यक्ति के लिए, भगवान् की लीलाओं की कथाओं के दिव्य आस्वाद के प्रति भक्ति का अनुशीलन करने के अतिरिक्त कोई अन्य उपयुक्त नाव नहीं है।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् की लीलाओं का वर्णन पूरी तरह से कर पाना असम्भव है, तो भी अंशमात्र प्रशंसा से ही संसार के असह्य कष्ट से बचा जा सकता है। भव-ज्वर को भगवान् के नाम तथा लीलाओं रूपी ओषधि द्वारा ही दूर किया जा सकता है, जिसका यथेष्ठ वर्णन *श्रीमद्भागवत* में हुआ है।

पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ।
नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

पुराण—सारे पुराणों; संहिताम्—आवश्यक संहिता के; एताम्—यह; ऋषिः—महामुनि; नारायणः—नर-नारायण; अव्ययः—अव्यय; नारदाय—नारद मुनि से; पुरा—प्राचीन काल में; प्राह—कहा; कृष्ण-द्वैपायनाय—कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास से; सः—उसने, नारद ने।

बहुत दिन बीते सारे पुराणों की यह आवश्यक संहिता, अच्युत नर-नारायण ऋषि ने नारद से कही थी, जिन्होंने फिर इसे कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास से कही।

स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः ।
इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसम्मिताम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; वै—निस्सन्देह; मह्यम्—मुझसे, शुकदेव गोस्वामी से; महाराज—हे राजा परीक्षित; भगवान्—परमेश्वर के शक्तिशाली अवतार; बादरायणः—श्रील व्यासदेव ने; इमाम्—इस; भागवतीम्—भागवत शास्त्र को; प्रीतः—तुष्ट होकर; संहिताम्—संहिता; वेद-सम्मिताम्—चारों वेदों के ही तुल्य।

हे महाराज परीक्षित, महापुरुष श्रील व्यासदेव ने मुझे उसी शास्त्र *श्रीमद्भागवत* की शिक्षा दी जो महत्त्व में चारों वेदों के ही तुल्य है।

इमां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये ।
दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ सम्पृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

इमम्—इसे; वक्ष्यति—कहेगा; असौ—हमारे समक्ष उपस्थित; सूतः—सूत गोस्वामी; ऋषिभ्यः—ऋषियों से; नैमिष-आलये—नैमिषारण्य में; दीर्घ-सत्रे—दीर्घकाल तक चलने वाले यज्ञ के अवसर पर; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरुओं में श्रेष्ठ; सम्पृष्टः—पूछे जाने पर; शौनक-आदिभिः—शौनक इत्यादि के द्वारा।

हे कुरुश्रेष्ठ, हमारे समक्ष आसीन यही सूत गोस्वामी नैमिषारण्य के विराट यज्ञ में एकत्र ॠषियों से इस भागवत का प्रवचन करेंगे। ऐसा वे तब करेंगे जब शौनक आदि सभा के सदस्य उनसे प्रश्न करेंगे।

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के द्वादश स्कन्ध के अन्तर्गत ''ब्रह्माण्ड के प्रलय की चार कोटियाँ'' नामक चतुर्थ अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पाँच

महाराज परीक्षित को शुकदेव गोस्वामी का अन्तिम उपदेश

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह शुकदेव गोस्वामी के परब्रह्म विषयक संक्षिप्त उपदेशों से महाराज परीक्षित का तक्षक-दंश भय जाता रहा।

पिछले अध्याय में इस भौतिक जगत में कार्यरत चार प्रकार के प्रलय का वर्णन कर चुकने के बाद, अब श्रील शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित को याद दिलाते हैं कि उन्होंने किस तरह तृतीय स्कंध में ब्रह्माण्ड के विभिन्न युगों की काल गणना की व्याख्या की थी। ब्रह्मा के एक दिन में चार युगों वाले एक हजार चक्र होते हैं जिसमें चौदह विभिन्न मनु शासन (मन्वन्तर) करते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इस तरह मृत्यु हर देहधारी के लिए अपरिहार्य है किन्तु आत्मा नहीं मरता क्योंकि यह भौतिक शरीर से सर्वथा भिन्न होता है। तत्पश्चात् श्रील शुकदेव गोस्वामी बतलाते हैं कि उन्होंने *श्रीमद्‌भागवत* में परमात्मा श्री हरि के यश का बारम्बार कीर्तन किया है उनके प्रसन्न होने पर ब्रह्मा जन्म लेते हैं और जिनके क्रोध से रुद्र का जन्म होता है। ''मैं मरूँगा'' यह भाव तो पाशविक प्रवृत्ति है क्योंकि आत्मा में जन्म-मरण आदि कोई परिवर्तन नहीं होता। जब शरीर का सूक्ष्म मानसिक आवरण दिव्य ज्ञान से विनष्ट हो जाता है, तो शरीर के भीतर आत्मा पुन: अपना आदि स्वरूप प्रदर्शित करता है। जिस तरह क्षणभंगुर दीपक का अस्तित्व तेल, पात्र, बत्ती तथा अग्नि के मेल से होता है उसी तरह भौतिक शरीर तीन गुणों, के संमेल से बनता है। भौतिक शरीर जन्म के समय प्रकट होता है और कुछ काल तक जीवित रहता है। अन्त में जब भौतिक गुणों का मेल विलीन हो जाता है और शरीर की मृत्यु होती है, तो दीपक के बुझने जैसी घटना घटती है। शुकदेव गोस्वामी राजा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, ''तुम अपने को भगवान् वासुदेव के ध्यान में स्थिर करो तो तक्षक के दंश का तुम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।''

श्रीशुक उवाच

अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ।
यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; **अत्र**—श्रीमद्भागवत में; **अनुवर्ण्यते**—विस्तार से वर्णन हुआ है; **अभीक्ष्णम्**—बारम्बार; **विश्व-आत्मा**—समस्त ब्रह्माण्ड की आत्मा; **भगवान्**—भगवान्; **हरिः**—हरि; **यस्य**—जिसके; **प्रसाद**—प्रसन्न होने से; **जः**—उत्पन्न; **ब्रह्मा**—ब्रह्मा; **रुद्रः**—शिव; **क्रोध**—क्रोध से; **समुद्भवः**—उत्पन्न।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस *श्रीमद्भागवत* की विविध कथाओं में भगवान् हरि का विस्तार से वर्णन हुआ है जिनके प्रसन्न होने पर ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं और जिनके क्रोध से रुद्र का जन्म होता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका करते हुए *श्रीमद्भागवत* का विस्तृत सारांश प्रस्तुत किया है। इन महान् आचार्य के कथन का सार यह है कि शुकदेव गोस्वामी ने भगवान् कृष्ण के प्रति जिस स्वेच्छ प्रेमपूर्ण समर्पण का वर्णन किया है, वह जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है। *श्रीमद्भागवत* का एकमात्र उद्देश्य बद्धजीव को भगवान् के प्रति ऐसे ही समर्पण के लिए और भगवद्धाम जाने के लिए आश्वस्त करना है।

त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; **तु**—लेकिन; **राजन्**—हे राजा; **मरिष्ये**—मैं मरने वाला हूँ; **इति**—यह सोच कर; **पशु-बुद्धिम्**—पाशविक मनोवृत्ति का; **इमाम्**—इस; **जहि**—त्याग दो; **न**—नहीं; **जातः**—उत्पन्न; **प्राक्**—इससे पूर्व; **अभूतः**—अविद्यमान; **अद्य**—आज; **देह-वत्**—शरीर की तरह; **त्वम्**—तुम; **न नङ्क्ष्यसि**—नष्ट नहीं होगे।

हे राजा, तुम यह सोचने की पाशविक प्रवृत्ति कि, ''मैं मरने जा रहा हूँ'' त्याग दो। तुम शरीर से सर्वथा भिन्न हो क्योंकि तुमने जन्म नहीं लिया है। भूतकाल में ऐसा समय नहीं था जब तुम नहीं थे और तुम विनष्ट होने वाले भी नहीं हो।

तात्पर्य : प्रथम स्कन्ध के अन्त (१.१९.१५) में राजा परीक्षित ने कहा था—

तं मोपजातं प्रतियन्तु विप्रा गंगा च देवी धृत-चित्तमीशे।
द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥

''हे ब्राह्मणो! तुम मुझे पूर्ण शरणागत आत्मा के रूप में स्वीकार करो और भगवान् की प्रतिनिधि स्वरूपा माता गंगा मुझे उसी रूप में स्वीकार करें क्योंकि मैंने पहले ही भगवान् के चरणकमलों को अपने हृदय में रख लिया है। तक्षक या ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न कोई भी जादू-भरी वस्तु आकर तुरन्त मुझे काट ले। मेरी यही इच्छा है कि आप लोग भगवान् विष्णु के कार्यकलापों का गायन करते रहें।''

श्रीमद्भागवत सुनने के पूर्व भी राजा परीक्षित महाभागवत थे। राजा के मन में मृत्यु का कोई पाशविक भय नहीं था किन्तु शुकदेव गोस्वामी हमारे लिए अपने शिष्य से उसी तरह प्रखर बातें कर रहे हैं जिस तरह भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* में अर्जुन से कड़े शब्दों में बोलते हैं।

न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ।

बीजाङ्कुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथानलः ॥ ३॥

शब्दार्थ

न भविष्यसि—तुम नहीं होगे; भूत्वा—होकर; त्वम्—तुम; पुत्र—पुत्रों; पौत्र—नातियों; आदि—इत्यादि; रूप-वान्—स्वरूप वाले; बीज—बीज; अङ्कुर—तथा अंकुर; वत्—सदृश; देह-आदेः—भौतिक शरीरतथा इसके साज-सामान से; व्यतिरिक्तः—पृथक्; यथा—जिस तरह; अनलः—अग्नि (काष्ठ से)।

तुम अपने पुत्रों तथा पौत्रों के रूप में फिर से जन्म नहीं लोगे जिस तरह बीज से अंकुर जन्म लेता है और पुनः नया बीज बनाता है। प्रत्युत तुम भौतिक शरीर तथा उसके साज-सामान से सर्वथा भिन्न हो, जिस तरह अग्नि अपने ईंधन से भिन्न होती है।

तात्पर्य : कभी कभी लोग यह स्वप्न देखते हैं कि वे अपने पुत्र के पुत्र रूप में पुनः जन्मे हैं जिससे वे उसी भौतिक परिवार में निरन्तर रहते रहें। जैसाकि श्रुति-मंत्र में कहा गया है—*पिता पुत्रेण पितृमान् योनियोनौ*—पिता अपने पुत्र में पिता को देखता है क्योंकि वह अपने पौत्र के रूप में जन्म ले सकता है। *श्रीमद्भागवत* का उद्देश्य आध्यात्मिक मोक्ष है, शारीरिक पहचान के मोह की मूर्खता को दीर्घकाल तक बनाये रखना नहीं है। इसे इस श्लोक में स्पष्ट रूप से कहा गया है।

स्वप्ने यथा शिरश्छेदं पञ्चत्वाद्यात्मनः स्वयम् ।
यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४॥

शब्दार्थ

स्वप्ने—स्वप्न में; यथा—जिस तरह; शिरः—किसी का सिर का; छेदम्—काटा जाना; पञ्चत्व-आदि—पाँच तत्त्वों से बने होने की स्थिति तथा अन्य स्थितियाँ; आत्मनः—अपनी ही; स्वयम्—स्वयं; यस्मात्—क्योंकि; पश्यति—देखता है; देहस्य—शरीर का; ततः—इसलिए; आत्मा—आत्मा; हि—निश्चय ही; अजः—अजन्मा; अमरः—अमर।

स्वप्न में मनुष्य अपने ही सिर को काटा जाते देख सकता है और वह यह समझ सकता है कि उसका आत्मा स्वप्न के अनुभव से अलग खड़ा है। इसी तरह जगते समय मनुष्य यह देख सकता है कि उसका शरीर पाँच भौतिक तत्त्वों का फल है। इसलिए यह माना जाता है कि वास्तविक आत्मा उस शरीर से पृथक् है, जिसे वह देखता है और वह अजन्मा तथा अमर है।

घटे भिन्ने घटाकाश आकाशः स्याद्यथा पुरा ।
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥ ५॥

शब्दार्थ

घटे—घड़े में; भिन्ने—टूट जाने पर; घाट-आकाशः—घड़े के भीतर का आकाश; आकाशः—आकाश; स्यात्—बना रहता है; यथा—जिस तरह; पुरा—पूर्ववत्; एवम्—उसी तरह से; देहे—शरीर में; मृते—मर जाने पर, मुक्तअवस्था में; जीवः—जीवात्मा; ब्रह्म—अपनी आध्यात्मिक स्थिति; सम्पद्यते—प्राप्त कर लेता है; पुनः—फिर से।

जब घड़ा टूट जाता है, तो घड़े के भीतर का आकाश पहले की ही तरह आकाश बना रहता है। उसी तरह जब स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर मरते हैं, तो उनके भीतर का जीव अपना आध्यात्मिक स्वरूप धारण कर लेता है।

मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः ।
तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मनः—मन; सृजति—उत्पन्न करता है; वै—निस्सन्देह; देहान्—भौतिक शरीरों को; गुणान्—गुणों को; कर्माणि—कर्मों को; च—तथा; आत्मनः—आत्मा का; तत्—वह; मनः—मन; सृजते—उत्पन्न करता है; माया—परमेश्वर की मायाशक्ति; ततः—इस प्रकार; जीवस्य—जीव का; संसृतिः—अस्तित्व।

आत्मा के भौतिक शरीर, गुण तथा कर्म भौतिक मन द्वारा ही उत्पन्न किये जाते हैं। मन स्वयं भगवान् की मायाशक्ति से उत्पन्न होता है और इस तरह आत्मा भौतिक अस्तित्व धारण करता है।

स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते ।
तावद्दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ।
रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

स्नेह—तेल का; अधिष्ठान—पात्र; वर्ति—बत्ती; अग्नि—तथा अग्नि; संयोगः—संमेल; यावत्—जितना; ईयते—देखा जाता है; तावत्—उस हद तक; दीपस्य—दीपक का; दीपत्वम्—दीपक के रूप में कार्य करने की स्थिति; एवम्—उसी तरह; देह-कृतः—भौतिक शरीर के कारण; भवः—संसार; रजः-सत्त्व-तमः—रजो, सतो तथा तमोगुणों की; वृत्त्या—क्रिया से; जायते—उत्पन्न होता है; अथ—तथा; विनश्यति—नष्ट होता है।

दीपक अपने ईंधन, पात्र, बत्ती तथा अग्नि के संमेल से ही कार्य करता है। इसी तरह भौतिक जीवन, शरीर के साथ आत्मा की पहचान पर आधारित होने से, उत्पन्न होता है और रजो, तमो तथा सतोगुणों के कार्यों से विनष्ट होता है, जो शरीर के अवयवी तत्त्व हैं।

न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ।
आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; तत्र—वहाँ; आत्मा—आत्मा; स्वयम्-ज्योतिः—आत्म-प्रकाशित; यः—जो; व्यक्त-अव्यक्तयोः—व्यक्त तथा अव्यक्त (स्थूल तथा सूक्ष्म देहों) से; परः—भिन्न; आकाशः—आकाश; इव—सदृश; च—तथा; आधारः—आधार; ध्रुवः—निश्चित; अनन्त—अन्तहीन; उपमः—अथवा उपमा; ततः—इस प्रकार।

शरीर के भीतर का आत्मा स्वयं-प्रकाशित है और दृश्य स्थूल तथा अदृश्य सूक्ष्म शरीरों से पृथक् है। यह परिवर्तनशील शरीरों का स्थिर आधार बना रहता है, जिस तरह आकाश भौतिक रूपान्तर की अपरिवर्तनशील पृष्ठभूमि है। इसलिए आत्मा अनन्त और भौतिक तुलना के परे है।

एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो ।

बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिन्तया ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; आत्मानम्—तुम्हारा शुद्ध आत्मा; आत्म-स्थम्—शारीरिक आवरण के भीतर स्थित; आत्मना—तुम्हारे मन से; एव—निस्सन्देह; आमृश—ठीक से विचार करो; प्रभो—हे आत्मा के ईश्वर (राजा परीक्षित); बुद्ध्या—बुद्धि से; अनुमान-गर्भिण्या—तर्क द्वारा सोचा गया; वासुदेव-अनुचिन्तया—वासुदेव के ध्यान से।

हे राजा, भगवान् वासुदेव का निरन्तर ध्यान करते हुए तथा शुद्ध एवं तार्किक बुद्धि का प्रयोग करते हुए अपनी आत्मा पर सावधानी से विचार करो कि यह भौतिक शरीर के भीतर किस तरह स्थित है।

चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः ।
मृत्यवो नोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

चोदितः—भेजा हुआ; विप्र-वाक्येन—ब्राह्मण के शब्दों से; न—नहीं; त्वाम्—तुम; धक्ष्यति—जला दोगे; तक्षकः—तक्षक सर्प; मृत्यवः—साक्षात् मृत्यु के दूत; न उपधक्ष्यन्ति—नहीं जला सकता; मृत्यूनाम्—मृत्यु के इन कारणों का; मृत्युम्—मृत्यु को; ईश्वरम्—आत्मा के स्वामी को।

ब्राह्मण के शाप से भेजा हुआ तक्षक सर्प तुम्हारी असली आत्मा को जला नहीं सकेगा। मृत्यु के दूत तुम जैसे आत्मा के स्वामी को कभी नहीं जला पायेंगे क्योंकि तुमने भगवद्धाम जाने के मार्ग के सारे खतरों को पहले से ही जीत रखा है।

तात्पर्य : असली मृत्यु तो मनुष्य की नित्य कृष्ण-चेतना का आवरण है। आत्मा के लिए, भौतिक मोह मृत्यु के समान है किन्तु परीक्षित महाराज ने उन सारे खतरों को यथा काम, ईर्ष्या तथा भय को पहले ही नष्ट कर दिया था, जो आध्यात्मिक जीवन को डराते-धमकाते हैं। यहाँ पर शुकदेव गोस्वामी सन्त स्वभाव वाले राजा को, जोकि मृत्यु की पहुँच से दूर था और शुद्ध कृष्ण-भक्त के रूप में भगवद्धाम जाने के लिए तत्पर था, बधाई देते हैं।

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।
एवं समीक्ष्य चात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ ११ ॥
दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ।
न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; ब्रह्म—परब्रह्म; परम्—परम; धाम—धाम; ब्रह्म—परब्रह्म; अहम्—मैं; परमम्—परम; पदम्—गन्तव्य; एवम्—इस प्रकार; समीक्ष्य—विचार करके; च—तथा; आत्मानम्—अपने को; आत्मनि—परमात्मा में; आधाय—रख कर; निष्कले—भौतिक गन्तव्य से मुक्त; दशन्तम्—काटते हुए; तक्षकम्—तक्षक को; पादे—अपने पाँव में; लेलिहानम्—होठ चाटता सर्प; विष-आननैः—विष से भरे मुँह से; न द्रक्ष्यसि—नहीं देखोगे; शरीरम्—अपने शरीर को; च—तथा; विश्वम्—समूचे संसार को; च—तथा; पृथक्—भिन्न; आत्मनः—अपने से।

तुम मन में यह विचार लाओ कि, ''मैं परब्रह्म, परम धाम से अभिन्न हूँ और परम गन्तव्य

परब्रह्म मुझसे अभिन्न हैं।'' इस तरह अपने को परमात्मा को सौंपते हुए जो सभी भौतिक उपाधियों से मुक्त हैं, तुम तक्षक सर्प को जब वह अपने विष से पूर्ण दाँतों से तुम्हारे पास पहुँच कर तुम्हारे पैर में काटेगा, तो देखोगे तक नहीं। न ही तुम अपने मरते हुए शरीर को या अपने चारों ओर के जगत को देखोगे क्योंकि तुम अपने को उनसे पृथक् अनुभव कर चुके होगे।

एतत्ते कथितं तात यदात्मा पृष्टवान्नृप ।
हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; ते—तुमसे; कथितम्—कहा गया; तात—हे परीक्षित; यत्—जो; आत्मा—तुमने; पृष्टवान्—पूछा; नृप—हे राजा; हरेः—भगवान् का; विश्व-आत्मनः—ब्रह्माण्ड की आत्मा की; चेष्टाम्—लीलाएँ; किम्—क्या; भूयः—और आगे; श्रोतुम्—सुनना; इच्छसि—चाहते हो।

हे प्रिय राजा परीक्षित, मैंने तुमसे ब्रह्माण्ड के परमात्मा भगवान् हरि की लीलाएँ—वे सारी कथाएँ—कह दीं जिन्हें प्रारम्भ में तुमने पूछा था। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

तात्पर्य : इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील जीव गोस्वामी ने *भागवत* से अनेक श्लोकों को उद्धृत करते हुए राजा परीक्षित के उच्च भक्तिमय पद को दिखलाया है, जो अपना मन कृष्ण में स्थिर करने और भगवद्धाम वापस जाने पर तुले हुए थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध के अन्तर्गत ''महाराज परीक्षित को शुकदेव गोस्वामी का अन्तिम उपदेश'' नामक पाँचवे अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter छह

महाराज परीक्षित का निधन

इस अध्याय में महाराज परीक्षित के मुक्ति-लाभ, महाराज जनमेजय द्वारा सारे सर्पों को मारने के लिए यज्ञ सम्पन्न का होना, वेदों की उत्पत्ति तथा श्रील वेदव्यास द्वारा वैदिक वाङ्मय के विभाजन का वर्णन हुआ है।

श्री शुकदेव के वचन सुनने के बाद महाराज परीक्षित ने कहा कि पुराणों के सार तथा भगवान् उत्तमश्लोक की अमृतमयी लीलाओं से ओतप्रोत *भागवत* को सुन कर, उन्होंने अभय का दिव्य पद तथा ब्रह्म से एकात्म प्राप्त कर लिया है। उनका अज्ञान दूर हो चुका है और श्री शुकदेव की कृपा से उन्होंने ईश्वर के परम शुभ साकार रूप, भगवान् हरि का दर्शन प्राप्त कर लिया है। फलस्वरूप उनका सारा मृत्यु-भय दूर हो चुका है। तत्पश्चात् श्री परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से प्रार्थना की कि वे उन्हें अपना हृदय भगवान् हरि के चरणकमलों में स्थिर करने की और अपना प्राण छोड़ने की अनुमति दें। यह अनुमति देकर श्री शुकदेव उठ कर चले गये। तत्पश्चात् समस्त

संशयों से मुक्त महाराज परीक्षित योगिक आसन में बैठ गये और परमात्मा के ध्यान में लीन हो गये। तब ब्राह्मण-वेश में आकर तक्षक ने उन्हें काट लिया और सन्त स्वभाव वाले राजा का शरीर तुरन्त जल कर क्षार हो गया।

जब परीक्षित-पुत्र जन्मेजय को अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने सारे सर्पों को विनष्ट करने के उद्देश्य से यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि तक्षक को इन्द्र का संरक्षण प्राप्त था, तो भी वह मंत्रों द्वारा आकृष्ट हो गया और अग्नि में गिरने ही वाला था। यह देख कर अंगिरा ऋषि के पुत्र बृहस्पति वहाँ आये और महाराज जनमेजय को सलाह दी कि तक्षक को इसलिए नहीं मारा जा सकता क्योंकि उसने देवताओं का अमृतपान किया है। इसके अतिरिक्त, अंगिरा ने कहा कि सभी जीवों को अपने किए कर्मों का फल भोगना ही है। इसलिए राजा को इस यज्ञ का त्याग कर देना चाहिए। जनमेजय को बृहस्पति के शब्दों पर विश्वास हो गया अत: उसने अपना यज्ञ रोक दिया।

तत्पश्चात् श्री रौनक द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर, सूत गोस्वामी ने वेदों का विभाजन कह सुनाया। सर्वश्रेष्ठ देवता ब्रह्मा के मुख से सूक्ष्म दिव्य ध्वनि निकली और इस दिव्य ध्वनि से ॐ अक्षर निकला जो अत्यन्त शक्तिवान तथा आत्म-प्रकाशित था। इस ॐकार के द्वारा ब्रह्मा ने आदि वेदों की सृष्टि की और मरीचि तथा अन्य पुत्रों को, जो ब्राह्मण जाति के साधु स्वभाव वाले अग्रणी थे, उनकी शिक्षा दी। यह वैदिक ज्ञान राशि गुरु-परम्परा द्वारा द्वापर युग के अन्त तक हस्तान्तरित होती आई जब व्यासदेव ने इसे चार भागों में विभक्त करके चार संहिताओं के रूप में मुनियों के विविध सम्प्रदायों को उनका उपदेश दिया। जब याज्ञवल्क्य मुनि के गुरु ने उन्हें बहिष्कृत किया, तो उन्हें उनसे प्राप्त सारे वैदिक मंत्रों का त्याग करना पड़ा। उन्होंने यजुर्वेद के नवीन मंत्रों की प्राप्ति के लिए सूर्यदेव के रूप में भगवान् की पूजा की। तत्पश्चात् श्री सूर्य देव ने उनकी प्रार्थना पूरी की।

सूत उवाच

एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षिद्
व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ।
तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना
बद्धाञ्जलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एतत्—यह; निशम्य—सुन कर; मुनिना—मुनि (शुकदेव) द्वारा; अभिहितम्—कहा गया; परीक्षित्—महाराज परीक्षित; व्यास-आत्म-जेन—व्यासदेव के पुत्र द्वारा; निखिल—सारे जीवों के; आत्म—परमेश्वर; दृशा—द्रष्टा; समेन—पूर्णतया सन्तुलित; तत्—उस (शुकदेव) का; पाद-मूलम्—चरणकमलों तक; उपसृत्य—पहुँच कर; नतेन—झुके हुए; मूर्ध्ना—सिर से; बद्ध-अञ्जलिः—हाथ जोड़े; तम्—उससे; इदम्—यह; आह—कहा; सः—वह; विष्णु-रातः—गर्भ में ही कृष्ण द्वारा रक्षा किया गया परीक्षित।

सूत गोस्वामी ने कहा : व्यासदेव के पुत्र, स्वरूपसिद्ध तथा समदृष्टि वाले शुकदेव गोस्वामी द्वारा जो कुछ कहा गया था उसे सुन कर महाराज परीक्षित नम्रतापूर्वक उनके

चरणकमलों के पास गये। मुनि के चरणों पर अपना शीश झुकाते हुए, सम्मान में हाथ जोड़े, जीवन-भर भगवान् विष्णु के संरक्षण में रह चुके राजा ने इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार जब शुकदेव राजा परीक्षित को उपदेश दे रहे थे तो वहाँ पर उपस्थित मुनियों में से कुछ निर्विशेषवादी दार्शनिक थे। *समेन* शब्द सूचित करता है कि पिछले अध्याय में शुकदेव गोस्वामी ने आत्म-साक्षात्कार के दर्शन के विषय में जिस प्रकार से कहा था, वह ऐसे बुद्धिजीवी योगियों को रुचिकर लगा था।

राजोवाच
सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ।
श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २॥

शब्दार्थ

राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; सिद्धः—पूरी तरह सफल; अस्मि—हूँ; अनुगृहीतः—महती कृपा प्रदर्शित; अस्मि—मैं हूँ; भवता—आपके द्वारा; करुणा-आत्मना—दयालु; श्रावितः—सुनाया गया; यत्—क्योंकि; च—तथा; मे—मुझको; साक्षात्—प्रत्यक्ष; अनादि—आदि से रहित; निधनः—अथवा अन्त; हरिः—भगवान्।

महाराज परीक्षित ने कहा : अब मुझे अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त हो गया है क्योंकि आप सरीखे महान् तथा दयालु आत्मा ने मुझ पर इतनी कृपा प्रदर्शित की है। आपने स्वयं मुझसे आदि अथवा अन्त से रहित भगवान् हरि की यह कथा कही है।

नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ।
अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अति-अद्भुतम्—अत्यन्त आश्चर्यजनक; अहम्—मैं; मन्ये—सोचता हूँ; महताम्—महापुरुषों के लिए; अच्युत-आत्मनाम्—जिनके मन सदैव भगवान् कृष्ण में लीन रहते हैं; अज्ञेषु—अज्ञानी पर; ताप—भौतिक जीवन के कष्टों से; तप्तेषु—सताये हुए; भूतेषु—बद्धात्माओं पर; यत्—जो; अनुग्रहः—दया।

मैं इसे तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं मानता कि आप जैसे महात्मा, जिनके मन सदैव अच्युत भगवान् में लीन रहते हैं, हम जैसे मूर्ख बद्धजीवों पर दया दिखाते हैं, जो भौतिक जीवन की समस्याओं से सताये होते हैं।

पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् ।
यस्यां खलूत्तमःश्लोको भगवाननवर्ण्यते ॥ ४॥

शब्दार्थ

पुराण-संहिताम्—सारे पुराणों का आवश्यक सारांश; एताम्—इस; अश्रौष्म—सुना है; भवतः—आपसे; वयम्—हमने; यस्याम्—जिसमें; खलु—निस्सन्देह; उत्तमः-श्लोकः—उत्तम श्लोकों द्वारा वर्णित; भगवान्—भगवान्; अनुवर्ण्यते—उचित रीति से वर्णन किया जाता है।

मैंने आपसे यह *श्रीमद्भागवत* का श्रवण किया है, जो सारे पुराणों का पूर्ण सार है और

जो भगवान् उत्तमश्लोक का ठीक से वर्णन करता है।

भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ।
प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

भगवन्—हे प्रभु; तक्षक—तक्षक सर्प से; आदिभ्यः—अथवा अन्य जीवों से; मृत्युभ्यः—बारम्बार मृत्यु से; न बिभेमि—नहीं डरता हूँ; अहम्—मैं; प्रविष्टः—प्रवेश करके; ब्रह्म—परब्रह्म; निर्वाणम्—हर भौतिक वस्तु से परे; अभयम्—निर्भीकता; दर्शितम्—दिखाई गई; त्वया—आपके द्वारा।

हे प्रभु, अब मुझे तक्षक या अन्य जीव का या बारम्बार मृत्यु का भी भय नहीं रहा क्योंकि मैंने अपने को उस विशुद्ध आध्यात्मिक परब्रह्म में लीन कर दिया है, जिसका उद्घाटन आपने किया है और जो सारे भय को नष्ट कर देता है।

अनुजानीहि मां ब्रह्मन्वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ।
मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अनुजानीहि—अनुमति दें; माम्—मुझको; ब्रह्मन्—हे महान् ब्राह्मण; वाचम्—मेरी वाणी (तथा अन्य इन्द्रिय-कार्य); यच्छामि—मैं रखूँगा; अधोक्षजे—भगवान् में; मुक्त—त्याग करके; काम-आशयम्—सारी कामुक इच्छाएँ; चेतः—अपना मन; प्रवेश्य—लीन करके; विसृजामि—मैं त्याग दूँगा; असून्—अपना प्राण।

हे ब्राह्मण, मुझे अनुमति दें कि मैं अपनी वाणी तथा अपनी अन्य इन्द्रियों के कार्यों को बन्द करके भगवान् अधोक्षज को सौंप सकूँ। कृपया मुझे अनुमति दें कि मैं अपने मन को विषय-वासनाओं से शुद्ध करके उन्हीं में लीन कर सकूँ और इस तरह अपना जीवन त्याग सकूँ।

तात्पर्य : शुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित से पूछा, ''अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?'' इस पर राजा ने उत्तर दिया कि वे श्रीमद्भागवत के सन्देश को पूरी तरह समझ चुके हैं और बिना किसी हिचक के भगवद्धाम जाने के लिए तैयार हैं।

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ।
भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अज्ञानम्—अज्ञान; च—भी; निरस्तम्—जड़मूल नष्ट हुआ; मे—मेरा; ज्ञान—परमेश्वर के ज्ञान; विज्ञान—तथा उनके ऐश्वर्य तथा माधुर्य की प्रत्यक्ष अनुभूति; निष्ठया—स्थिर होकर; भवता—आपके द्वारा; दर्शितम्—दिखाया गया; क्षेमम्—सर्व-कल्याण; परम्—परम; भगवतः—भगवान् का; पदम्—पद।

आपने भगवान् के परम मंगलमय साकार रूप का साक्षात्कार कराया है। अब मैं ज्ञान तथा आत्म-साक्षात्कार में स्थिर हूँ और मेरा अज्ञान मिट चुका है।

सूत उवाच

इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः ।
जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; तम्—उससे; अनुज्ञाप्य—अनुमति देकर; भगवान्—शक्तिमान सन्त; बादरायणिः—बादरायण वेदव्यास के पुत्र शुकदेव; जगाम—चले गये; भिक्षुभिः—विरक्त मुनियों के; साकम्—साथ; नर-देवेन—राजा द्वारा; पूजितः—पूजा किया गया।

सूत गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार अनुनय-विनय किये जाने पर श्रील व्यासदेव के पुत्र ने राजा परीक्षित को अनुमति दे दी। तत्पश्चात् राजा तथा वहाँ पर उपस्थित मुनियों द्वारा पूजित होकर शुकदेव उस स्थान से चले गये।

परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ।
समाधाय परं दध्यावस्पन्दासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥

प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गङ्गाकूल उदङ्मुखः ।
ब्रह्मभूतो महायोगी निःसङ्गश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

परीक्षित्—महाराज परीक्षित; अपि—आगे भी; राज-ऋषिः—सन्त स्वभाव वाला महान् राजा; आत्मनि—अपनी आध्यात्मिक पहचान के ही भीतर; आत्मानम्—अपने मन को; आत्मना—अपनी बुद्धि से; समाधाय—रख कर; परम्—परम में; दध्यौ—ध्यान किया; अस्पन्द—गतिहीन; असुः—अपना प्राण; यथा—जिस तरह; तरुः—वृक्ष; प्राक्-कूले—पूर्व दिशा की ओर सिरे किये; बर्हिषि—दर्भ घास पर; आसीनः—बैठे हुए; गङ्गा-कूले—गंगा के तट पर; उदक्-मुखः—उत्तर की ओर मुँह करके; ब्रह्म-भूतः—अपनी असली पहचान का पूर्ण साक्षात्कार करते हुए; महा-योगी—उच्च योगी; निःसङ्गः—समस्त भौतिक आसक्ति से मुक्त; छिन्न—तोड़ कर; संशयः—सारे सन्देह।

तब महाराज परीक्षित पूर्वाभिमुख दर्भ के बने आसन पर गंगा नदी के तट पर बैठ गये और स्वयं उत्तर की ओर मुख कर लिया। योगसिद्धि प्राप्त करने के बाद उन्हें पूर्ण आत्म-साक्षात्कार की अनुभूति हुई और वे समस्त भौतिक आसक्ति तथा संशय से मुक्त थे। साधु राजा ने अपनी शुद्ध बुद्धि से अपने मन को अपने आत्मा के भीतर स्थिर कर लिया और परब्रह्म का ध्यान करने लगे। उनकी प्राणवायु ने गति करनी बन्द कर दी और वे वृक्ष की तरह जड़ हो गये।

तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ।
हन्तुकामो नृपं गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तक्षकः—तक्षक; प्रहितः—भेजा गया; विप्राः—हे विद्वान ब्राह्मणो; क्रुद्धेन—क्रुद्ध हुए; द्विज—शमीक मुनि के; सूनुना—पुत्र द्वारा; हन्तु-कामः—मारने की इच्छा से; नृपम्—राजा के पास; गच्छन्—जाते हुए; ददर्श—देखा; पथि—रास्ते में; कश्यपम्—कश्यप मुनि।

हे विद्वान ब्राह्मणो, ब्राह्मण के क्रुद्ध पुत्र द्वारा भेजा गया तक्षक सर्प राजा को मारने के

लिए उसकी ओर जा रहा था कि उसने मार्ग में कश्यप मुनि को देखा।

तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (कश्यप) को; तर्पयित्वा—तुष्ट करके; द्रविणैः—बहुमूल्य भेंटों द्वारा; निवर्त्य—रोक कर; विष-हारिणम्—विष उतारने में दक्ष; द्विज-रूप—ब्राह्मण के रूप में; प्रतिच्छन्नः—वेश बदल कर; काम-रूपः—इच्छानुसार कोई भी रूप धारण करने में समर्थ तक्षक ने; अदशत्—काट लिया; नृपम्—राजा परीक्षित को।

तक्षक ने कश्यप मुनि को, जोकि विष उतारने में दक्ष थे, बहुमूल्य भेंटे देकर महाराज परीक्षित की रक्षा करने से रोक दिया। तब इच्छानुसार रूप धारण करने वाला तक्षक, जोकि ब्राह्मण के वेश में था, राजा के निकट गया और उसे काट लिया।

तात्पर्य : कश्यप मुनि तक्षक के विष को उतार सकते थे क्योंकि उन्होंने तक्षक के जहरीले दाँतों द्वारा काटे हुए तथा जल कर क्षार हुए ताड़ वृक्ष को जीवित करके अपनी इस शक्ति को प्रदर्शित कर दिया हुआ था। भाग्य के विधान के अनुसार कश्यप मुनि तक्षक द्वारा बहका दिये गये और वही हुआ जो होना था।

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ।
बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-भूतस्य—पूर्णतया स्वरूपसिद्ध; राज-ऋषेः—राजर्षि के; देहः—शरीर; अहि—सर्प के; गरल—विष से; अग्निना—अग्नि से; बभूव—हो गया; भस्म-सात्—राख; सद्यः—तुरन्त; पश्यताम्—देखते-देखते; सर्व-देहिनाम्—सभी देहधारी जीवों के।

ब्रह्माण्ड-भर के जीवों के देखते-देखते उस स्वरूपसिद्ध राजर्षि का शरीर सर्प-विष की अग्नि से तुरन्त जल कर राख हो गया।

हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः ।
विस्मिता ह्यभवन्सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४॥

शब्दार्थ

हाहा-कारः—शोक का क्रन्दन; महान्—अत्यधिक; आसीत्—हुआ; भुवि—पृथ्वी पर; खे—आकाश में; दिक्षु—दिशाओं में; सर्वतः—चारों ओर; विस्मिताः—चकित; हि—निस्सन्देह; अभवन्—हो गये; सर्वे—सभी; देव—देवता; असुर—असुरगण; नर—मनुष्य; आदयः—तथा अन्य प्राणी।

पृथ्वी पर तथा स्वर्ग में सभी दिशाओं में भीषण हाहाकार होने लगा और सारे देवता, असुर, मनुष्य तथा अन्य प्राणी चकित हो उठे।

देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वाप्सरसो जगुः ।

ववृषुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५॥

शब्दार्थ

देव—देवताओं की; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; नेदुः—बजने लगीं; गन्धर्व-अप्सरसः—गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने; जगुः—गाया; ववृषुः—वर्षा की; पुष्प-वर्षाणि—फूलों की वर्षा; विबुधाः—देवताओं ने; साधु-वादिनः—प्रशंसा करते हुए।

देव-लोक में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और स्वर्ग के गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने गीत गाये। देवताओं ने फूलों की वर्षा की तथा प्रशंसात्मक शब्द कहे।

तात्पर्य : यद्यपि सारे विद्वान पुरुष जिसमें देवता सम्मिलित थे, पहले शोक मना रहे थे, किन्तु उन्हें शीघ्र ही अनुभव हुआ कि एक महान् आत्मा भगवद्धाम वापस चला गया है। यह तो वास्तव में उल्लास का कारण था।

जन्मेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ।
यथाजुहाव सन्क्रुद्धो नागान्सत्रे सह द्विजैः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

जन्मेजयः—परीक्षित पुत्र जनमेजय; स्व-पितरम्—अपने पिता को; श्रुत्वा—सुन कर; तक्षक—तक्षक द्वारा; भक्षितम्—डसा गया; यथा—उचित रीति से; आजुहाव—हवन करने लगा; सङ्क्रुद्धः—अत्यन्त क्रुद्ध; नागान्—सर्पों को; सत्रे—महान् यज्ञ में; सह—सहित; द्विजैः—ब्राह्मणों।

यह सुन कर कि उसके पिता को तक्षक ने बुरी तरह से डस कर मार दिया है, महाराज जनमेजय अत्यधिक क्रुद्ध हुए और ब्राह्मणों से एक विशाल यज्ञ कराया जिसमें उन्होंने संसार के सारे सर्पों को यज्ञ-अग्नि में भेंट कर दिया।

सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् ।
दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७॥

शब्दार्थ

सर्प-सत्रे—सर्प-यज्ञ में; समिद्ध—प्रज्ज्वलित; अग्नौ—आग में; दह्यमानान्—जलाये जाते हुए; महा-उरगान्—विशाल सर्पों को; दृष्ट्वा—देख कर; इन्द्रम्—इन्द्र के पास; भय संविग्नः—अत्यधिक विचलित; तक्षकः—तक्षक; शरणम्—शरण के लिए; ययौ—गया।

जब तक्षक ने अत्यन्त शक्तिशाली सर्पों को भी उस सर्प-यज्ञ की प्रज्ज्वलित अग्नि में जलाया जाते देखा, तो वह भय से आकुल हो उठा और शरण के लिए इन्द्र के पास पहुँचा।

अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ।
उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८॥

शब्दार्थ

अपश्यन्—न देखते हुए; तक्षकम्—तक्षक को; तत्र—वहाँ; राजा—राजा; पारीक्षितः—जनमेजय; द्विजान्—ब्राह्मणों से; उवाच—कहा; तक्षकः—तक्षक; कस्मात्—क्यों; न दह्येत—नहीं जला; उरग—समस्तसर्पों में; अधमः—नीच।

जब राजा जनमेजय ने तक्षक को यज्ञ-अग्नि में प्रवेश करते नहीं देखा तो उन्होंने

ब्राह्मणों से कहा, ''समस्त सर्पों में नीच वह तक्षक इस अग्नि में क्यों नहीं जल रहा?''

तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणमागतम् ।
तेन संस्तम्भितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (तक्षक) को; गोपायति—छिपाये है; राज-इन्द्र—हे राजाओं में श्रेष्ठ; शक्रः—इन्द्र; शरणम्—शरण के लिए; आगतम्—आया हुआ; तेन—उस इन्द्र द्वारा; संस्तम्भितः—रखा गया; सर्पः—सर्प; तस्मात्—इस तरह; न—नहीं; अग्नौ—अग्नि में; पतति—गिरता है; असौ—वह।

ब्राह्मणों ने उत्तर दिया : ''हे राजेन्द्र, तक्षक सर्प इसलिए अग्नि में नहीं गिरा क्योंकि इन्द्र द्वारा उसकी रक्षा हो रही है, जिसके पास वह शरण के लिए पहुँचा है। इन्द्र उसे अग्नि से बचाये हुए है।

पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ।
सहेन्द्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पारीक्षितः—राजा जनमेजय ने; इति—ये वचन; श्रुत्वा—सुन कर; प्राह—उत्तर दिया; ऋत्विजः—पुरोहितों से; उदार—विशाल; धीः—बुद्धि वाले; सह—साथ; इन्द्रः—इन्द्र; तक्षकः—तक्षक; विप्राः—हे ब्राह्मणो; न—नहीं; अग्नौ—आग में; किम्—क्यों; इति—निस्सन्देह; पात्यते—गिराया जाता है।

इन शब्दों को सुन कर बुद्धिमान राजा जनमेजय ने पुरोहितों से कहा, ''तो हे ब्राह्मणो, तुम लोग तक्षक को, उसके रक्षक इन्द्र सहित, अग्नि में क्यों नहीं गिरा लेते?''

तच्छ्रुत्वाजुहुवुर्विप्राः सहेन्द्रं तक्षकं मखे ।
तक्षकाशु पतस्वेह सहेन्द्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; श्रुत्वा—सुन कर; आजुहुवुः—हवन किया; विप्राः—ब्राह्मण पुरोहितों ने; सह—सहित; इन्द्रम्—इन्द्र; तक्षकम्—तक्षक को; मखे—यज्ञ-अग्नि में; तक्षक—हे तक्षक; आशु—तुरन्त; पतस्व—गिरो; इह—यहाँ; सह इन्द्रेण—इन्द्र समेत; मरुत्-वता—सारे देवताओं के साथ।

यह सुन कर पुरोहितों ने इन्द्र समेत तक्षक को यज्ञ-अग्नि में आहुति के रूप अर्पित करने के लिए यह मंत्र पढ़ा, ''हे तक्षक, तुम इस अग्नि में इन्द्र तथा उनके देवताओं के समूह सहित तुरन्त गिर पड़ो।''

इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिन्द्रः प्रचालितः ।
बभूव सम्भ्रान्तमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; ब्रह्म—ब्राह्मणों द्वारा; उदित—कहे गये; आक्षेपैः—अपमानजनक शब्दों द्वारा; स्थानात्—अपने स्थान से; इन्द्रः—इन्द्र; प्रचालितः—फेंका गया; बभूव—हो गया; सम्भ्रान्त—विचलित; मतिः—अपने मन में; स-विमानः—अपने स्वर्गिक विमान सहित; स-तक्षकः—तक्षक समेत।

जब ब्राह्मणों के इन अपमानजनक शब्दों के कारण इन्द्र अपने विमान तथा तक्षक समेत सहसा अपने स्थान से च्युत होने लगा, तो वह अत्यन्त घबड़ा गया।

तं पतन्तं विमानेन सहतक्षकमम्बरात् ।
विलोक्याङ्गिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; पतन्तम्—गिरता हुआ; विमानेन—अपने विमान से; सह-तक्षकम्—तक्षक समेत; अम्बरात्—आकाश से; विलोक्य—देख कर; आङ्गिरसः—अंगिरा पुत्र; प्राह—बोला; राजानम्—राजा (जनमेजय) से; तम्—उस; बृहस्पतिः—बृहस्पति।

जब अंगिरा मुनि के पुत्र बृहस्पति ने इन्द्र को तक्षक समेत आकाश से उसके विमान से गिरते देखा तो वह राजा जनमेजय के पास पहुँचा और उनसे इस प्रकार कहा।

नैष त्वया मनुष्येन्द्र वधमर्हति सर्पराट् ।
अनेन पीतममृतमथ वा अजरामरः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एषः—यह तक्षक; त्वया—तुम्हारे द्वारा; मनुष्य-इन्द्र—हे मनुष्यों के शासक; वधम्—हत्या के; अर्हति—योग्य है; सर्प-राट्—सर्पों का राजा; अनेन—उसके द्वारा; पीतम्—पिये हुए; अमृतम्—देवताओं का अमृत; अथ—इसलिए; वै—अथवा; अजर—बुढ़ापे के प्रभावों से मुक्त; अमरः—एक तरह से अमर।

''हे पुरुषों में राजा, यह उचित नहीं है कि यह सर्पराज आपके हाथों से मौत को प्राप्त हो क्योंकि इसने अमर देवताओं का अमृत पी रखा है। फलस्वरूप, इसे बुढ़ापा तथा मृत्यु के सामान्य लक्षण नहीं सताते।''

जीवितं मरणं जन्तोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ।
राजंस्ततोऽन्यो नास्त्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

जीवितम्—जीवित; मरणम्—मर रहे; जन्तोः—जीव का; गतिः—अगले जीवन में गन्तव्य; स्वेन—अपने ही द्वारा; एव—एकमात्र; कर्मणा—कर्म द्वारा; राजन्—हे राजा; ततः—उसकी अपेक्षा; अन्यः—दूसरा; न अस्ति—नहीं है; अस्य—उसका; प्रदाता—देने वाला; सुख-दुःखयोः—सुख तथा दुख का।

''देहधारी आत्मा का जीवन तथा मरण और अगले जीवन में उसका गन्तव्य—ये सभी उसके ही अपने कर्म द्वारा उत्पन्न होते हैं। इसलिए हे राजन्, किसी के सुख तथा दुख को उत्पन्न करने के लिए वास्तव में कोई अन्य अभिकर्ता उत्तरदायी नहीं है।''

तात्पर्य : यद्यपि राजा परीक्षित तक्षक के काटने से मरे, किन्तु उन्हें भगवद्धाम लाने वाले स्वयं

भगवान् कृष्ण थे। बृहस्पति चाह रहे थे कि तरुण राजा जनमेजय इन बातों को आध्यात्मिक दृष्टि से देखे।

सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृद्व्याध्यादिभिर्नृप ।
पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६॥

शब्दार्थ

सर्प—सर्पों; चौर—चोरों; अग्नि—आग; विद्युद्भ्यः—तथा आसमान की बिजली से; क्षुत्—भूख; तृट्—प्यास; व्याधि—रोग; आदिभिः—आदि अन्य कारणों से; नृप—हे राजा; पञ्चत्वम्—मृत्यु; ऋच्छते—प्राप्त करता है; जन्तुः—बद्धजीव; भुङ्क्ते—भोग करता है; आरब्ध—विगत कर्म से पहले से उत्पन्न; कर्म—सकाम कर्मफल; तत्—वह।

''जब बद्धजीव सर्पों, चोरों, अग्नि, बिजली, भूख, रोग या अन्य किसी कारण से मारा जाता है, तो वह अपने ही विगत कर्म के फल का अनुभव करता है।''

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार, राजा परीक्षित अपने विगत कर्म का फल नहीं भोग रहे थे। महान् भक्त होने के कारण वे स्वयं भगवान् द्वारा भगवद्धाम ले जाये गये थे।

तस्मात्सत्रमिदं राजन्संस्थीयेताभिचारिकम् ।
सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; सत्रम्—यज्ञ को; इदम्—इस; राजन्—हे राजा; संस्थीयेत—रोका जाना चाहिए; आभिचारिकम्—हानि पहुँचाने की मंशा से किया गया; सर्पाः—सर्प; अनागसः—निर्दोष; दग्धाः—जलाया गया; जनैः—व्यक्तियों द्वारा; दिष्टम्—भाग्य; हि—निस्सन्देह; भुज्यते—भोगा जाता है।

''इसलिए हे राजा, इस यज्ञ को जो अन्यों को हानि पहुँचाने की मंशा से चालू किया गया है, बन्द करा दें। अनेक निर्दोष सर्प पहले ही जला कर मार दिये गये हैं। निस्सन्देह सारे व्यक्तियों को अपने विगत कर्मों के अदृष्ट परिणामों को भोगना चाहिए।''

तात्पर्य : यहाँ पर बृहस्पति स्वीकार करते हैं कि यद्यपि सर्प निर्दोष प्रतीत हो रहे थे किन्तु भगवान् की व्यवस्था के द्वारा वे अपने पूर्व दूषित कर्मों के लिए दण्डित भी हो रहे थे।

सूत उवाच
इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः ।
सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; सः—उसने (जनमेजय ने); तथा इति—तथास्तु; आह—कहा; महा-ऋषेः—महर्षियों के; मानयन्—सम्मान करते हुए; वचः—शब्द; सर्प-सत्रात्—सर्प-यज्ञ से; उपरतः—बन्द करते हुए; पूजयाम् आस—पूजा की; वाक्-पतिम्—वाणी के स्वामी बृहस्पति को।

सूत गोस्वामी ने कहा : इस तरह सलाह दिये जाने पर महाराज जनमेजय ने उत्तर दिया, ''तथास्तु''। महर्षि के वचनों का आदर करते हुए उन्होंने सर्प-यज्ञ बन्द करा दिया और फिर

अत्यन्त वाक्पटु मुनि बृहस्पति की पूजा की।

सैषा विष्णोर्महामायाबाध्ययालक्षणा यया ।
मुह्यन्त्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः ॥ २९॥

शब्दार्थ

सा एषा—यही; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; महा-माया—मोहमयी भौतिक शक्ति; अबाध्यया—जो उसके द्वारा जिसे रोका नहीं जा सकता; अलक्षणा—न दिखने वाली; यया—जिसके द्वारा; मुह्यन्ति—विमोहित हो जाते हैं; अस्य—भगवान् का; एव—निस्सन्देह; आत्म-भूताः—अंश रूप आत्माएँ; भूतेषु—उनके भौतिक शरीरों में; गुण—प्रकृति के गुणों के; वृत्तिभिः—कार्यों द्वारा।

यह निस्सन्देह भगवान् विष्णु की मायाशक्ति है, जो अबाध्य है और जिसे देख पाना कठिन है। यद्यपि व्यष्टि आत्माएँ भगवान् की भिन्नांश हैं, किन्तु इस मायाशक्ति के प्रभाव से, वे विविध भौतिक शरीरों के साथ अपनी पहचान से विमोहित हैं।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु की मायाशक्ति इतनी प्रबल है कि राजा परीक्षित का लब्धप्रतिष्ठ पुत्र तक अस्थायी रूप से दिशाभ्राँत हो गया। किन्तु भगवान् कृष्ण का भक्त होने से उसका मोह तुरन्त ठीक हो गया। दूसरी ओर एक सामान्य भौतिकतावादी पुरुष भगवान् के विशेष संरक्षण के बिना भौतिक अज्ञान में डूबा रहता है। वस्तुतः भौतिकतावादी व्यक्तियों को भगवान् विष्णु के संरक्षण की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए उनका पूर्ण विनाश अपरिहार्य है।

न यत्र दम्भीत्यभया विराजिता
मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ।
न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो
मनश्च सङ्कल्पविकल्पवृत्ति यत् ॥ ३०॥
न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं
श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ।
तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं
निषिध्य चोर्मीन्विरमेत तन्मुनिः ॥ ३१॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यत्र—जिसमें; दम्भी—दिखावटी व्यक्ति; इति—इस प्रकार सोचते हुए; अभया—निडर; विराजिता—दृश्य; माया—मायाशक्ति; आत्म-वादे—आध्यात्मिक पूछताछ किये जाने पर; असकृत्—निरन्तर; आत्म-वादिभिः—अध्यात्म विद्या का वर्णन करने वालों द्वारा; न—नहीं; यत्—जिसमें; विवादः—भौतिकतावादी तर्क-वितर्क; विविधः—नाना प्रकार का; तत्-आश्रयः—उस माया पर आश्रित; मनः—मन; च—तथा; सङ्कल्प—निर्णय; विकल्प—तथा संशय; वृत्ति—जिनके कार्य; यत्—जिसमें; न—नहीं; यत्र—जिसमें; सृज्यम्—भौतिक जगत की सृजित वस्तुएँ; सृजता—उनके कारणों समेत; उभयोः—दोनों के द्वारा; परम्—प्राप्त किया हुआ; श्रेयः—लाभ; च—तथा; जीवः—जीव; त्रिभिः—तीन (गुणों) से; अन्वितः—युक्त; तु—निस्सन्देह; अहम्—मिथ्या अहंकार (से बद्ध); तत् एतत्—वह निस्सन्देह; उत्सादित—के अतिरिक्त; बाध्य—रोका गया (बद्धजीव); बाधकम्—तथा रोकने वाला (गुण); निषिध्य—छोड़ते हुए; च—तथा; ऊर्मीन्—लहरों को (मिथ्या अहंकार आदि को); विरमेत—विशेष आनन्द लूटे; तत्—उसमें; मुनिः—मुनि।

किन्तु एक परम सत्य होता है, जिसमें माया यह सोचते हुए कि, ''मैं इस व्यक्ति को वश में कर सकती हूँ क्योंकि यह कपटी है'' निर्भय होकर अपना प्रभुत्व नहीं दिखा सकती। सर्वोच्च सत्य में मायामय तर्क-वितर्क के दर्शन नहीं होते। प्रत्युत उसमें अध्यात्म विद्या के असली जिज्ञासु निरन्तर प्रमाणित आध्यात्मिक शोध में लगे रहते हैं। उस परम सत्य में भौतिक मन की अभिव्यक्ति नहीं होती, जो कभी निर्णय तो कभी संशय के रूप में कार्य करता है। सृजित वस्तुएँ, उनके सूक्ष्म कारण और उनके उपयोग से प्राप्त आनन्द के लक्ष्य वहाँ विद्यमान नहीं रहते। यही नहीं, उस परम सत्य में मिथ्या अहंकार तथा तीन गुणों से आच्छादित कोई बद्ध आत्मा नहीं होता। वह सत्य प्रत्येक सीमित अथवा असीमित वस्तु को अपने से अलग करता है। इसलिए जो बुद्धिमान है उसे चाहिए कि भौतिक जीवन की तरंगों को रोक कर परम सत्य के भीतर आनन्द लूटे।

तात्पर्य : भगवान् की मायाशक्ति उन लोगों पर मुक्त होकर अपना प्रभाव दिखाती है, जो दिखावटी, कपटी तथा ईश्वर के नियमों का उल्लंघन करने वाले होते हैं। चूँकि भगवान् सारे भौतिक गुणों से मुक्त हैं, अतएव उनकी उपस्थिति में माया स्वयं भयभीत रहती है। जैसाकि ब्रह्मा ने कहा है—*विलज्जमानया यस्य स्थातुम् ईक्षपतेऽमुया*—माया भगवान् के समक्ष आने में शरमाती है।

परम सत्य में व्यर्थ का बौद्धिक वाद-विवाद नहीं रहता। *श्रीमद्भागवत* (६.४.३१) में कहा गया है—

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै
विवादसंवादभुवो भवन्ति।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने॥

''मैं उन सर्वव्यापी भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जो असीम दिव्य गुणों से युक्त हैं। विभिन्न मतों का विस्तार करने वाले सभी दार्शनिकों के हृदयों के भीतर से वे उन्हें उनकी आत्माओं को भुलवा देते हैं, जो कभी तो एकमत होते हैं और कभी आपस में मतभेद रखते हैं। इस तरह वे इस भौतिक जगत में ऐसी स्थिति ला देते हैं जिसमें वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।''

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्
यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा
हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

परम्—परम; पदम्—पद; वैष्णवम्—भगवान् विष्णु का; आमनन्ति—नामकरण करते हैं; तत्—वह; यत्—जो; न इति न इति—''नेति नेति''; इति—इस प्रकार विश्लेषण करते हुए; अतत्—हर वस्तु बाहरी; उत्सिसृक्षवः—त्यागने के इच्छुक जन; विसृज्य—त्याग कर; दौरात्म्यम्—क्षुद्र भौतिकता; अनन्य—अनन्य; सौहृदाः—उनका स्नेह; हृदा—अपने हृदयों के भीतर; उपगुह्य—उनका आलिंगन करके; अवसितम्—बन्दी बनाया हुआ; समाहितैः—समाधि में उनका ध्यान करने वालों के द्वारा।

जो लोग उन सारी वस्तुओं को बाह्य के निषेध द्वारा त्याग देना चाहते हैं, जो वास्तव में सत्य नहीं है, वे भगवान् विष्णु के परम पद की ओर नियमित रूप से आगे बढ़ते जाते हैं। वे क्षुद्र भौतिकता को त्याग कर अपने हृदयों के भीतर परब्रह्म को ही अपना प्रेम प्रदान करते हैं और स्थिर ध्यान में उस सर्वोच्च सत्य का आलिंगन करते हैं।

तात्पर्य : *यन्नेति नेतीत्युदुत्सिसृक्षवः* पद निषेधात्मक विवेक विधि का सूचक है, जिसके द्वारा परम सत्य की खोज में लगा हुआ व्यक्ति उन सारी बातों का बहिष्कार करता है, जो व्यर्थ, सतही तथा सापेक्ष हैं। संसार-भर में लोगों ने राजनीतिक, सामाजिक और यहाँ तक कि धार्मिक सत्यों की वैधता का धीरे-धीरे परित्याग कर दिया है किन्तु कृष्ण-भावनामृत के अभाव में वे मोहग्रस्त तथा उन्मादी बने रहते हैं। किन्तु यहाँ स्पष्ट कहा गया है—*परं पदं वैष्णवमात्मनन्ति तत्।* जो लोग पूर्ण ज्ञान के इच्छुक हैं, उन्हें न केवल व्यर्थ की वस्तुओं का बहिष्कार करना चाहिए अपितु उन्हें *परं पदं वैष्णवम्* के आध्यात्मिक सत्य को समझना चाहिए। पदम् भगवान् के पद तथा धाम का सूचक है, जिसको वे ही लोग समझ सकते हैं, जो क्षुद्र भौतिकता का परित्याग करते हैं और *अनन्य सौहृदम्*—भगवान् के लिए अनन्य प्रेम पद को ग्रहण करते हैं। ऐसा अनन्य प्रेम संकीर्ण मन वाला या साम्प्रदायिक नहीं होता, क्योंकि सारे जीव भगवान् के भीतर होने से स्वतः सेवित हो जाते हैं जब वे परम पुरुष की सेवा करते हैं। भगवान् तथा सारे जीवों की सर्वोच्च सेवा करने की यह विधि कृष्णभावनामृत का विज्ञान है, जिसकी शिक्षा पूरे *श्रीमद्भागवत* में दी गई है।

त एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत्परमं पदम् ।
अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥ ३३॥

शब्दार्थ

ते—वे; एतत्—यह; अधिगच्छन्ति—जान पाते हैं; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; यत्—जो; परमम्—परम; पदम्—पद; अहम्—मैं; मम—मेरा; इति—इस प्रकार; दौर्जन्यम्—दुर्जनता; न—नहीं है; येषाम्—जिसके लिए; देह—शरीर; गेह—तथा घर; जम्—पर आधारित।

ऐसे भक्त भगवान् विष्णु के परम आध्यात्मिक पद को समझ पाते हैं क्योंकि वे ''मैं'' तथा ''मेरा'' के विचारों से, जो शरीर तथा घर पर आधारित हैं, दूषित नहीं होते।

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

अति-वादान्—अपमानजनक शब्द; तितिक्षेत—सहन करे; न—कभी नहीं; अवमन्येत—अनादर करे; कञ्चन—किसी का; न च—न तो; इमम्—इस; देहम्—भौतिक शरीर; आश्रित्य—पहचान बनाकर; वैरम्—शत्रुता; कुर्वीत—करे; केनचित्—किसी से।

मनुष्य को सारा अपमान सहन कर लेना चाहिए और किसी व्यक्ति के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित करने से चूकना नहीं चाहिए। भौतिक शरीर से पहचान बनाने से बचते हुए मनुष्य को किसी के साथ शत्रुता उत्पन्न नहीं करनी चाहिए।

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
यत्पादाम्बुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; भगवते—भगवान्; तस्मै—उन; कृष्णाय—कृष्ण को; अकुण्ठ-मेधसे—जिनकी शक्ति कभी रुद्ध नहीं होती; यत्—जिनके; पाद-अम्बु-रुह—चरणकमलों पर; ध्यानात्—ध्यान से; संहिताम्—शास्त्र को; अध्यगाम्—मैंने आत्मसात किया है; इमाम्—इस।

मैं अनवरुद्ध भगवान् कृष्ण को नमस्कार करता हूँ। उनके चरणकमलों पर ध्यान धरने से ही मैं इस महान् ग्रंथ का अध्ययन कर सका और इसकी सराहना कर सका।

श्रीशौनक उवाच
पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ।
वेदाश्च कथिता व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शौनकः उवाच—श्री शौनक ऋषि ने कहा; पैल-आदिभिः—पैल तथा अन्यों द्वारा; व्यास-शिष्यैः—श्रील व्यासदेव के शिष्य; वेद-आचार्यैः—वेदों के आदर्श अधिकारियों द्वारा; महा-आत्मभिः—महान् बुद्धि वाले; वेदाः—वेद; च—तथा; कथिताः—कहा गया; व्यस्ताः—विभाजित; एतत्—यह; सौम्य—हे भद्र सूत; अभिधेहि—कृपया कह सुनायें; नः—हमसे।

शौनक ऋषि ने कहा : हे सौम्य सूत, कृपा करके हमें बतलायें कि किस तरह पैल तथा श्रील व्यासदेव के अत्यन्त परम बुद्धिमान शिष्यों ने, जो कि वैदिक विद्या के आदर्श अधिकारी माने जाते हैं, वेदों का प्रवचन तथा सम्पादन किया।

सूत उवाच
समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; समाहित-आत्मनः—जिसका मन पूरी तरह से स्थिर था; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (शौनक); ब्रह्मणः—ब्रह्मा का; परमे-स्थिनः—जीवों में सर्वोच्च; हृदि—हृदय में; आकाशात्—आकाश से; अभूत्—उठी; नादः—दिव्य सूक्ष्म ध्वनि; वृत्ति-रोधात्—कार्य (कानों का) रोकने पर; विभाव्यते—अनुभव किया जाता है।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे ब्राह्मण, दिव्य ध्वनि की प्रथम सूक्ष्म गूँज सर्वश्रेष्ठ ब्रह्माजी के

हृदयरूपी आकाश से प्रकट हुई जिनका मन आध्यात्मिक साक्षात्कार में पूरी तरह स्थिर था। इस सूक्ष्म गूँज का अनुभव कोई भी व्यक्ति कर सकता है जब वह अपनी सारी बाह्य श्रवण-क्रिया को रोक लेता है।

तात्पर्य : चूँकि *श्रीमद्भागवत* सर्वश्रेष्ठ वैदिक ग्रंथ है, अतएव शौनक आदि मुनियों ने इसके स्रोत का पता लगाना चाहा।

यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः ।
द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिस (वेदों के सूक्ष्म रूप) की; उपासनया—पूजा से; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; योगिनः—योगीजन; मलम्—कल्मष के; आत्मनः—हृदय के; द्रव्य—वस्तु; क्रिया—सक्रियता; कारक—तथा कर्ता; आख्यम्—उपाधिवाला; धूत्वा—स्वच्छ करके; यान्ति—प्राप्त करते हैं; अपुनः-भवम्—पुनर्जन्म से छुटकारा।

हे ब्राह्मण, वेदों के इस सूक्ष्म रूप की पूजा द्वारा योगीजन वस्तु की अशुद्धि, क्रिया तथा कर्ता से उत्पन्न सारे कल्मष से अपने हृदयों को स्वच्छ बनाते हैं और इस तरह वे बारम्बार जन्म-मृत्यु से छुटकारा प्राप्त कर लेते हैं।

ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ।
यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

ततः—उससे; अभूत्—उत्पन्न हुआ; त्रि-वृत्—तीन मात्राओं वाला; ॐ-कारः—ॐ अक्षर; यः—जो; अव्यक्त—अप्रकट; प्रभवः—जिसका प्रभाव; स्व-राट्—आत्म-अभिव्यक्ति; यत्—जो; तत्—वह; लिङ्गम्—स्वरूप; भगवतः—भगवान् का; ब्रह्मणः—परब्रह्म का उनके निर्विशेष रूप में; परम-आत्मनः—तथा परमात्मा का।

उस दिव्य सूक्ष्म गूँज से तीन मात्राओं वाला ॐकार उत्पन्न हुआ। ॐकार में अदृश्य शक्तियाँ हैं और यह शुद्ध हृदय के भीतर अपने आप प्रकट होता है। यह परब्रह्म की तीनों अवस्थाओं—भगवान्, परमात्मा तथा परम निर्विशेष सत्य—में उनका स्वरूप है।

शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ।
येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ४० ॥

स्वधाम्नो ब्राह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ।
स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

शृणोति—सुनता है; यः—जो; इमम्—इस; स्फोटम्—अव्यक्त तथा नित्य सूक्ष्म ध्वनि को; सुप्त-श्रोत्रे—जब श्रवणेन्द्रिय सुप्त रहती है; च—तथा; शून्य-दृक्—भौतिक दृष्टि तथा अन्य ऐन्द्रिय कार्यों से विहीन; येन—जसिसे; वाक्—वैदिक ध्वनि का विस्तार; व्यज्यते—विस्तृत किया जाता है; यस्य—जिसका; व्यक्तिः—अभिव्यक्ति; आकाशे—आकाश (हृदय के) में; आत्मनः—आत्मा से; स्व-धाम्नः—जो अपना ही उद्गम है; ब्रह्मणः—परब्रह्म का; साक्षात्—प्रत्यक्ष; वाचकः—

नामसूचक पद; परम-आत्मनः—परमात्मा का; सः—वह; सर्व—सभी; मन्त्र—वैदिक स्तोत्र; उपनिषत्—गुह्य; वेद—वेदों का; बीजम्—बीज; सनातनम्—शाश्वत।

यह ॐकार, जोकि अन्ततः अभौतिक तथा अश्रव्य होता है, उसे परमात्मा कान या कोई अन्य इन्द्रियाँ न होते हुए भी सुनता है। वैदिक ध्वनि का पूरा विस्तार ॐकार से ही हुआ है, जो हृदय के आकाश के भीतर आत्मा से प्रकट होता है। यह स्व-जन्मा परब्रह्म परमात्मा की प्रत्यक्ष उपाधि है और गुह्य सार तथा समस्त वैदिक स्तोत्रों का नित्य बीज है।

तात्पर्य : सोये हुए पुरुष की इन्द्रियाँ तब तक कार्य नहीं करतीं जब तक वह जाग नहीं जाता। इसीलिए जब सोया हुआ पुरुष किसी शोर से जगाया जाता है, तो यह पूछा जा सकता है कि, "शोर किसने सुना?" *सुप्त-श्रोत्रे* शब्द यह सूचित करते हैं कि भगवान् हृदय के भीतर ध्वनि को सुनते हैं और सोये हुए जीव को जगाते हैं। भगवान् की ऐन्द्रिय क्रिया सदैव उच्चतर स्तर पर कार्य करती रहती है। अन्ततः सारी ध्वनियाँ आकाश के भीतर गूँजती हैं और हृदय के भीतर एक प्रकार का आकाश होता है, जो वैदिक ध्वनियों की गूँज के लिए है। समस्त वैदिक ध्वनियों का बीज या स्रोत ॐकार है। इसकी पुष्टि *ॐ इत्येतद् ब्रह्मणो नेदिष्ठं नाम* वैदिक कथन से होती है। वैदिक बीज ध्वनि का पूर्ण विस्तार श्रीमद्भागवत है, जो सबसे बड़ा वैदिक ग्रंथ है।

तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ।
धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस ॐकार के; हि—निस्सन्देह; आसन्—हुए; त्रयः—तीन; वर्णाः—अक्षर की ध्वनियाँ; अ-कार-आद्याः—अ अक्षर से प्रारम्भ करके; भृगु-उद्वह—हे भृगुवंशियों में अत्यन्त प्रसिद्ध; धार्यन्ते—धारण किये जाते हैं; यैः—जिन तीन ध्वनियों से; त्रयः—तीन; भावाः—संसार की स्थितियाँ; गुण—प्रकृति के गुण; नाम—नाम; अर्थ—लक्ष्य; वृत्तयः—तथा चेतना की स्थितियाँ।

ॐकार से अ, उ तथा म वर्णों की तीन मौलिक ध्वनियाँ प्रकट हुईं। हे भृगुवंशियों में प्रसिद्ध, ये तीनों भौतिक जगत के तीन विभिन्न पक्षों को धारण करते हैं जिनमें प्रकृति के तीन गुण ऋक्, यजुर् तथा साम वेदों के नाम से, भूर्, भुवर् तथा स्वर् लोकों के नाम से विख्यात लक्ष्य तथा जागृत, सुप्त एवं सुषुप्त नामक तीन वृत्तियाँ धारण करते हैं।

ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः ।
अन्तस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

ततः—उस ॐकार से; अक्षर—विभिन्न ध्वनियों का; समाम्नायम्—सम्पूर्ण संग्रह (वर्णमाला); असृजत्—उत्पन्न किया; भगवान्—शक्तिमान देवता; अजः—अजन्मा ब्रह्मा; अन्त-स्थ—अर्द्धस्वरों के रूप में; उष्म—उष्म; स्वर—स्वर; स्पर्श—तथा व्यंजन; ह्रस्व-दीर्घ—लघु तथा गुरु रूप; आदि—इत्यादि; लक्षणम्—लक्षणों से युक्त।

ब्रह्मा ने ॐकार से अक्षर की सारी ध्वनियाँ—स्वर, व्यंजन, अर्धस्वर, उष्म, स्पर्श इत्यादि उत्पन्न कीं जो ह्रस्व तथा दीर्घ माप जैसे गुणों से विभेदित की जाती हैं।

तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ।
सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥ ४४॥

शब्दार्थ

तेन—उस ध्वनि समूह से; असौ—उसने; चतुरः—चार; वेदान्—वेदों को; चतुर्भिः—अपने चार; वदनैः—मुखों से; विभुः—सर्वशक्तिमान; स-व्याहृतिकान्—व्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्य नामक सात लोकों के नाम) सहित; स-ओंकारान्—ॐ बीज समेत; चातुः-होत्र—चारों वेदों में से प्रत्येक के पुरोहितों द्वारा सम्पन्न यज्ञ के चार पक्ष; विवक्षया—वर्णन करने की इच्छा से।

सर्वशक्तिमान ब्रह्मा ने ध्वनियों के इस समूह का उपयोग अपने चार मुखों से चार वेदों को उत्पन्न करने के लिए किया जो पवित्र ॐकार तथा सात व्याहृतियों समेत प्रकट हुए। उनका अभीष्ट वैदिक यज्ञ विधि को चार वेदों में से प्रत्येक के पुरोहितों द्वारा सम्पन्न विभिन्न कार्यों तक विस्तार देना था।

पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ।
ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

पुत्रान्—अपने पुत्रों को; अध्यापयत्—पढ़ाया; तान्—उन वेदों को; तु—तथा; ब्रह्म-ऋषीन्—ब्रह्मर्षियों को; ब्रह्म—वैदिक पाठ की कला में; कोविदान्—पटु; ते—वे; तु—यही नहीं; धर्म—धार्मिक अनुष्ठानों में; उपदेष्टारः—शिक्षकों; स्व-पुत्रेभ्यः—अपने पुत्रों को; समादिशन्—प्रदान किया।

ब्रह्मा ने इन वेदों की शिक्षा अपने पुत्रों को दी जो ब्राह्मणों में ब्रह्मर्षि थे और वैदिक वाचन-कला में पटु थे। फिर उन्होंने स्वयं आचार्यों की भूमिका ग्रहण की और अपने-अपने पुत्रों को वेदों की शिक्षा दी।

ते परम्परया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ।
चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

ते—ये वेद; परम्परया—परम्परा से; प्राप्ताः—प्राप्त; तत्-तत्—प्रत्येक अगली पीढ़ी के; शिष्यैः—शिष्यों द्वारा; धृत-व्रतैः—अपने व्रतों में दृढ़; चतुः-युगेषु—चारों युगों में; अथ—तब; व्यस्ताः—विभाजित कर दिये गये; द्वापर-आदौ—द्वापर युग के अन्त में; महा-ऋषिभिः—महान् आचार्यों द्वारा।

इस तरह चतुर्युग के सारे चक्रों में दृढ़व्रत शिष्यों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी ने परम्परा द्वारा इन वेदों को प्राप्त किया। प्रत्येक द्वापर युग के अन्त में इन वेदों को प्रसिद्ध मुनिगण पृथक् विभागों में संपादित करते हैं।

क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ।
वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥ ४७॥

शब्दार्थ

क्षीण-आयुषः—घटी हुई आयु वाले; क्षीण-सत्त्वान्—घटे हुए बल वाले; दुर्मेधान्—अल्पज्ञों को; वीक्ष्य—देख कर; कालतः—काल के प्रभाव से; वेदान्—वेदों को; ब्रह्म-ऋषयः—प्रमुख मुनियों ने; व्यस्यन्—विभाजित कर दिया; हृदि-स्थ—अपने हृदयों के भीतर स्थित; अच्युत—अच्युत भगवान् द्वारा; चोदिताः—प्रेरित।

यह देख कर कि काल के प्रभाव से सामान्यतया लोगों की आयु, शक्ति तथा बुद्धि घटती जा रही है, महामुनियों ने अपने हृदयों में स्थित भगवान् से प्रेरणा ली और वेदों का क्रमबद्ध विभाजन कर दिया।

अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन्भगवाल्लोकभावनः ।
ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥

पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ।
अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

अस्मिन्—इसमें; अपि—भी; अन्तरे—मनु के शासन में; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (शौनक); भगवान्—भगवान्; लोक—ब्रह्माण्ड के; भावनः—रक्षक; ब्रह्म—ब्रह्मा; ईश—शिव; आद्यैः—तथा अन्यों द्वारा; लोक-पालैः—विभिन्न लोकों के शासकों द्वारा; याचितः—प्रार्थना किये जाने पर; धर्म-गुप्तये—धर्म की रक्षा के लिए; पराशरात्—पराशर मुनि से; सत्यवत्याम्—सत्यवती के गर्भ से; अंश—अपने स्वांश (संकर्षण); अंश—अंश (विष्णु) के; कलया—कला के रूप में; विभुः—भगवान्; अवतीर्णः—अवतरित; महा-भाग—हे परम भाग्यवान्; वेदम्—वेदों को; चक्रे—कर दिया; चतुः-विधम्—चार भागों में।

हे ब्राह्मण, वैवस्वत मनु के वर्तमान युग में, ब्रह्मा, शिव इत्यादि ब्रह्माण्ड के नायकों ने समस्त जगतों के रक्षक भगवान् से धर्म के सिद्धान्तों की रक्षा करने के लिए प्रार्थना की। हे परम भाग्यवान शौनक, तब अपने स्वांश के अंश का दैवी स्फुलिंग प्रदर्शित करतेहुए पराशर के पुत्र के रूप में सत्यवती के गर्भ से भगवान् प्रकट हुए। इस रूप में, जिसे कृष्ण द्वैपायन व्यास कहते हैं, उन्होंने एक वेद के चार भाग कर दिये।

ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीरुद्धृत्य वर्गशः ।
चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

ऋक्-अथर्व-यजुः-साम्नाम्—ऋग्, अथर्व, यजुर तथा सामवेद; राशीः—(मंत्रों का) संकलन; उद्धृत्य—विलग करके; वर्गशः—विशिष्ट वर्गों में; चतस्रः—चार; संहिताः—संग्रह; चक्रे—कर दिया; मन्त्रैः—मंत्रों से; मणि-गणाः—मणियों के; इव—सदृश।

श्रील व्यासदेव ने ऋग्, अथर्व, यजुर् तथा साम वेदों के मंत्रों को चार वर्गों में विलग कर दिया जिस तरह मणियों के मिले-जुले संग्रह में से ढेरियाँ लगा दी जाती हैं। इस तरह उन्होंने चार पृथक्-पृथक् वैदिक ग्रंथों की रचना की।

तात्पर्य : जब सर्वप्रथम ब्रह्मा ने अपने चार मुखों से चार वेदों का उच्चारण किया, तो सारे मंत्र

उसी तरह मिले-जुले थे जिस तरह बिना छंटी मणियों के समूह में विभिन्न प्रकार की मणियाँ रहती हैं। श्रील व्यासदेव ने वैदिक मंत्रों को चार विभागों (संहिताओं) में छाँट दिया जो ऋग्, अथर्व, यजुर् तथा साम वेद कहलाये।

तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ।
एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

तासाम्—उन चार संग्रहों के; सः—उसने; चतुरः—चार; शिष्यान्—शिष्यों को; उपाहूय—पास बुलाकर; महा-मतिः—अत्यन्त बुद्धिमान मुनि; एक-एकाम्—एक-एक करके; संहिताम्—संग्रह; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; एक-एकस्मै—उनमें से प्रत्येक को; ददौ—दे दिया; विभुः—शक्तिमान व्यासदेव ने।.

अत्यन्त शक्तिमान तथा बुद्धिमान व्यासदेव ने अपने चार शिष्यों को बुलाया और हे ब्राह्मण, उनमें से हर एक को इन चार संहिताओं में से एक-एक का भार सौंप दिया।

पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यां उवाच ह ।
वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥ ५२ ॥
साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम् ।
अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

पैलाय—पैल को; संहिताम्—संग्रह; आद्याम्—प्रथम (ऋग्वेद का); बहु-ऋच-आख्यम्—बह्वृच नामक; उवाच—कहा; ह—निस्सन्देह; वैशम्पायन-संज्ञाय—वैशम्पायन नामक मुनि को; निगद-आख्यम्—निगद नामक; यजुः-गणम्—यजुर्मंत्रों का संग्रह; साम्नाम्—सामवेद के मंत्रों को; जैमिनये—जैमिनि को; प्राह—कहा; तथा—और; छन्दोग-संहिताम्—छंदोग नामक संहिता; अथर्व-अङ्गिरसीम्—अथर्व तथा अंगिरा मुनियों के नाम पर वेद; नाम—निस्सन्देह; स्व-शिष्याय—अपने शिष्य; सुमन्तवे—सुमन्तु को।.

श्रील व्यासदेव ने प्रथम संहिता ऋग्वेद की शिक्षा पैल को दी और इस संग्रह का नाम बह्वृच रखा। मुनि वैशम्पायन से उन्होंने यजुर्मंत्रों का संग्रह, निगद, का प्रवचन किया। उन्होंने जैमिनि को सामवेद के मंत्रों की शिक्षा दी जिनका नाम छन्दोग संहिता था और अपने प्रिय शिष्य सुमन्तु से उन्होंने अथर्ववेद कहा।

पैलः स्वसंहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः ।
बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥
चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ।
पराशरायाग्निमित्र इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ॥ ५५ ॥
अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम् ।
तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

पैलः—पैल ने; स्व-संहिताम्—अपने संग्रह को; ऊचे—कहा; इन्द्रप्रमितये—इन्द्रप्रमिति से; मुनिः—मुनि; बाष्कलाय—बाष्कल को; च—तथा; सः—उसने (बाष्कल ने); अपि—भी; आह—कहा; शिष्येभ्यः—अपने शिष्यों से; संहिताम्—संग्रह; स्वकाम्—अपना; चतुर्धा—चार भागों में; व्यस्य—विभाजित करके; बोध्याय—बोध्य से; याज्ञवल्क्याय—याज्ञवल्क्य से; भार्गव—हे भृगुवंशी (शौनक); पराशराय—पराशर से; अग्निमित्रे—अग्निमित्र से; इन्द्रप्रमितिः—इन्द्रप्रमिति; आत्म-वान्—आत्मसंयमी; अध्यापयत्—शिक्षा दी; संहिताम्—संग्रह को; स्वाम्—अपने; माण्डूकेयम्—माण्डूकेय से; ऋषिम्—ऋषि; कविम्—विद्वान; तस्य—उसका (माण्डूकेय का); शिष्यः—शिष्य; देवमित्रः—देवमित्र; सौभरि-आदिभ्यः—सौभरि तथा अन्यों से; ऊचिवान्—कहा।

अपनी संहिता को दो भागों में विभक्त करने के बाद विद्वान पैल ने इसे इन्द्रप्रमिति तथा बाष्कल को बताया। हे भार्गव, बाष्कल ने अपने संग्रह को पुनः चार भागों में विभाजित कर दिया और उन्हें अपने चार शिष्यों—बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर तथा अग्निमित्र को पढ़ाया। आत्मसंयमी ऋषि इन्द्रप्रमिति ने अपनी संहिता विद्वान योगी माण्डूकेय को पढ़ाई जिसके शिष्य देवमित्र ने आगे चल कर सौभरि तथा अन्यों को ऋग्वेद के सारे विभाग दे दिये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार माण्डूकेय इन्द्रप्रमिति का पुत्र था जिससे उसने वैदिक ज्ञान प्राप्त किया।

शाकल्यस्तत्सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम् ।
वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७॥

शब्दार्थ

शाकल्यः—शाकल्य; तत्-सुतः—माण्डूकेय का पुत्र; स्वाम्—अपनी; तु—तथा; पञ्चधा—पाँच भागों में; व्यस्य—विभाजित करके; संहिताम्—संहिता का; वात्स्य-मुद्गल-शालीय—वात्स्य, मुद्गल तथा शालीय को; गोखल्य-शिशिरेषु—तथा गोखल्य और शिशिर को; अधात्—दिया।

माण्डूकेय के पुत्र शाकल्य ने अपनी संहिता को पाँच भागों में बाँट दिया और इनमें से प्रत्येक उपविभाग वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य तथा शिशिर को सौंप दिये।

जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ।
बलाकपैलजाबालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

जातूकर्ण्यः—जातूकर्ण्य; च—तथा; तत्-शिष्यः—शाकल्य का शिष्य; स-निरुक्ताम्—कठिन शब्दों की व्याख्या करने वाले शब्द संग्रह के साथ; स्व-संहिताम्—प्राप्त हुए संग्रह को; बलाक-पैल-जाबाल-विरजेभ्यः—बलाक, पैल, जाबाल तथा विरज को; ददौ—दे दिया; मुनिः—मुनि ने।

मुनि जातूकर्ण्य भी शाकल्य का शिष्य था। उसने शाकल्य से प्राप्त संहिता के तीन विभाग किये और उसमें एक चौथा अनुभाग वैदिक शब्द संग्रह (निरुक्त) का जोड़ दिया। उसने इन चारों भागों में से एक-एक विभाग अपने चार शिष्यों—बलाक, द्वितीय पैल, जाबाल तथा विरज को पढ़ाया।

बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम् ।
चक्रे वालायनिर्भज्यः काशारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

बाष्कलिः—बाष्कल का पुत्र बाष्कलि; प्रति-शाखाभ्यः—विभिन्न शाखाओं से; वालखिल्य-आख्य—वालखिल्य शीर्षक वाले; संहिताम्—संग्रह को; चक्रे—बनाया; वालायनिः—वालायनि; भज्यः—भज्य; काशारः—काशार; च—तथा; एव—निस्सन्देह; ताम्—उसको; दधुः—स्वीकार किया।

बाष्कलि ने, ऋग्वेद की समस्त शाखाओं से, वालखिल्य संहिता तैयार की। यह संहिता वालायनि, भज्य तथा काशार को प्राप्त हुई।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार वालायनि, भज्य तथा काशार दैत्य वंश के थे।

बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ।
श्रुत्वैतच्छन्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

बहु-ऋचाः—ऋग्वेद की; संहिताः—संहिताएँ; हि—निस्सन्देह; एताः—ये; एभिः—इन; ब्रह्म-ऋषिभिः—सन्त ब्राह्मणों द्वारा; धृताः—परम्परा से धारण की हुई; श्रुत्वा—सुन कर; एतत्—उनके; छन्दसाम्—पवित्र श्लोकों के; व्यासम्—विभाजन की विधि; सर्व-पापैः—सभी पापों से; प्रमुच्यते—छूट जाता है।

इन सन्त ब्राह्मणों ने ऋग्वेद की इन विविध संहिताओं को शिष्य-परम्परा द्वारा बनाये रखा। वैदिक स्तोत्रों के इस विभाजन को सुनने मात्र से मनुष्य सारे पापों से छूट जाता है।

वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ।
यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहः क्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

वैशम्पायन-शिष्याः—वैशम्पायन के शिष्य; वै—निस्सन्देह; चरक—चरक नाम के; अध्वर्यवः—अथर्ववेद के आचार्य; अभवन्—बने; यत्—क्योंकि; चेरुः—उन्होंने सम्पन्न किया; ब्रह्म-हत्या—ब्राह्मण-वध के कारण; अंहः—पाप का; क्षपणम्—प्रायश्चित्त; स्व-गुरोः—अपने ही गुरु के लिए; व्रतम्—व्रत।

वैशम्पायन के शिष्य अथर्ववेद के आचार्य बने। वे चरक कहलाते थे क्योंकि उन्होंने अपने गुरु को ब्राह्मण-हत्या के पाप से मुक्त कराने के लिए कठिन व्रत किए थे।

याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत् ।
चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

याज्ञवल्क्यः—याज्ञवल्क्य; च—तथा; तत्-शिष्यः—वैशम्पायन का शिष्य; आह—कहा; अहो—जरा देखो; भगवन्—हे प्रभु; कियत्—कितना; चरितेन—प्रयत्न से; अल्प-साराणाम्—इन निर्बल व्यक्तियों के; चरिष्ये—पूरा करूँगा; अहम्—मैं; सु-दुश्चरम्—जिसे पूरा कर पाना अत्यन्त कठिन है।

एक बार वैशम्पायन के एक शिष्य याज्ञवल्क्य ने कहा ''हे प्रभु, आपके इन निर्बल शिष्यों के दुर्बल प्रयासों से कितना लाभ प्राप्त किया जा सकता है? मैं स्वयं कुछ अद्वितीय

तपस्या करूँगा।

इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ।
विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; गुरुः—उसके गुरु ने; अपि—भी; आह—कहा; कुपितः—क्रुद्ध; याहि—चले जाओ; अलम्—बहुत हुआ; त्वया—तुमसे; विप्र-अवमन्त्रा—ब्राह्मणों का अपमान करने वाले; शिष्येण—ऐसे शिष्य से; मत्-अधीतम्—मेरे द्वारा जो पढ़ाया गया; त्यज—त्याग दो; आशु—तुरन्त; इति—इस प्रकार।

ऐसा कहे जाने पर गुरु वैशम्पायन क्रुद्ध हो उठे और कहा : ''यहाँ से निकल जाओ! अरे ब्राह्मणों का अपमान करने वाले शिष्य! बहुत हो चुका। तुम तुरन्त ही वह सब लौटा दो जो मैंने तुम्हें पढ़ाया है।''

तात्पर्य : वैशम्पायन इसलिए क्रुद्ध थे क्योंकि उनका एक शिष्य याज्ञवल्क्य अन्य शिष्यों का अपमान कर रहा था, जो योग्य ब्राह्मण थे। जिस तरह पिता अपने एक पुत्र द्वारा अन्य पुत्रों के साथ दुर्व्यवहार होते देख कर विक्षुब्ध हो उठता है उसी तरह यदि कोई घमंडी शिष्य गुरु के अन्य शिष्यों का अपमान करता है या दुर्व्यवहार करता है, तो गुरु अत्यन्त क्रुद्ध हो जाता है।

देवरातसुतः सोऽपि छर्दित्वा यजुषां गणम् ।
ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥
यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाददुः ।
तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ

देवरात-सुतः—देवरात का पुत्र (याज्ञवल्क्य); सः—वह; अपि—निस्सन्देह; छर्दित्वा—उगलते हुए; यजुषाम्—यजुर्वेद के; गणम्—संचित मंत्र; ततः—वहाँ से; गतः—चला गया; अथ—तब; मुनयः—मुनियों ने; ददृशुः—देखा; तान्—उन; यजुः-गणान्—यजुर्मंत्रों को; यजूंषि—ये यजुः; तित्तिराः—तीतर; भूत्वा—बन कर; तत्—उन मंत्रों के लिए; लोलुपतया—ललचाई इच्छा से; आददुः—उन्हें चुग लिया; तैत्तिरीयाः—तैत्तिरीय नाम से; इति—इस प्रकार; यजुः-शाखाः—यजुर्वेद की शाखाएँ; आसन्—बनीं; सु-पेशलाः—अत्यन्त सुन्दर।

तब देवरात पुत्र याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद के मंत्र उगल दिए और वहाँ से चला गया। इन यजुर्मंत्रों को ललचाई दृष्टि से देख रहे एकत्र शिष्यों ने तीतरों का रूप धारण करके उन्हें चुग लिया। इसलिए यजुर्वेद के ये विभाग अत्यन्त सुन्दर तैत्तिरीय संहिता अर्थात् तीतरों द्वारा संकलित मंत्र के नाम से विख्यात हुए।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार वमन की हुई वस्तु को एकत्र करना ब्राह्मणों के लिए अनुचित है, इसीलिए वैशम्पायन के ब्राह्मण शिष्यों ने तित्तरों का रूप धारण किया और बहुमूल्य मंत्रों का संग्रह किया।

याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मंश्छन्दांस्यधि गवेषयन् ।
गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ

याज्ञवल्क्यः—याज्ञवल्क्य; ततः—तत्पश्चात्; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; छन्दांसि—मंत्रों; अधि—अतिरिक्त; गवेषयन्—ढूँढते हुए; गुरोः—अपने गुरु के; अविद्यमानानि—अज्ञात; सु-उपतस्थे—सावधानी से पूजा की; अर्कम्—सूर्य की; ईश्वरम्—शक्तिमान नियन्ता।

हे ब्राह्मण शौनक, तब याज्ञवाल्क्य ने ऐसे नवीन यजुर्मंत्रों की खोज करनी चाही जो उसके गुरु को भी ज्ञात न हों। इसे मन में रख कर उसने शक्तिशाली सूर्य देव की ध्यानपूर्वक पूजा की।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

ॐ नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण काल स्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाव्यवधीयमानो भवानेक
एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादान विसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ।

शब्दार्थ

श्री-याज्ञवल्क्यः उवाच—श्री याज्ञवल्क्य ने कहा; ॐ नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; भगवते—भगवान् को; आदित्याय—सूर्य देव के रूप में प्रकट होने वाले; अखिल-जगताम्—सम्पूर्ण लोकों के; आत्म-स्वरूपेण—परमात्मा के रूप में; काल-स्वरूपेण—काल के रूप में; चतुः-विध—चार प्रकार के; भूत-निकायानाम्—समस्त जीवों के; ब्रह्म-आदि—ब्रह्मा इत्यादि; स्तम्ब-पर्यन्तानाम्—तथा घास की पत्ती तक; अन्तः-हृदयेषु—उनके हृदयों के रिक्त स्थानों में; बहिः—बाह्य रूप से; अपि—भी; च—तथा; आकाशः इव—आकाश की तरह; उपाधिना—उपाधियों से; अव्यवधीयमानः—आच्छादित न होकर; भवान्—आप; एकः—एकमात्र; एव—निस्सन्देह; क्षण-लव-निमेष—क्षण, लव तथा निमेष (समय के सूक्ष्मतम खंड); अवयव—इन खंडों से; उपचित—एकसाथ संकलित; संवत्सर-गणेन—वर्षों तक; अपाम्—जल के; आदान—निकाल लेने से; विसर्गाभ्याम्—तथा देने से; इमाम्—इस; लोक—ब्रह्माण्ड का; यात्राम्—पालन; अनुवहति—वहन करता है।

श्री याज्ञवल्क्य ने कहा : मैं सूर्य देव के रूप में प्रकट भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ। आप चार प्रकार के जीवों के जिनमें ब्रह्मा से लेकर घास की पत्ती तक सम्मिलित हैं, नियन्ता के रूप में उपस्थित हैं। जिस तरह आकाश हर जीव के भीतर तथा बाहर विद्यमान रहता है, उसी तरह आप परमात्मा रूप में सभी के हृदयों के भीतर तथा काल रूप में उनके बाहर उपस्थित रहते हैं। जिस तरह आकाश उसमें विद्यमान बादलों से आच्छादित नहीं हो सकता उसी तरह आप मिथ्या भौतिक उपाधि से कभी प्रच्छन्न नहीं होते। एक वर्ष क्षण, लव तथा निमेष जैसे लघु काल-खण्डों से बना है और वर्षों के प्रवाह से आप जल को सुखा कर तथा पुनः उसे वर्षा के रूप में जगत को प्रदान करके, उसका अकेले ही पालन-पोषण करते हैं।

तात्पर्य : यह स्तुति स्वतंत्र रूप से सूर्य देव को अर्पित नहीं है अपितु भगवान् को अर्पित है जिन्हें उनके शक्तिमान अंश, सूर्य देव, द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

यदु ह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहर्
अहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिन बीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपन
मण्डलम्. ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; उ ह वाव—निस्सन्देह; विबुध-ऋषभ—हे देवताओं के प्रधान; सवितः—हे सूर्य देव; अदः—वह; तपति—चमकता है; अनुसवनम्—दिन की हर संधि पर (सूर्योदय, दोपहर तथा सूर्यास्त पर); अहः अहः—प्रतिदिन; आम्नाय-विधिना—शिष्य-परम्परा से प्राप्त वैदिक मार्ग द्वारा; उपतिष्ठमानानाम्—स्तुति करने वालों का; अखिल-दुरित—सारे पापकर्म; वृजिन—मिलने वाले कष्ट; बीज—तथा उसके मूल बीज; अवभर्जन—हे जलाने वाले; भगवतः—परम नियन्ता का; समभिधीमहि—मैं पूरे मनोयोग से ध्यान करता हूँ; तपन—हे तपने वाले; मण्डलम्—गोले पर।

हे चमकने वाले, हे शक्तिमान सूर्य देव, आप सारे देवताओं में प्रमुख हैं। मैं आपके तेज मण्डल का मनोयोग से ध्यान करता हूँ क्योंकि जो कोई परम्परा से प्राप्त वैदिक विधि द्वारा प्रतिदिन आपकी तीन बार स्तुति करता है, उसके सारे पापकर्मों, सारे परवर्ती कष्टों तथाइच्छा के मूल बीज तक को आप जला देते हैं।

य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रियासु गणाननात्मनः स्वयमात्मान्तर्यामी
प्रचोदयति. ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; इह—इस जगत में; वाव—निस्सन्देह; स्थिर-चर-निकराणाम्—समस्त जड़ तथा चेतन जीवों के; निज-निकेतनानाम्—जो आपकी शरण पर निर्भर हैं; मनः-इन्द्रिय-असु-गणान्—मन, इन्द्रियाँ तथा प्राण; अनात्मनः—जो जड़ पदार्थ हैं; स्वयम्—स्वयं; आत्म—उनके हृदयों में; अन्तः-यामी—अन्तर में निवास करने वाले प्रभु; प्रचोदयति—कर्म के लिए प्रेरित करता है।

आप उन समस्त जड़ तथा चेतन जीवों के हृदयों में अन्तर्यामी प्रभु के रूप में उपस्थित रहते हैं, जो पूरी तरह आपकी शरण पर आश्रित हैं। निस्सन्देह आप उनके मनों, इन्द्रियों तथा प्राणों को कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं।

य एवेमं लोकमतिकरालवदनान्धकारसंज्ञाजगरग्रह गिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया
परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्तयति. ॥ ७० ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एव—एकमात्र; इमम्—इस; लोकम्—जगत को; अति-कराल—अत्यन्त भयावना; वदन—जिसका मुँह; अन्धकार-संज्ञा—अंधकार कहलाने वाला; अजगर—अजगर द्वारा; ग्रह—पकड़ा हुआ; गिलितम्—तथा निगला हुआ; मृतकम्—मृत; इव—मानो; विचेतनम्—अचेत; अवलोक्य—देख कर; अनुकम्पया—दयापूर्वक; परम-कारुणिकः—अत्यन्त करुणामय; ईक्षया—दृष्टि फेर कर; एव—निस्सन्देह; उत्थाप्य—उन्हें उठाकर; अहः अहः—दिन-प्रतदिनि; अनु-सवनम्—दिन की तीन संधियों पर; श्रेयसि—परम लाभ में; स्व-धर्म-आख्य—आत्मा का उचित कर्म के रूप में विख्यात; आत्म-अवस्थाने—आध्यात्मिक जीवन के प्रति झुकाव में; प्रवर्तयति—लग जाता है।

यह संसार अंधकार रूपी अजगर के विकराल मुख में पड़ कर निगला जा चुका है और इस तरह अचेत है, मानो मृत है। किन्तु आप संसार के सोते हुए लोगों पर कृपापूर्ण दृष्टि फेरते हुए, अपनी दृष्टि के उपहार से उन्हें जगाते हैं। इस तरह आप सर्वाधिक करुणाकर हैं।

प्रतिदिन तीनों पवित्र संधियों पर आप पुण्यात्माओं को परम श्रेयस मार्ग में लगाते हैं और उन्हें धार्मिक कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं जिससे वे आध्यात्मिक पद को प्राप्त होते हैं।

तात्पर्य : वैदिक संस्कृति के अनुसार समाज के तीन उच्च वर्ण (बौद्धिक, राजनीतिक तथा व्यापारी वर्ग) दीक्षा के द्वारा गुरु से सम्बन्धित होते हैं और वे गायत्री मंत्र प्राप्त करते हैं। यह शुद्ध बनाने वाला मंत्र दिन में तीन बार—सूर्योदय, दोपहर तथा सूर्यास्त के समय—पढ़ा जाता है। आध्यात्मिक कर्मों को करने के लिए शुभ मुहूर्त की गणना आकाश में सूर्य के मार्ग के अनुसार की जाती है और यहाँ पर आध्यात्मिक कर्मों की इस सुव्यवस्था का श्रेय ईश्वर के प्रतिनिधि स्वरूप सूर्य को दिया गया है।

अवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति परित आशापालैस् तत्र तत्र
कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः. ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ

अवनि-पतिः—राजा; इव—सदृश; असाधूनाम्—अपवित्र लोगों के; भयम्—भय; उदीरयन्—उत्पन्न करते हुए; अटति—इधर-उधर विचरण करता है; परितः—चारों ओर; आशा-पालैः—दिशाओं के अधिष्ठाता देवों द्वारा; तत्र तत्र—वहाँ वहाँ; कमल-कोश—कमल के फूल पकड़े हुए; अञ्जलिभिः—अंजुलियों से; उपहृत—भेंट की गई; अर्हणः—भेंटें।

आप पृथ्वी के राजा की ही तरह सर्वत्र विचरण करते हुए असाधुओं के बीच भय फैलाते हैं और दिशाओं के शक्तिमान देव हाथ जोड़ कर आपको कमल के फूल तथा अन्य आदरपूर्ण भेंटे प्रदान करते हैं।

अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिरभिवन्दितमहमयातयामयजुष्काम
उपसरामीति. ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ

अथ—इस प्रकार; ह—निस्सन्देह; भगवन्—हे प्रभु; तव—तुम्हारा; चरण-नलिन-युगलम्—दो चरणकमल; त्रि-भुवन—तीन लोकों के; गुरुभिः—गुरुओं द्वारा; अभिवन्दितम्—सम्मानित; अहम्—मैं; अयात-याम—अन्य किसी से अज्ञात; यजुः-कामः—यजुर्मंत्र पाने के लिए इच्छुक; उपसरामि—पूजा के साथ निकट आ रहा हूँ; इति—इस प्रकार।

इसलिए हे प्रभु, मैं आपकी स्तुति करते हुए आप के उन चरणों तक पहुँचना चाहता हूँ जिनका सम्मान तीनों लोकों के आध्यात्मिक स्वामी करते हैं क्योंकि मैं आप से यजुर्वेद के उन मंत्रों को पाने के लिए आशान्वित हूँ जो अन्य किसी को ज्ञात नहीं हैं।

सूत उवाच

एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूपधरो रविः ।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; स्तुतः—स्तुति किये गये; सः—उसने; भगवान्—शक्तिशाली देवता; वाजि-रूप—घोड़े के रूप में; धरः—धारण करके; रविः—सूर्य देव; यजूंषि—यजुर्मंत्र; अयात-यामानि—अन्य किसी मर्त्य प्राणी से कुछ सीखा नहीं गया; मुनये—मुनि को; अदात्—प्रस्तुत किया; प्रसादितः—प्रसन्न होकर।

सूत गोस्वामी ने कहा : ऐसी स्तुति से प्रसन्न होकर शक्तिशाली सूर्य देव ने घोड़े का रूप धारण कर लिया और याज्ञवल्क्य मुनि को वे यजुर्मंत्र प्रदान किये जो मानव समाज में पहले अज्ञात थे।

यजुर्भिरकरोच्छाखा दश पञ्च शतैर्विभुः ।
जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यन्दिनादयः ॥ ७४॥

शब्दार्थ

यजुर्भिः—यजुर्मंत्रों से; अकरोत्—बनायी; शाखाः—शाखाएँ; दश—दस; पञ्च—तथा पाँच; शतैः—सैकड़ों में; विभुः—शक्तिमान; जगृहुः—उन्होंने स्वीकार किया; वाज-सन्यः—घोड़े के अयाल से उत्पन्न अतः वाजसनेयी नाम से विख्यात; ताः—उनको; काण्व-माध्यन्दिन-आदयः—काण्व तथा अध्यन्दिन आदि ऋषियों के शिष्य।

यजुर्वेद के इन सैकड़ों मंत्रों से शक्तिशाली मुनि ने वैदिक वाङ्मय की पन्द्रह नवीन शाखाएँ बनाईं। ये वाजसनेयि संहिता के नाम से विख्यात हुईं क्योंकि वे घोड़े के अयालों से उत्पन्न हुई थीं और इन्हें काण्व, माध्यन्दिन तथा अन्य ऋषियों के अनुयायियों ने शिष्य-परम्परा में स्वीकार कर लिया।

जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमन्तुस्तनयो मुनिः ।
सुत्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५॥

शब्दार्थ

जैमिनेः—जैमिनि के; साम-गस्य—सामवेद का गवैया; आसीत्—था; सुमन्तुः—सुमन्तु; तनयः—पुत्र; मुनिः—मुनि (जैमिनि) के; सुत्वान्—सुत्वान; तु—तथा; तत्-सुतः—सुमन्तु का पुत्र; ताभ्याम्—उनमें से प्रत्येक को; एक-एकाम्—दो हिस्सों में से एक-एक नाम; प्राह—वह बोला; संहिताम्—संकलन।

सामवेद के अधिकारी जैमिनि ऋषि के सुमन्तु नाम का पुत्र था और सुमन्तु का पुत्र सुत्वान था। जैमिनि मुनि ने उनमें से हर एक को सामवेद संहिता के विभिन्न अंग सुनाये।

सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ।
सहस्रसंहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विज ॥ ७६॥

हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यञ्जिश्च सुकर्मणः ।
शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवन्त्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७॥

शब्दार्थ

सुकर्मा—सुकर्मा; च—तथा; अपि—निस्सन्देह; तत्-शिष्यः—जैमिनि शिष्य; साम-वेद-तरोः—सामवेद रूपी वृक्ष के; महान्—महान् चिन्तक; सहस्र-संहिता—एक हजार संग्रहों का; भेदम्—एक भाग; चक्रे—बनाया; साम्नाम्—साम मंत्रों का; ततः—और तब; द्विज—हे ब्राह्मण (शौनक); हिरण्यनाभः कौशल्यः—कुशलपुत्र हिरण्यनाभ; पौष्यञ्जिः—पौष्यञ्जि;

च—तथा; सुकर्मणः—सुकर्मा के; शिष्यौ—दो शिष्य; जगृहतुः—ले लिया; च—तथा; अन्यः—दूसरा; आवन्त्यः—आवन्त्य; ब्रह्म-वित्-तमः—परब्रह्म के ज्ञान में पूर्णतया स्वरूपसिद्ध।

जैमिनि का दूसरा शिष्य सुकर्मा महान् पंडित था। उसने सामवेद रूपी विशाल वृक्ष को एक हजार संहिताओं में बाँट दिया। तब हे ब्राह्मण, सुकर्मा के तीन शिष्यों—कुशलपुत्र हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि तथा आध्यात्मिक साक्षात्कार में अग्रणी आवन्त्य—ने साम मंत्रों का भार सँभाला।

उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पञ्चशतानि वै ।
पौष्यञ्ज्यावन्त्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ

उदीच्याः—उत्तर दिशा के सम्बद्ध; साम-गाः—सामवेद का गायक; शिष्याः—शिष्य; आसन्—थे; पञ्च-शतानि—पाँच सौ; वै—निस्सन्देह; पौष्यञ्जि-आवन्त्ययोः—पौष्यञ्जि तथा आवन्त्य के; च—तथा; अपि—निस्सन्देह; तान्—उनको; च—भी; प्राच्यान्—पूर्व के रहने वाले; प्रचक्षते—कहलाते हैं।

पौष्यञ्जि तथा आवन्त्य के ५०० शिष्य सामवेद के उदीच्य गायक के नाम से प्रसिद्ध हुए और बाद में उनमें से कुछ तो प्राच्य गायक भी कहलाने लगे।

लौगाक्षिर्माङ्गलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च ।
पौष्यञ्जिसिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥ ७९ ॥

शब्दार्थ

लौगाक्षिः माङ्गलिः कुल्यः—लौगाक्षि, मांगलि तथा कुल्य; कुशीदः कुक्षिः—कुशीद तथा कुक्षि; एव—निस्सन्देह; च—भी; पौष्यञ्जि-शिष्याः—पौष्यञ्जि के शिष्यों ने; जगृहुः—ले लिया; संहिताः—संग्रह; ते—वे; शतम् शतम्—प्रत्येक ने एक-एक सौ।

पौष्यञ्जि के पाँच अन्य शिष्यों, लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुशीद तथा कुक्षि में से हर एक को एक-एक सौ संहिताएँ मिलीं।

कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशति संहिताः ।
शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥

शब्दार्थ

कृतः—कृत; हिरण्यनाभस्य—हिरण्यनाभ के; चतुः-विंशति—चौबीस; संहिताः—संग्रह; शिष्यः—शिष्य; ऊचे—बोला; स्व-शिष्येभ्यः—अपने शिष्यों से; शेषाः—शेष (संग्रह); आवन्त्यः—आवन्त्य; आत्म-वान्—आत्मसंयमी।

हिरण्यनाभ के शिष्य कृत ने अपने शिष्यों से चौबीस संहिताएँ कहीं और शेष संहिताएँ स्वरूपसिद्ध मुनि आवन्त्य द्वारा आगे चलाई गईं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कंध के अन्तर्गत "महाराज परीक्षित का निधन" नामक छठे अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सात

पौराणिक साहित्य

इस अध्याय में श्री सूत गोस्वामी अथर्ववेद की शाखाओं के विस्तार, पुराणों के संकलनकर्ताओं का नामोल्लेख तथा पुराणों के लक्षणों का वर्णन करते हैं। तत्पश्चात् वे अठारह प्रमुख पुराणों की सूची देते हैं और यह कह कर अपना वर्णन समाप्त करते हैं कि जो कोई शिष्य-परम्परा प्राप्त व्यक्ति से इन विषयों को सुनता है उसे आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है।

सूत उवाच
अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् ।
संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; अथर्व-वित्—अथर्ववेद का ज्ञाता; सुमन्तुः—सुमन्तु; च—तथा; शिष्यम्—अपने शिष्य को; अध्यापयत्—शिक्षा दी; स्वकाम्—अपनी; संहिताम्—संहिता; सः—उसने, सुमन्तु के शिष्यने; अपि—भी; पथ्याय—पथ्य को; वेददर्शाय—वेददर्श का; च—तथा; उक्तवान्—कहा।

सूत गोस्वामी ने कहा : अथर्ववेद के विशेषज्ञ, सुमन्तु ऋषि, ने अपनी संहिता अपने शिष्य कबन्ध को पढ़ाई जिसने इसे पथ्य और वेददर्श से कहा।

तात्पर्य : विष्णु पुराण में पुष्टि हुई है—

अथर्ववेदं स मुनिः सुमन्तुरमितद्युतिः ।
शिष्यमध्यापयामास कबन्धं सोऽपि च द्विधा ।
कृत्वा तु वेददर्शाय तथा पथ्याय दत्तवान् ॥

"अमित द्युति वाले मुनि सुमन्तु ने अपने शिष्य कबन्ध को अथर्ववेद पढ़ाया। कबन्ध ने इसके दो भाग कर दिये और उन्हें वेददर्श तथा पथ्य को दे दिया।"

शौक्लायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ।
वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ।
कुमुदः शुनको ब्रह्मन्जाजलिश्चाप्यथर्ववित् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

शौक्लायनिः ब्रह्मबलिः—शौक्लायनि तथा ब्रह्मबलि; मोदोषः पिप्पलायनिः—मोदोष तथा पिप्पलायनि; वेददर्शस्य—वेददर्श के; शिष्याः—शिष्य; ते—वे; पथ्य-शिष्यान्—पथ्य के शिष्य; अथो—और भी; शृणु—सुनो; कुमुदः शुनकः—कुमुद तथा शुनक; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण, शौनक; जाजलिः—जाजलि; च—तथा; अपि—भी; अथर्व-वित्—अथर्ववेद के ज्ञाता।

शौक्लायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष तथा पिप्पलायनि वेददर्श के शिष्य थे। मुझसे पथ्य के भी शिष्यों के नाम सुनो। हे ब्राह्मण, वे हैं—कुमुद, शुनक तथा जाजलि। वे सभी अथर्ववेद को अच्छी तरह जानते थे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार वेददर्श ने अथर्ववेद के अपने संस्करण को चार

भागों में विभाजित करके उन्हें अपने चार शिष्यों को पढ़ाया। पथ्य ने अपने संस्करण के तीन भाग किये और यहाँ पर उल्लिखित तीन शिष्यों को उनकी शिक्षा दी।

बभ्रुः शिष्योऽथाङ्गिरसः सैन्धवायन एव च ।
अधीयेतां संहिते द्वे सावर्णाद्यास्तथापरे ॥ ३॥

शब्दार्थ

बभ्रुः—बभ्रु; शिष्यः—शिष्य; अथ—तब; अङ्गिरसः—शुनक (जो अंगिरा भी कहलाते हैं) का; सैन्धवायनः—सैधवायन; एव—निस्सन्देह; च—भी; अधीयेताम्—उन्होंने सीखा; संहिते—संहिताएँ; द्वे—दो; सावर्ण—सावर्ण; आद्याः—इत्यादि; तथा—उसी तरह; अपरे—अन्य शिष्यों ने।

बभ्रु तथा सैधवायन नामक शुनक के शिष्यों ने अपने गुरु द्वारा संकलित अथर्ववेद के दो भागों का अध्ययन किया। सैन्धवायन के शिष्य सावर्ण तथा अन्य ऋषियों के शिष्यों ने भी अथर्ववेद के इस संस्करण का अध्ययन किया।

नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपाङ्गिरसादयः ।
एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ॥ ४॥

शब्दार्थ

नक्षत्रकल्पः—नक्षत्रकल्प; शान्तिः—शान्तिकल्प; च—भी; कश्यप-आङ्गिरस-आदयः—कश्यप, आंगिरस तथा अन्य; एते—ये; आथर्वण-आचार्याः—अथर्ववेद के गुरु; शृणु—सुनो; पौराणिकान्—पुराणों के विद्वान; मुने—शौनक।

नक्षत्रकल्प, शान्तिकल्प, कश्यप, आंगिरस तथा अन्य लोग भी अथर्ववेद के आचार्यों में से थे। हे मुनि, अब पौराणिक साहित्य के विद्वानों के नाम सुनो।

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रनः ।
वैशम्पायनहारीतौ षड्वै पौराणिका इमे ॥ ५॥

शब्दार्थ

त्रय्यारुणिः कश्यपः च—त्रय्यारुणि तथा कश्यप; सावर्णिः अकृत-व्रणः—सावर्णि तथा अकृतव्रण; वैशम्पायन-हारीतौ—वैशम्पायन तथा हारीत; षट्—छः; वै—निस्सन्देह; पौराणिकाः—पुराणों के आचार्य; इमे-ये।

त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन तथा हारीत—ये छः पुराणों के आचार्य हैं।

अधीयन्त व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् ।
एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६॥

शब्दार्थ

अधीयन्त—उन्होंने सीखा; व्यास-शिष्यात्—व्यासदेव के शिष्य (रोमहर्षण) से; संहिताम्—पुराणों के संग्रह; मत्-पितुः—मेरे पिता के; मुखात्—मुख से; एक-एकाम्—हर एक ने एक अंश सीखा; अहम्—मैंने; एतेषाम्—इनमें से; शिष्यः—शिष्य; सर्वाः—सारे संग्रह; समध्यगाम्—पूरी तरह सीखा।

इनमें से प्रत्येक ने मेरे पिता रोमहर्षण से जोकि श्रील व्यासदेव के शिष्य थे, पुराणों की छहों संहिताओं को पढ़ा। मैं इन छहो आचार्यों का शिष्य बन गया और मैंने इस पौराणिक ज्ञान का भलीभाँति प्रस्तुतिकरण सीखा।

कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रनः ।
अधीमहि व्यासशिष्याच्चत्वारो मूलसंहिताः ॥ ७॥

शब्दार्थ

कश्यपः—कश्यप; अहम्—मैं; च—तथा; सावर्णिः—तथा सावर्णि; राम-शिष्यः—राम के शिष्य; अकृत्व्रणः—अकृतव्रण; अधीमहि—हमने आत्मसात किया; व्यास-शिष्यात्—व्यास के शिष्य (रोमहर्षण) से; चत्वारः—चार; मूल-संहिताः—मूल संहिताएँ।

वेदव्यास के शिष्य रोमहर्षण ने पुराणों को चार मूल संहिताओं में विभाजित कर दिया। मुनि कश्यप तथा मैंने सावर्णि तथा राम के शिष्य अकृतव्रण के साथ-साथ इन चारों संहिताओं को सीखा।

पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ।
शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८॥

शब्दार्थ

पुराण-लक्षणम्—पुराण के लक्षण; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण, शौनक; ब्रह्म-ऋषिभिः—परम विद्वान ब्राह्मणों द्वारा; निरूपितम्—सुनिश्चित; शृणुष्व—सुनो; बुद्धिम्—बुद्धि पर; आश्रित्य—आश्रित होकर; वेद-शास्त्र—वैदिक शास्त्रों के; अनुसारतः—अनुसार।

हे शौनक, तुम ध्यान से पुराण के लक्षण सुनो जिनकी परिभाषा अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वान ब्राह्मणों ने वैदिक साहित्य के अनुसार दी है।

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षान्तराणि च ।
वंशो वंशानुचरीतं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९॥
दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ।
केचित्पञ्चविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥ १०॥

शब्दार्थ

सर्गः—सृष्टि; अस्य—इस ब्रह्माण्ड की; अथ—तब; विसर्गः—गौण सृष्टि; च—तथा; वृत्ति—पालन; रक्षा—सुरक्षा; अन्तराणि—मनुओं के शासन; च—तथा; वंशः—महान् राजाओं के वंश; वंश-अनुचरितम्—उनके कार्यों का वर्णन; संस्था—प्रलय; हेतुः—(भौतिक कार्यों में जीवों के लगने का) कारण; अपाश्रयः—परम शरण; दशभिः—दस; लक्षणैः—लक्षणों से; युक्तम्—युक्त; पुराणम्—पुराण को; तत्—इस विषय का; विदः—विद्वान; विदुः—जानते हैं; केचित्—कुछ विद्वान; पञ्च-विधम्—पाँच प्रकार के; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; महत्—महान्; अल्प—तथा छोटे के; व्यवस्थया—अन्तर के अनुसार।

हे ब्राह्मण, इस विषय के विद्वान, पुराण के दस लक्षण बतलाते हैं—इस ब्रह्माण्ड की

सृष्टि (सर्ग), तत्पश्चात् लोकों तथा जीवों की सृष्टि (विसर्ग), सारे जीवों का पालन-पोषण (वृत्ति), उनका भरण (रक्षा), विभिन्न मनुओं के शासन (अन्तराणि), महान् राजाओं के वंश (वंश), ऐसे राजाओं के कार्यकलाप (वंशानुचरित), संहार (संस्था), कारण (हेतु) तथा परम आश्रय (अपाश्रय)। अन्य विद्वानों का कहना है कि महापुराणों में इन्हीं दस का वर्णन रहता है, जबकि छोटे पुराणों में केवल पाँच का।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* के द्वितीय स्कन्ध (२.१०.१) में भी महापुराण के दस विषयों का वर्णन हुआ है—

श्रीशुक उवाच
अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥

''श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : *श्रीमद्भागवत* में निम्नलिखित के विषय में दस प्रकार के कथन हैं : ब्रह्माण्ड की सृष्टि, उपसर्ग, लोक, भगवान् द्वारा सुरक्षा, सृजनात्मक प्रेरणा, मनुओं का परिवर्तन, ईश-विज्ञान, भगवद्धाम को वापसी, मोक्ष तथा परम आश्रय।''

श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार *श्रीमद्भागवत* जैसे पुराणों में इन दस विषयों का वर्णन रहता है, जबकि छोटे पुराणों में केवल पाँच विषयों का। वैदिक वाङ्मय में कहा गया है—

सर्गश्च परिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पंचलक्षणम्॥

''सृष्टि, गौण सृष्टि, राजवंश, मनुओं के राज्य तथा विविध वंशों के कार्यकलाप—ये पुराण के पाँच लक्षण हैं।'' जिन पुराणों में पाँच प्रकार का ज्ञान रहता है, उन्हें गौण पौराणिक साहित्य कहते हैं।

श्रील जीव गोस्वामी ने बतलाया है कि *श्रीमद्भागवत* के दस मुख्य विषय बारह स्कन्धों में से प्रत्येक स्कन्ध में पाये जाते हैं। किसी एक स्कन्ध के लिए किसी एक विषय को निर्धारित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। न ही *श्रीमद्भागवत* की कृत्रिम विवेचना करके यह दिखाने का प्रयास करना चाहिए कि इन विषयों का एक के बाद एक वर्णन हुआ है। सीधी-सी बात यह है कि ज्ञान के सारे पक्ष जो मनुष्यों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और जिनका सार ऊपर लिखी दस श्रेणियों में दिया गया है, *श्रीमद्भागवत* में विभिन्न बल और विश्लेषण सहित सर्वत्र पाये जाते हैं।

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ।
भूतसूक्ष्मेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अव्याकृत—प्रकृति की अव्यक्त अवस्था; गुण-क्षोभात्—गुणों के क्षोभ से; महतः—महत् तत्त्व से; त्रि-वृतः—तीन प्रकार का; अहमः—मिथ्या अहंकार से; भूत-सूक्ष्म—अनुभूति के सूक्ष्म रूपों की; इन्द्रिय—इन्द्रियों की; अर्थानाम्—तथा इन्द्रिय-विषयों की; सम्भवः—उत्पत्ति; सर्गः—सृष्टि; उच्यते—कहलाती है।

अव्यक्त प्रकृति के भीतर मूल गुणों के क्षोभ से महत् तत्त्व उत्पन्न होता है। महत् तत्त्व से मिथ्या अहंकार उत्पन्न होता है, जो तीन पक्षों में बँट जाता है। यह तीन प्रकार का मिथ्या अहंकार अनुभूति के सूक्ष्म रूपों, इन्द्रियों तथा स्थूल इन्द्रिय-विषयों के रूप में, प्रकट होता है। इन सबों की उत्पत्ति सर्ग कहलाती है।

पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥ १२॥

शब्दार्थ

पुरुष—सृष्टि की लीला करते भगवान् का; अनुगृहीतानाम्—कृपाप्राप्त लोगों का; एतेषाम्—इन तत्त्वों का; वासना-मयः—जीवों की विगत इच्छाओं के अवशेषों से युक्त; विसर्गः—गौण सृष्टि; अयम्—यह; समाहारः—व्यक्त संयोग; बीजात्—बीज से; बीजम्—दूसरा बीज; चर—गति करते प्राणी; अचरम्—तथा जड़ प्राणी।

गौण सृष्टि (विसर्ग), जो ईश्वर की कृपा से विद्यमान है, जीवों की इच्छाओं का व्यक्त संयोग है। जिस प्रकार एक बीज से अतिरिक्त बीज उत्पन्न होते हैं, उसी तरह कर्ता में भौतिक इच्छाओं को बढ़ाने वाले कार्य चर तथा अचर जीवों को जन्म देते हैं।

तात्पर्य : जिस तरह बीज उग कर वृक्ष बन जाता है, जिससे हजारों नये बीज बनते हैं, उसी तरह भौतिक इच्छा सकाम कर्म में विकसित होती है, जिससे बद्धजीव के हृदय में हजारों नवीन इच्छाओं का स्फुरण होता है। *पुरुषानुगृहीतानाम्* शब्द सूचित करता है कि भगवान् की कृपा से मनुष्य को इस जगत में इच्छा करने और कार्य करने की अनुमति मिलती है।

वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ।
कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा ॥ १३॥

शब्दार्थ

वृत्तिः—भरण, निर्वाह; भूतानि—जीव; भूतानाम्—जीवों का; चराणाम्—चेतनों का; अचराणि—जड़ों का; च—तथा; कृता—सम्पन्न किया हुआ; स्वेन—अपने बद्ध स्वभाव से; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; तत्र—उसमें; कामात्—कामवश; चोदनया—वैदिक आदेशों के अनुसार; अपि—निस्सन्देह; वा—अथवा।

वृत्ति का अर्थ है भरण या निर्वाह की विधि जिससे चेतन प्राणी जड़ प्राणियों पर निर्वाह करते हैं। मनुष्य के लिए वृत्ति का विशेष अर्थ होता है अपनी जीविका के लिए इस तरह से कार्य करना जो उसके निजी स्वभाव के अनुकूल हो। ऐसा कार्य या तो स्वार्थ की इच्छानुसार या फिर ईश्वर के नियमानुसार पूरा किया जा सकता है।

रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे युगे ।
तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः ॥ १४॥

शब्दार्थ

रक्षा—रक्षा; अच्युत-अवतार—भगवान् अच्युत के अवतारों का; ईहा—कार्यकलाप; विश्वस्य—इस ब्रह्माण्ड का; अनु युगे युगे—प्रत्येक युग में; तिर्यक्—पशुओं; मर्त्य—मनुष्यों; ऋषि—मुनियों; देवेषु—तथा देवताओं के बीच; हन्यन्ते—मारे जाते हैं; यैः—जिन अवतारों द्वारा; त्रयी-द्विषः—वैदिक संस्कृति के शत्रु, दैत्यगण।

अच्युत भगवान् प्रत्येक युग में पशुओं, मनुष्यों, ऋषियों तथा देवताओं के बीच प्रकट होते हैं। वे इन अवतारों में अपने कार्यकलापों से ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हैं और वैदिक संस्कृति के शत्रुओं का वध करते हैं।

तात्पर्य : *रक्षा* शब्द द्वारा सूचित भगवान् के रक्षा-कार्य महापुराण के दस मूल विषयों में से एक है।

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वराः ।
र्षयोऽंशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५॥

शब्दार्थ

मनु-अन्तरम्—प्रत्येक मनु के शासन में; मनुः—मनु; देवाः—देवतागण; मनु-पुत्राः—मनु के पुत्र; सुर-ईश्वराः—विभिन्न इन्द्र; ऋषयः—ऋषिगण; अंश-अवताराः—भगवान् के अंशों के अवतार; च—तथा; हरेः—हरि के; षट्-विधम्—छः प्रकार का; उच्यते—कहा जाता है।

मनु के प्रत्येक शासनकाल (मन्वन्तर) में भगवान् हरि के रूप में छह प्रकार के पुरुष प्रकट होते हैं—शासक मनु, मुख्य देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, महर्षि तथा भगवान् के अंशावतार।

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ।
वंशानुचरितं तेषाम्वृत्तं वंशधरास्च ये ॥ १६॥

शब्दार्थ

राज्ञाम्—राजाओं के; ब्रह्म-प्रसूतानाम्—ब्रह्मा से उत्पन्न; वंशः—वंश; त्रै-कालिकः—काल की तीन अवस्थाओं तक विस्तीर्ण (भूत, वर्तमान तथा भविष्य); अन्वयः—श्रेणी; वंश-अनुचरितम्—वंशों के इतिहास; तेषाम्—उन वंशों के; वृत्तम्—कार्यकलाप; वंश धराः—वंश के प्रमुख व्यक्ति; च—तथा; ये—जो।

ब्रह्मा से लेकर भूत, वर्तमान तथा भविष्य तक लगातार फैली हुई राजाओं की सरणियाँ (पंक्तियाँ) वंश हैं। ऐसे वंशों के, विशेष रूप से सर्वाधिक प्रमुख व्यक्तियों के, विवरण वंश इतिहास के प्रमुख विषय होते हैं।

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः ।
संस्थेति कविभिः प्रोक्तश्चतुर्धास्य स्वभावतः ॥ १७॥

शब्दार्थ

नैमित्तिकः—आकस्मिक; प्राकृतिकः—तात्विक; नित्यः—संतत; आत्यन्तिकः—अन्तिम; लयः—प्रलय; संस्था—विलय; इति—इस प्रकार; कविभिः—विद्वान पंडितों द्वारा; प्रोक्तः—वर्णित; चतुर्धा—चार प्रकार से; अस्य—इस ब्रह्माण्ड का; स्वभावतः—भगवान् की निहित शक्ति से।

ब्रह्म प्रलय के चार प्रकार हैं—नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य तथा आत्यन्तिक। ये सारे के

सारे भगवान् की अन्तर्निहित शक्ति द्वारा प्रभावित होते हैं। विद्वान पंडितों ने इस विषय का नाम विलय रखा है।

हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ।
यं चानुशायिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

हेतुः—कारण; जीवः—जीव; अस्य—इस ब्रह्माण्ड का; सर्ग-आदेः—सृजन, पालन तथा संहार का; अविद्या—अज्ञानतावश; कर्म-कारकः—भौतिक कार्य करने वाला; यम्—जिसको; च—तथा; अनुशायिनम्—सन्निहित व्यक्ति; प्राहुः—कहते हैं; अव्याकृतम्—अव्यक्त; उत—निस्सन्देह; अपरे—अन्य।

जीव अज्ञानवश भौतिक कर्म करता है और इस तरह वह, एक अर्थ में, ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार का हेतु बन जाता है। कुछ विद्वान जीव को भौतिक सृष्टि में निहित पुरुष मानते हैं जबकि अन्य उसे अव्यक्त आत्मा कहते हैं।

तात्पर्य : भगवान् स्वयं ही ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं। किन्तु ऐसे कार्य बद्धजीवों की इच्छा की पूर्ति के लिए ही सम्पन्न किये जाते हैं, जिन्हें यहाँ *हेतु* कहा गया है। भगवान् इस जगत को बद्धजीव द्वारा प्रकृति का शोषण करने तथा अन्ततः, अपना आत्म-साक्षात्कार सुगम बनाने के प्रयास में सहायक बनने के लिए उत्पन्न करते हैं।

चूँकि बद्धजीव अपने स्वाभाविक स्वरूप को देख नहीं सकते इसलिए वे यहाँ पर *अव्याकृतम्* या अव्यक्त बतलाये गये हैं। दूसरे शब्दों में, जीव जब तक पूर्णतया कृष्णभावनाभावित न हो, वह अपने असली स्वरूप को नहीं देख सकता।

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

व्यतिरेक—पृथक् अस्तित्व; अन्वयः—तथा; यस्य—जिसका; जाग्रत्—जगी हुई चेतना; स्वप्न—स्वप्न; सुषुप्तिषु—तथा गहरी नींद के अन्तर्गत; माया-मयेषु—माया की वस्तुओं के अन्तर्गत; तत्—वह; ब्रह्म—परब्रह्म; जीव-वृत्तिषु—जीवों के कार्यों के अन्तर्गत; अपाश्रयः—अद्वितीय आश्रय।

परब्रह्म, जागरूकता की सभी अवस्थाओं—जागृत, सुप्त तथा सुषुप्ति—में, माया द्वारा प्रकट किये जाने वाली सारी घटनाओं में तथा सारे जीवों के कार्यों में उपस्थित रहते हैं। वे इन सबों से पृथक् होकर भी उपस्थित रहते हैं। इस तरह अपने ही *अध्यात्म* में स्थित, वे परम तथा अद्वितीय आश्रय हैं।

पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ।
बीजादिपञ्चतान्तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पद-अर्थेषु—भौतिक वस्तुओं में; यथा—जिस प्रकार; द्रव्यम्—मूल वस्तु; सत्-मात्रम्—वस्तुओं का अस्तित्व मात्र; रूप-नामसु—रूपों तथा नामों के बीच; बीज-आदि—बीज इत्यादि (गर्भधारण से लेकर); पञ्चता-अन्तासु—मृत्यु तक; हि—निस्सन्देह; अवस्थासु—शरीर की विभिन्न अवस्थाओं में; युत-अयुतम्—अकेले तथा एकसाथ मिल कर।

यद्यपि भौतिक वस्तु विविध रूप तथा नाम धारण कर सकती है, किन्तु इसका मूलभूत अवयव सदैव इसके अस्तित्व का आधार बना रहता है। इसी तरह परब्रह्म अकेले तथा एकसाथ मिल कर, सदैव भौतिक शरीर की विभिन्न अवस्थाओं में, गर्भधारण से लेकर मृत्यु तक, उपस्थित रहता है।

तात्पर्य : गीली मिट्टी को विविध रूपों में ढाला जा सकता है और उन्हें जलपात्र, फूलदान या संग्रहपात्र का नाम दिया जा सकता है। किन्तु विविध रूपों तथा नामों के बावजूद मूलभूत अवयव मिट्टी निरन्तर वर्तमान रहती है। इसी तरह परमेश्वर शरीर के अस्तित्व की सभी अवस्थाओं में उपस्थित रहता है। भगवान् और प्रकृति अभिन्न हैं क्योंकि भगवान् प्रकृति के *जनक* स्रोत हैं। साथ ही परब्रह्म अपने धाम में अलग से उपस्थित रहते हैं।

विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ।
योगेर्ल वा तदात्मानं वेदेहाया निवर्तते ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

विरमेत—दूर रखता है; यदा—जब; चित्तम्—मन; हित्वा—त्याग कर; वृत्ति-त्रयम्—जागृती, स्वप्न तथा सुषुप्ती ये तीन अवस्थाएँ, जोकि भौतिक जीवन के कार्य हैं; स्वयम्—स्वत:; योगेन—नियमित आध्यात्मिक अभ्यास से; वा—अथवा; तदा—तब; आत्मानम्—परमात्मा को; वेद—जानो; ईहाया:—भौतिक प्रयास से; निवर्तते—बन्द कर देता है।

मनुष्य का मन या तो अपने आप से या नियमित आध्यात्मिक अभ्यास से जाग्रत, सुप्त तथा सुषुप्त अवस्थाओं में भौतिक स्तर पर कार्य करना बन्द कर देता है। तब वह परमात्मा को समझ पाता है और भौतिक प्रयास करना बन्द कर देता है।

तात्पर्य : जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (३.२५.३३) में कहा गया है—*जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा*—भक्ति जीव के सूक्ष्म शरीर को किसी पृथक् प्रयास के बिना ही विलीन कर देती है, जिस तरह उदर में अग्नि हमारे खाये हुए पदार्थों को पचा देती है। सूक्ष्म भौतिक शरीर यौन, लोभ, मिथ्या अहंकार तथा उन्माद के द्वारा प्रकृति का शोषण करने पर तुला रहता है। किन्तु भगवान् की प्रेमाभक्ति कट्टर मिथ्या अहंकार को विलीन कर देती है और मनुष्य को शुद्ध आनन्दमय चेतना, कृष्णभावनामृत, तक पहुँचा देती है।

एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ।
मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; लक्षण-लक्ष्याणि—लक्षणों से लक्षित; पुराणानि—पुराण; पुरा-विद:—प्राचीन इतिहासों में दक्ष; मुनय:—मुनिगण; अष्टादश—अठारह; प्राहु:—कहते हैं; क्षुल्लकानि—छोटे, गौण; महान्ति—महान्; च—भी।

प्राचीन इतिहास में दक्ष मुनियों ने घोषित किया है कि अपने विविध लक्षणों के अनुसार, पुराणों को अठारह प्रधान पुराणों और अठारह गौण पुराणों में विभाजित किया जा सकता है।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडं ।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम् ॥ २३॥
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् ।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४॥

शब्दार्थ

ब्राह्मम्—ब्रह्मा पुराण; पाद्मम्—पद्म पुराण; वैष्णवम्—विष्णु पुराण; च—तथा; शैवम्—शिव पुराण; लैङ्गम्—लिंग पुराण; स-गारुडम्—गरुड़ पुराण के साथ; नारदीयम्—नारद पुराण; भागवतम्—भागवत पुराण; आग्नेयम्—अग्नि पुराण; स्कान्द—स्कन्द पुराण; संज्ञितम्—नामक; भविष्यम्—भविष्य पुराण; ब्रह्म-वैवर्तम्—ब्रह्मवैवर्त पुराण; मार्कण्डेयम्—मार्कण्डेय पुराण; स-वामनम्—वामन पुराण सहित; वाराहम्—वराह पुराण; मात्स्यम्—मत्स्य पुराण; कौर्मम्—कूर्म पुराण; च—तथा; ब्रह्माण्ड-आख्यम्—ब्रह्माण्ड पुरान नामक; इति—इस प्रकार; त्रि-षट्—छः के तीन गुने अर्थात् अठारह।

अठारह प्रधान पुराणों के नाम हैं—ब्रह्मा, पद्म, विष्णु, शिव, लिंग, गरुड़, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वराह, मत्स्य, कूर्म तथा ब्रह्माण्ड पुराण।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने उपर्युक्त दोनों श्लोकों की पुष्टि में वराह पुराण, शिव पुराण तथा मत्स्य पुराण से उद्धरण दिये हैं।

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ।
शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; इदम्—यह; समाख्यातम्—पूरी तरह वर्णित; शाखा-प्रणयनम्—शाखाओं का विस्तार; मुनेः—मुनि (श्रील व्यासदेव) के; शिष्य—शिष्यों के; शिष्य-प्रशिष्याणाम्—तथा उनके शिष्यों के भी शिष्यों के; ब्रह्म-तेजः—आध्यात्मिक शक्ति; विवर्धनम्—बढ़ाने वाले।

हे ब्राह्मण, मैंने तुमसे वेदों की शाखाओं के महामुनि व्यासदेव, उनके शिष्यों तथा शिष्यों के भी शिष्यों द्वारा किये गये विस्तार का भलीभाँति वर्णन किया है। जो इस कथा को सुनता है उसकी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ जाती है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''पौराणिक साहित्य'' नामक सातवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter आठ

मार्कण्डेय द्वारा नर-नारायण ऋषि की स्तुति

इस अध्याय में इसका वर्णन हुआ है कि किस तरह मार्कण्डेय ऋषि ने तपस्या की, अपनी शक्ति से कामदेव को और उसके साथियों को हराया और नर तथा नारायण रूपों में श्री हरि की स्तुति की।

श्री शौनक श्री मार्कण्डेय की असामान्य दीर्घ आयु के विषय में संशयग्रस्त थे। उन्होंने शौनक के ही वंश में जन्म लिया था किन्तु करोड़ों वर्ष पूर्व प्रलय के सागर में अकेले बहते हुए बरगद के पत्ते पर लेटे एक अद्भुत शिशु को देखा था। शौनक को लग रहा था कि मार्कण्डेय ब्रह्मा के दो दिनों तक जीवित रहे, अत: उन्होंने श्री सूत गोस्वामी से इसके विषय में बतलाने के लिए कहा।

सूत गोस्वामी ने उत्तर दिया कि अपने पिता से ब्राह्मण-दीक्षा पाकर मार्कण्डेय ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया। तब उन्होंने छ: मन्वन्तरों तक भगवान् हरि की पूजा की। सातवें मन्वन्तर में इन्द्र ने ऋषि की तपस्या भंग करने के लिए कामदेव तथा उसके संगियों को भेजा। किन्तु मार्कण्डेय ने अपनी तपस्या से प्राप्त शक्ति द्वारा उन्हें हरा दिया।

तब मार्कण्डेय पर दया दिखाने के उद्देश्य से श्री हरि उनके समक्ष नर-नारायण के रूप में प्रकट हुए। श्री मार्कण्डेय ने उनके चरणों पर दण्डवत् प्रणाम किया और तब सुखदायक आसन, पाद-प्रक्षालन के लिए जल तथा अन्य योग्य उपहार देकर उनकी पूजा की। तत्पश्चात् उन्होंने स्तुति की, ''हे सर्वशक्तिमान प्रभु! आप सारे प्राणियों को प्राणवायु प्रदान करते हैं और तीनों लोकों की रक्षा भी करते हैं, दुख को दूर करते हैं तथा मुक्ति प्रदान करते हैं। आप उन लोगों को, जिन्होंने आपकी शरण ले रखी है, किसी प्रकार के कष्ट से पराजित नहीं होने देते। आपके चरणकमलों की प्राप्ति ही बद्धजीवों का शुभ लक्ष्य होता है और आपकी सेवा से उनकी सारी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं। सतोगुण में सम्पन्न आपकी लीलाएँ किसी को भी भौतिक जीवन से मोक्ष दिला सकती हैं। इसलिए जो बुद्धिमान हैं, वे आपके सात्विक साकार रूप श्री नारायण की, आपके अनन्य भक्त नर समेत, पूजा करते हैं।

''यदि जीव वेदों में प्रस्तुत तथा अखिल ब्रह्माण्ड के गुरु स्वरूप आपके द्वारा चलाये हुए ज्ञान को प्राप्त करता है, तो माया से विमोहित जीव आपको प्रत्यक्ष समझ सकता है। यहाँ तक कि ब्रह्मा जैसे महान् चिन्तक भी सांख्य योग के मार्ग पर संघर्ष करते हुए आपके स्वरूप को जानने के प्रयास में मोहग्रस्त हो जाते हैं। आप स्वयं ही सांख्य तथा अन्य दर्शन प्रकट करते हैं और इस तरह जीवात्मा के उपाधि-आवरण के नीचे आपका असली स्वरूप छिपा रहता है। हे महापुरुष, मैं आपका स्वागत करता हूँ।''

श्रीशौनक उवाच

सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ।
तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शन: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शौनकः उवाच—श्री शौनक ने कहा; सूत—हे सूत गोस्वामी; जीव—आप जीवित रहें; चिरम्—दीर्घकाल तक; साधो—हे साधु; वद—कृपा करके कहें; नः—हमसे; वदताम्—वक्ताओं के; वर—श्रेष्ठ; तमसि—अंधकार में; अपारे—अपार; भ्रमताम्—विचरण करते हुए; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; त्वम्—तुम; पार-दर्शनः—उस किनारे को देखने वाला।

श्री शौनक ने कहा : हे सूत, आप दीर्घायु हों। हे साधु, हे वक्ता श्रेष्ठ, आप हमसे इसी तरह बोलते रहें। निस्सन्देह, आप ही मनुष्यों को उस अज्ञान से निकलने का मार्ग दिखा सकते हैं जिसमें वे विचरण कर रहे हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार, मुनियों ने देखा कि सूत गोस्वामी *श्रीमद्भागवत* की कथा समाप्त करने वाले हैं, इसलिए उन्होंने अनुरोध किया कि वे सबसे पहले मार्कण्डेय ऋषि की कथा कहें।

आहुश्चिरायुषमृषिं मृकण्डतनयं जनाः ।
यः कल्पान्ते ह्युर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥ २॥

स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः ।
नैवाधुनापि भूतानां सम्प्लवः कोऽपि जायते ॥ ३॥

एक एवार्णवे भ्राम्यन्ददर्श पुरुषं किल ।
वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४॥

एष नः संशयो भूयान्सूत कौतूहलं यतः ।
तं नश्छिन्धि महायोगिन्पुराणेष्वपि सम्मतः ॥ ५॥

शब्दार्थ

आहुः—कहते हैं; चिर-आयुषम्—अत्यधिक दीर्घ आयु वाला; ऋषिम्—ऋषि; मृकण्ड-तनयम्—मृकण्ड के पुत्र को; जनाः—लोग; यः—जो; कल्प-अन्ते—ब्रह्मा का एक दिन पूरा होने पर; हि—निस्सन्देह; उर्वरितः—एकान्त में रहते हुए; येन—जिस (प्रलय) से; ग्रस्तम्—ग्रस्त; इदम्—यह; जगत्—समूचा ब्रह्माण्ड; सः—वह, मार्कण्डेय; वै—निस्सन्देह; अस्मत्-कुल—मेरे ही परिवार में; उत्पन्नः—उत्पन्न; कल्पे—ब्रह्मा के दिन में; अस्मिन्—इस; भार्गव-ऋषभः—भृगु मुनि का परम प्रसिद्ध वंशज; न—नहीं; एव—निश्चय ही; अधुना—हमारे युग में; अपि—भी; भूतानाम्—सारी सृष्टि का; सम्प्लवः—बाढ़ से संहार; कः—कोई; अपि—तनिक भी; जायते—उत्पन्न हुआ है; एकः—अकेला; एव—निस्सन्देह; अर्णवे—महासागर में; भ्राम्यन्—घूमते हुए; ददर्श—देखा; पुरुषम्—पुरुष को; किल—कहा जाता है; वट-पत्र—बरगद की पत्ती के; पुटे—दोने में; तोकम्—एक शिशु; शयानम्—लेटा हुआ; तु—लेकिन; एकम्—एक; अद्भुतम्—अद्भुत; एषः—यह; नः—हमारा; संशयः—सन्देह; भूयान्—महान्; सूत—हे सूत गोस्वामी; कौतूहलम्—उत्सुकता; यतः—जिसके कारण; तम्—उसको; नः—हमारे लिए; छिन्धि—काट डालिये; महा-योगिन्—हे महान् योगी; पुराणेषु—पुराणों के; अपि—निस्सन्देह; सम्मतः—सार्वजनिक रूप से स्वीकृत (दक्ष ज्ञाता के रूप में)।

विद्वानों का कहना है कि मृकण्डु के पुत्र, मार्कण्डेय ऋषि, अति दीर्घ आयु वाले मुनि थे और ब्रह्मा के दिन के अन्त होने पर वे ही एकमात्र बचे हुए थे जबकि सारा ब्रह्माण्ड प्रलय की बाढ़ में जलमग्न हुआ था। किन्तु यही मार्कण्डेय ऋषि, जोकि भृगुवंशियों में सर्वोपरि हैं, मेरे ही परिवार में ब्रह्मा के चालू दिन में जन्मे थे और हमने अभी ब्रह्मा के इस दिन का पूर्ण प्रलय नहीं देखा है। यही नहीं, यह भलीभाँति ज्ञात है कि मार्कण्डेय मुनि ने प्रलय के महासागर में असहाय होकर इधर-उधर घूमते हुए उस भयानक जल में एक अद्भुत पुरुष

को देखा—एक शिशु जो बरगद के पत्ते के दोने में अकेले लेटा था। हे सूत, मैं इन महर्षि मार्कण्डेय के विषय में अत्यधिक मोहग्रस्त तथा उत्सुक हूँ। हे महान् योगी, आप समस्त पुराणों के विद्वान माने जाते हैं, इसलिए मेरे संशय को दूर कीजिये।

तात्पर्य : ब्रह्मा के एक दिन में १२ घंटे होते हैं, जो ४३,२०० लाख वर्षों के तुल्य होते हैं और उनकी रात भी इतनी ही बड़ी होती है। स्पष्ट है कि मार्कण्डेय इस तरह के एक दिन और एक रात जीवित रहने के बाद ब्रह्मा के अगले दिन में भी इसी मार्कण्डेय रूप में रहते रहे। ऐसा लगता है कि जब ब्रह्मा की रात में प्रलय हुई तो यह ऋषि विनाश के भयावह जल में लगातार विचरण करते रहे और उसी जल में बरगद के पत्ते पर एक असामान्य पुरुष को लेटे देखा। मार्कण्डेय विषयक इन सारे रहस्यों को सूत गोस्वामी महर्षियों के अनुरोध पर स्पष्ट करेंगे।

सूत उवाच

प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ।
नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; प्रश्नः—प्रश्न; त्वया—तुम्हारे द्वारा; महा-ऋषे—हे महर्षि शौनक; अयम्—यह; कृतः—बनाया हुआ; लोक—सम्पूर्ण जगत का; भ्रम—भ्रम; अपहः—दूर करने वाला; नारायण-कथा—भगवान् नारायण की कथा; यत्र—जिसमें; गीता—गाई जाती है; कलि-मल—कलियुग के कल्मष; अपहा—दूर करते हुए।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे महर्षि शौनक, तुम्हारे इस प्रश्न से हर एक का मोह दूर हो सकेगा क्योंकि इसका सम्बन्ध भगवान् नारायण की कथाओं से है, जो इस कलियुग के कल्मष को दूर करती हैं।

प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् ।
छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥

बृहद्व्रतधरः शान्तो जटिलो वल्कलाम्बरः ।
बिभ्रत्कमण्डलुं दण्डमुपवीतं समेखलम् ॥ ८ ॥

कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये ।
अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन्सन्ध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥

सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ।
बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥ १० ॥

एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ।
आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

प्राप्त—प्राप्त हुए; द्वि-जाति—द्वितीय जन्म का; संस्कारः—संस्कार; मार्कण्डेयः—मार्कण्डेय; पितुः—अपने पिता से; क्रमात्—क्रमश; छन्दांसि—वैदिक स्तोत्र; अधीत्य—अध्ययन करके; धर्मेण—विधि-विधानों समेत; तपः—तपस्या में;

स्वाध्याय—तथा अध्ययन में; संयुतः—पूर्ण; बृहत्-व्रत—आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत; धरः—धारण करते हुए; शान्तः—शान्त; जटिलः—जटा सहित; वल्कल-अम्बरः—छाल के वस्त्र पहने; बिभ्रत्—लिए हुए; कमण्डलुम्—कमण्डल; दण्डम्—संन्यासी की डंडा; उपवीतम्—जनेऊ; स-मेखलम्—ब्रह्मचारी के कटिसूत्र सहित; कृष्ण-अजिनम्—काले मृग का चर्म; स-अक्ष-सूत्रम्—कमल के बीजों से बनी जपमाला; कुशान्—कुश घास; च—भी; नियम-ऋद्धये—अपनी आध्यात्मिक प्रगति को सरल बनाने के लिए; अग्नि—अग्नि रूप में; अर्क—सूर्य; गुरु—गुरु; विप्र—ब्राह्मण; आत्मसु—तथा परमात्मा; अर्चयन्—पूजा करते हुए; सन्ध्ययोः—दिन के प्रारम्भ तथा अन्त में; हरिम्—भगवान् को; सायम्—संध्या समय; प्रातः—तड़के; सः—वह; गुरवे—अपने गुरु से; भैक्ष्यम्—भीख माँगने से मिली भिक्षा; आहृत्य—लाकर; वाक्-यतः—संयमित वाणी से; बुभुजे—भाग लिया; गुरु-अनुज्ञातः—अपने गुरु द्वारा आमंत्रित; सकृत्—एक बार; न—नहीं (आमंत्रित); उ—निस्सन्देह; चेत्—यदि; उपोषितः—उपवास करते हुए; एवम्—इस तरह; तपः-स्वाध्याय-परः—तपस्या तथा वैदिक वाङ्मय केअध्ययन में तत्पर; वर्षाणाम्—वर्षों; अयुत-अयुतम्—दस हजार के दस हजार गुने; आराधयन्—पूजा करते हुए; हृषीक-ईशम्—इन्द्रियों के परम स्वामी, भगवान् विष्णु; जिग्ये—जीत लिया; मृत्युम्—मृत्यु को; सु-दुर्जयम्—जीत पाना असम्भव।

अपने पिता द्वारा ब्राह्मण की दीक्षा प्राप्त करने के लिए किये गये संस्तुत अनुष्ठानों द्वारा शुद्ध बन कर, मार्कण्डेय ने वैदिक स्तोत्रों का अध्ययन किया और विधि-विधानों का कठोरता से पालन किया। वे तपस्या तथा वैदिक ज्ञान में आगे बढ़ गये और जीवन-भर ब्रह्मचारी रहे। अपनी जटा से तथा छाल से बने अपने वस्त्रों से अत्यन्त शान्त प्रतीत होते हुए, उन्होंने अपनी आध्यात्मिक प्रगति को योगी का कमण्डल, दंड, जनेऊ, ब्रह्मचारी पेटी, काला मृग-चर्म, कमल के बीज की जपमाला तथा कुश के समूह को धारण करके और आगे बढ़ाया। उन्होंने दिन की सन्धियों पर भगवान् के पाँच रूपों—यज्ञ-अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण तथा उसके हृदय के भीतर परमात्मा की नियमित पूजा की। वे प्रातः तथा सायंकाल भिक्षा माँगने जाते और लौटने पर सारा एकत्रित भोजन अपने गुरु को भेंट कर देते। जब गुरु उन्हें आमंत्रित करते, तभी वे मौन भाव से दिन में एक बार भोजन करते, अन्यथा उपवास करते। इस तरह तपस्या तथा वैदिक अध्ययन में समर्पित मार्कण्डेय ऋषि ने इन्द्रियों के परम प्रभु भगवान् की करोड़ों वर्षों तक पूजा की और इस तरह उन्होंने दुर्जेय मृत्यु को जीत लिया।

ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च येऽपरे ।
नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्मा; भृगुः—भृगु मुनि; भवः—शिवजी; दक्षः—दक्ष प्रजापति; ब्रह्म-पुत्राः—ब्रह्मा के महान् पुत्र; च—तथा; ये—जो; अपरे—अन्य; नृ—मनुष्य; देव—देवतागण; पितृ—पूर्वज; भूतानि—भूतप्रेत; तेन—उससे (मृत्यु पर विजय); आसन्—सबके सब हो गये; अति-विस्मिताः—अत्यन्त चकित।

मार्कण्डेय ऋषि की उपलब्धि से ब्रह्मा, भृगु मुनि, शिवजी, प्रजापति दक्ष, ब्रह्मा के महान् पुत्र, मनुष्यों में से अन्य अनेक लोग, देवता, पूर्वज तथा भूतप्रेत—सभी चकित थे।

इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ।

दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से; बृहत्-व्रत-धरः—ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करते हुए; तपः-स्वाध्याय-संयमैः—अपनी तपस्या, वेदाध्ययन तथा विधि-विधानों के द्वारा; दध्यौ—ध्यान किया; अधोक्षजम्—दिव्य भगवान् पर; योगी—योगी; ध्वस्त—विनष्ट; क्लेश—सारे कष्ट; अन्तः-आत्मना—अपने अंतस्थ मन से।

इस तरह भक्तियोगी मार्कण्डेय ने तपस्या, वेदाध्ययन तथा आत्मानुशासन द्वारा कठोर ब्रह्मचर्य धारण किया। फिर सारे उत्पातों से मुक्त अपने मन से वे अन्दर की ओर मुड़े और भगवान् का ध्यान किया जो भौतिक इन्द्रियों के परे स्थित है।

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं महायोगेन योगिनः ।
व्यतीयाय महान्कालो मन्वन्तरषडात्मकः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; एवम्—इस प्रकार; युञ्जतः—स्थिर करते हुए; चित्तम्—मन; महा-योगेन—योग के शक्तिशाली अभ्यास से; योगिनः—योगी; व्यतीयाय—बीत गया; महान्—महान्; कालः—कालखण्ड; मनु-अन्तर—मनु की आयु; षट्—छः; आत्मकः—से युक्त।

जब यह योगी इस तरह महान् योगाभ्यास द्वारा अपने मन को एकाग्र कर रहा था, तो छः मनुओं की आयु के बराबर (मन्वन्तर) विपुल समय बीत गया।

एतत्पुरन्दरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलान्तरे ।
तपोविशङ्कितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; पुरन्दरः—राजा इन्द्र ने; ज्ञात्वा—जान कर; सप्तमे—सातवें; अस्मिन्—इस; किल—निस्सन्देह; अन्तरे—मनु के राज्य में; तपः—तपस्या का; विशङ्कितः—भयभीत होकर; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण शौनक; आरेभे—आरम्भ कर दिया; तत्—उस तपस्या का; विघाटनम्—विघ्न।

हे ब्राह्मण, सातवें मन्वन्तर में, जोकि चालू युग है, इन्द्र को मार्कण्डेय की तपस्या का पता चला तो वह उनकी बढ़ती योगशक्ति से भयभीत हो उठा। इस तरह उसने मुनि की तपस्या में विघ्न डालने का प्रयास किया।

गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ ।
मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तथा ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

गन्धर्व-अप्सरसः—दैवी गायक तथा नर्तकियाँ; कामम्—कामदेव को; वसन्त—वसन्त ऋतु; मलय-अनिलौ—तथा मलय पर्वत से आने वाली प्रफुल्ल करने वाली वायु; मुनये—मुनि के पास; प्रेषयाम् आस—भेजा; रजः-तोक—काम का शिशु, लोभ; मदौ—नशा; तथा—भी।

मुनि की आध्यात्मिक तपस्या नष्ट करने के लिए, इन्द्र ने कामदेव, सुन्दर गन्धर्वों,

अप्सराओं, वसन्त ऋतु तथा मलय पर्वत से चलने वाली चन्दन की गन्ध से युक्त मन्द समीर के साथ साक्षात् लोभ तथा नशे (मद) को भेजा।

ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे ।
पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७॥

शब्दार्थ

ते—वे; वै—निस्सन्देह; तत्—मार्कण्डेय ऋषि की; आश्रमम्—कुटिया में; जग्मुः—गये; हिम-अद्रेः—हिमालय पर्वत के; पार्श्वे—बगल में; उत्तरे—उत्तर में; पुष्पभद्रा नदी—पुष्पभद्रा नदी; यत्र—जहाँ; चित्रा-आख्या—चित्रा नामक; च—तथा; शिला—चोटी; विभो—हे शक्तिशाली शौनक।

हे शक्तिशाली शौनक, वे मार्कण्डेय की कुटिया पर गये जो हिमालय पर्वत की उत्तरी दिशा में थी और जहाँ से पुष्पभद्रा नदी सुप्रसिद्ध चोटी चित्रा के निकट से बहती है।

तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलताञ्चितम् ।
पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥
मत्तभ्रमरसङ्गीतं मत्तकोकिलकूजितम् ।
मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥ १९ ॥
वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् ।
सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तम्भयन्स्मरम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्—उसकी; आश्रम-पदम्—कुटिया का स्थान; पुण्यम्—पवित्र; पुण्य—पवित्र; द्रुम—वृक्षों; लता—तथा लताओं से; अञ्चितम्—विशेष रूप से अंकित; पुण्य—पवित्र; द्विज—ब्राह्मण मुनियों के; कुल—समूहों से; आकीर्णम्—परिपूरित; पुण्य—पवित्र; अमल—निर्मल; जल-आशयम्—जलाशयों से युक्त; मत्त—मतवाले; भ्रमर—भौरों के; सङ्गीतम्—संगीत से; मत्त—उन्मत्त बने हुए; कोकिल—कोयलों की; कूजितम्—कूक से; मत्त—मतवाले; बर्हि—मोरों के; नट-आटोपम्—नाचने के नशे में; मत्त—मतवाले; द्विज—पक्षियों के; कुल—परिवारों से युक्त; आकुलम्—पूरित; वायुः—मलयाचल की वायु ने; प्रविष्टः—प्रवेश करके; आदाय—लेकर; हिम—शीतल; निर्झर—झरनों के; शीकरान्—कुहरे के कणों; सुमनोभिः—फूलों से; परिष्वक्तः—आलिंगित होकर; ववौ—बहने लगी; उत्तम्भयन्—जागृत करते हुए; स्मरम्—कामदेव को।

मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम को पवित्र वृक्षों के कुंज अलंकृत कर रहे थे और बहुत-से साधु ब्राह्मण प्रचुर शुद्ध, पवित्र तालाबों का आनन्द उठाते हुए वहाँ रह रहे थे। वह आश्रम उन्मत्त भौरों की गुनगुनाहट से तथा उत्तेजित कोयलों की कुहू-कुहू से प्रतिध्वनित हो रहा था और प्रफुल्लित मोर इधर-उधर नाच रहे थे। निस्सन्देह उन्मत्त पक्षियों के अनेक परिवार उस कुटिया में झुंड के झुंड रह रहे थे। वहाँ पर इन्द्र द्वारा भेजी वसन्त की वायु पास के झरनों से शीतल बूँदों की फुहार लेते हुए प्रविष्ट हुई। वह वायु वन के फूलों के आलिंगन से सुगंधित थी। उसने कुटिया में प्रवेश किया और कामदेव की कामेच्छा को जगाना प्रारम्भ कर दिया।

उद्यच्चन्द्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः ।
गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

उद्यत्—उदय होते; चन्द्र—चन्द्रमा के साथ; निशा—रात; वक्त्रः—मुख वाली; प्रवाल—नई कोपलों से; स्तबक—फूलों की; आलिभिः—पंक्तियों से; गोप—छिपी; द्रुम—वृक्षों; लता—तथा लताओं के; जालैः—समूह से; तत्र—वहाँ; आसीत्—प्रकट हुआ; कुसुम-आकरः—वसन्त ऋतु।

तब मार्कण्डेय के आश्रम में वसन्त ऋतु प्रकट हुआ। संध्याकालीन आकाश उदय हो रहे चन्द्रमा के प्रकाश से चमक रहा था मानो वह वसन्त का मुख हो और नई कोंपले और ताजे फूल प्रायः वृक्षों और लताओं के झुंडों को आच्छादित किये हुए थे।

अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ।
अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

अन्वीयमानः—अनुसरण करते हुए; गन्धर्वैः—गन्धर्वों द्वारा; गीत—गायकों; वादित्र—तथा वाद्य-यंत्र बजाने वालों की; यूथकैः—टोलियों द्वारा; अदृश्यत—दिखाई पड़ा; आत्त—पकड़े; चाप-इषुः—अपना धनुष तथा बाण; स्वः-स्त्री-यूथ—झुंड की झुंड स्वर्ग की स्त्रियों का; पतिः—स्वामी; स्मरः—कामदेव।

तब अनेक स्वर्ग की स्त्रियों का पति कामदेव वहाँ पर अपना धनुष और बाण लिए आया। उसके पीछे-पीछे गन्धर्वों की टोलियाँ थी जो वाद्य-यंत्र बजा रहे थे और गा रहे थे।

हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिङ्कराः ।
मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तमिवानलम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

हुत्वा—आहुति डाल कर; अग्निम्—अग्नि में; समुपासीनम्—योग-ध्यान में बैठे हुए; ददृशुः—देखा; शक्र—इन्द्र के; किङ्कराः—नौकरों ने; मीलित—बन्द; अक्षम्—नेत्र; दुराधर्षम्—अजेय; मूर्ति-मन्तम्—साक्षात्; इव—मानो; अनलम्—अग्नि।

इन्द्र के नौकरों ने ऋषि को ध्यान में आसीन पाया, जिसने अभी अभी यज्ञ-अग्नि में नियत आहुतियाँ डाली थीं। उसकी आँखें समाधि में बन्द थीं; वह अजेय प्रतीत हो रहा था मानो साक्षात् अग्नि हो।

ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ।
मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ननृतुः—नाचीं; तस्य—उनके; पुरतः—समक्ष; स्त्रियः—स्त्रियाँ; अथ उ—तथा; गायकाः—गवैयों ने; जगुः—गाया; मृदङ्ग—मृदंग; वीणा—वीणा; पणवैः—तथा मंजीरों से; वाद्यम्—वाद्य संगीत; चक्रुः—किया; मनः-रमम्—मन को हरने वाला।

ऋषि के समक्ष स्त्रियाँ नाचने लगीं और गन्धर्वों ने मृदंग, वीणा तथा मंजीरों के साथ

मनोहर गीत गाये।

सन्दधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा ।
मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकम्पयन् ॥ २५॥

शब्दार्थ

सन्दधे—चढ़ाया; अस्त्रम्—हथियार; स्व-धनुषि—अपने धनुष पर; कामः—कामदेव ने; पञ्च-मुखम्—पाँच सिरों (दृष्टि, ध्वनि, गन्ध, स्पर्श तथा स्वाद) वाले; तदा—तब; मधुः—वसन्त; मनः—ऋषि का मन; रजः-तोकः—कामका शिशु, लोभ; इन्द्र-भृत्याः—इन्द्र के नौकर; व्यकम्पयन्—विचलित करने लगे।

जब काम का पुत्र (साक्षात् लोभ), वसन्त तथा इन्द्र के अन्य नौकर मार्कण्डेय के मन को विचलित करने का प्रयत्न कर रहे थे, तो कामदेव ने अपना पाँच सिरों वाला तीर निकाला और उसे अपने धनुष पर चढ़ाया।

क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौरवात् ।
भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रंसितस्रजः ॥ २६॥
इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलन्त्या अनु कन्दुकम् ।
वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

क्रीदन्त्याः—खेल रही; पुञ्जिकस्थल्याः—पुञ्जिकस्थली नामक अप्सरा की; कन्दुकैः—गेंदों से; स्तन—उसके कुचों के; गौरवात्—अधिक भार से; भृशम्—अत्यधिक; उद्विग्न—बोझिल; मध्यायाः—जिसकी कटि; केश—उसके बालों से; विस्रंसित—गिरते हुए; स्रजः—फूल का हार; इतः ततः—इधर-उधर; भ्रमत्—विचरण करती; दृष्टेः—जिसकी आँखें; चलन्त्याः—चंचल; अनु कन्दुकम्—अपनी गेंद के पीछे; वायुः—वायु; जहार—उड़ा ले गया; तत्-वासः—उसका वस्त्र; सूक्ष्मम्—झीना; त्रुटित—ढीली; मेखलम्—पेटी।

पुञ्जिकस्थली नामक अप्सरा अनेक गेंदों से खेलने का प्रदर्शन करने लगी। उसकी कमर उसके भारी स्तनों के भार से लचक रही थी और उसके बालों में गुँथे फूलों का हार बिखर रहा था। जब वह इधर-उधर दृष्टि डालती, गेंदों के पीछे दौड़ती, तो उसके झीने वस्त्र की पेटी ढीली पड़ गई और सहसा वायु उसके वस्त्र उड़ा ले गया।

विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः ।
सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥ २८॥

शब्दार्थ

विससर्ज—छोड़ा; तदा—तब; बाणम्—तीर; मत्वा—सोच कर; तम्—उसको; स्व—अपने द्वारा; जितम्—जीता हुआ; स्मरः—कामदेव; सर्वम्—यह सब; तत्र—ऋषि की ओर; अभवत्—हो गया; मोघम्—व्यर्थ; अनीशस्य—नास्तिक का; यथा—जिस तरह; उद्यमः—प्रयास।

तब कामदेव ने यह सोच कर कि उसने ऋषि को जीत लिया है, अपना तीर चलाया। किन्तु मार्कण्डेय को बहकाने के ये सारे प्रयास निष्फल रहे जिस तरह नास्तिक के प्रयास

व्यर्थ जाते हैं।

त इत्थमपकुर्वन्तो मुनेस्तत्तेजसा मुने ।
दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; इत्थम्—इस तरह; अपकुर्वन्तः—हानि पहुँचाने का प्रयास करते; मुनेः—मुनि को; तत्—उसकी; तेजसा—शक्ति से; मुने—हे मुनि (शौनक); दह्यमानाः—जला हुआ अनुभव करते हुए; निववृतुः—विलग हो गये; प्रबोध्य—जगाकर; अहिम्—सर्प को; इव—मानो; अर्भकाः—बालक।

हे विद्वान शौनक, जब कामदेव तथा उसके अनुयायी मुनि को हानि पहुँचाने का प्रयास कर रहे थे, तो वे स्वयं उनकी शक्ति से जीवित ही दग्ध होते अनुभव करने लगे। इस तरह उन्होंने अपनी शैतानी बन्द कर दी जिस तरह सोते साँप को जगाने वाले बालक।

इतीन्द्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः ।
यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; इन्द्र-अनुचरैः—इन्द्र के अनुयायियों द्वारा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; धर्षितः—धृष्ठतापूर्वक आक्रमण किया गया; अपि—यद्यपि; महा-मुनिः—महामुनि; यत्—जिसको; न अगात्—झुके नहीं; अहमः—मिथ्या अहंकार का; भावम्—रूपान्तर को; न—नहीं; तत्—उस; चित्रम्—आश्चर्यजनक; महत्सु—महात्माओं के लिए; हि—निस्सन्देह।

हे ब्राह्मण, इन्द्र के अनुयायियों ने उद्धत होकर सन्त स्वभाव वाले मार्कण्डेय पर आक्रमण किया था; फिर भी वे मिथ्या अहंकार के किसी भी प्रभाव के आगे झुके नहीं। महात्माओं के लिए ऐसी सहिष्णुता तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है।

दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट् ।
श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; निस्तेजसम्—अपनी शक्ति से रहित; कामम्—कामदेव को; स-गणम्—उसके संगियों समेत; भगवान्—शक्तिमान प्रभु; स्व-राट्—इन्द्र ने; श्रुत्वा—सुन कर; अनुभावम्—प्रभाव; ब्रह्म-ऋषेः—ब्रह्मर्षि का; विस्मयम्—आश्चर्य को; समगात्—प्राप्त हुआ; परम्—अत्यधिक।

बलशाली इन्द्र ने जब महर्षि मार्कण्डेय की योगशक्ति के विषय में सुना तो उसे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उसने देखा कि किस तरह कामदेव तथा उसके संगी महर्षि की उपस्थिति में शक्तिहीन हो गये थे।

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः ।
अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—मार्कण्डेय के; एवम्—इस तरह; युञ्जतः—स्थिर हुए; चित्तम्—मन को; तपः—तपस्या से; स्वाध्याय—वेदाध्ययन द्वारा; संयमैः—तथा संयम द्वारा; अनुग्रहाय—दया दिखाने के लिए; आविरासीत्—अपने को प्रकट किया; नर-नारायणः—नर तथा नारायण के रूप में; हरिः—भगवान् ने।

सन्त स्वभाव वाले मार्कण्डेय पर, जिन्होंने तपस्या, वेदाध्ययन तथा संयम के द्वारा आत्म-साक्षात्कार में अपने मन को पूरी तरह स्थिर कर लिया था, अपनी दया दिखलाने की इच्छा से भगवान् उनके समक्ष नर तथा नारायण रूपों में प्रकट हुए।

तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ
चतुर्भुजौ रौरववल्कलाम्बरौ ।
पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्
कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥
पद्माक्षमालामुत जन्तुमार्जनं
वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ।
तपत्तडिद्वर्णपिशङ्गरोचिषा
प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तौ—वे दोनों; शुक्ल-कृष्णौ—एक गोरा तथा दूसरा काला; नव-कञ्ज—खिले कमल के फूल के समान; लोचनौ—आँखों वाले; चतुः-भुजौ—चार भुजाओं वाले; रौरव—काला मृगचर्म; वल्कल—तथा पेड़ की छाल; अम्बरौ—वस्त्रों के रूप में; पवित्र—अत्यन्त पवित्र करने वाले; पाणी—हाथों वाले; उपवीतकम्—जनेऊ; त्रि-वृत्—तीन लड़ों वाले; कमण्डलुम्—जलपात्र, कमण्डल; दण्डम्—डण्डा, लाठी; ऋजुम्—सीधा; च—तथा; वैणवम्—बाँस का बना; पद्म-अक्ष—कमल के बीजों की; मालाम्—जपमाला; उत—तथा; जन्तु-मार्जनम्—सारे जीवों को शुद्ध बनाने वाले; वेदम्—वेदों को (दर्भ के पुंजों से प्रदर्शित); च—तथा; साक्षात्—प्रत्यक्ष; तपः—तपस्या; एव—निस्सन्देह; रूपिणौ—साक्षात्; तपत्—जलते हुए; तडित्—बिजली; वर्ण—रंग; पिशङ्ग—पीला; रोचिषा—तेज से; प्रांशु—अत्यन्त लम्बे; दधानौ—पहने हुए; विबुध-ऋषभ—देवताओं में प्रमुख; अर्चितौ—पूजति।

उनमें से एक गोरे वर्ण का और दूसरा साँवला था और उन दोनों के चार-चार बाजू थे। उनके नेत्र खिले कमल की पत्तियों जैसे थे और वे श्याम मृगचर्म तथा छाल का वस्त्र तथा तीन धागों वाला जनेऊ पहने थे। वे पवित्र करने वाले अपने हाथों में, यती का कमण्डल, सीधे बाँस का लट्ठ और कमल के बीज की जपमाला तथा दर्भ के पुंजों के प्रतीक रूप में सबको पवित्र करने वाले वेदों को भी धारण किये हुए थे। उनका कद लम्बा था और उनका पीला तेज चमकती बिजली के रंग का था। वे साक्षात् तपस्या की मूर्ति रूप में प्रकट हुए थे और अग्रणी देवताओं द्वारा पूजे जा रहे थे।

ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ।
दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामाङ्गेन दण्डवत् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; वै—निस्सन्देह; भगवतः—भगवान् के; रूपे—साकार रूप में; नर-नारायणौ—नर तथा नारायण; ऋषी—दोनों ऋषि; दृष्ट्वा—देख कर; उत्थाय—खड़े होकर; आदरेण—आदरपूर्वक; उच्चैः—अत्यधिक; ननाम—प्रणाम किया; अङ्गेन—अपने पूरे शरीर से; दण्ड-वत्—डंडे की तरह।

ये दोनों मुनि नर तथा नारायण भगवान् के साकार रूप थे। जब मार्कण्डेय ऋषि ने दोनों को देखा तो वे तुरन्त उठ खड़े हुए और तब पृथ्वी पर डंडे की तरह गिर कर अतीव आदर से उन्हें नमस्कार किया।

स तत्सन्दर्शनानन्दनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः ।
हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, मार्कण्डेय; तत्—उनका; सन्दर्शन—दर्शन करने से; आनन्द—आनन्द से; निर्वृत—प्रसन्न; आत्म—जिसका शरीर; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; आशयः—तथा मन; हृष्ट—खड़े हुए; रोमा—शरीर के रोएँ; अश्रु—आँसुओं से; पूर्ण—भरे; अक्षः—नेत्र; न सेहे—असमर्थ; तौ—दोनों को; उदीक्षितुम्—देख पाने में।

उन्हें देखने से उत्पन्न हुए आनन्द ने मार्कण्डेय के शरीर, मन तथा इन्द्रियों को पूरी तरह तुष्ट कर दिया और उनके शरीर में रोमांच ला दिया और उनके नेत्रों को आँसुओं से भर दिया। भावविह्वल होने से मार्कण्डेय उन्हें देख पाने में असमर्थ हो रहे थे।

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ।
नमो नम इतीशानौ बभाशे गद्गदाक्षरम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

उत्थाय—खड़े होकर; प्राञ्जलिः—हाथ जोड़े; प्रह्वः—विनीत; औत्सुक्यात्—उत्सुकता के कारण; आश्लिषन्—आलिंगन करते हुए; इव—मानो; नमः—नमस्कार; नमः—नमस्कार; इति—इस प्रकार; ईशानौ—दोनों प्रभुओं से; बभाषे—कहा; गद्गद—आनन्द से रुद्ध; अक्षरम्—अक्षर।

सम्मान में हाथ जोड़े खड़े होकर तथा दीनतावश अपना सिर झुकाये मार्कण्डेय को इतनी उत्सुकता हुई कि उन्हें लगा कि वे दोनों ईश्वरों का आलिंगन कर रहे हैं। आनन्द से रुद्ध हुई वाणी से उन्होंने बारम्बार कहा "मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।"

तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ।
अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उनको; आसनम्—बैठने का स्थान; आदाय—देते हुए; पादयोः—उनके पैरों को; अवनिज्य—पखार कर; च—तथा; अर्हणेन—उपयुक्त आदरपूर्ण भेंटों से; अनुलेपेन—चन्दन तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों से लेपित करके; धूप—धूप; माल्यैः—तथा फूल की मालाओं से; अपूजयत्—पूजा की।

उन्होंने उन दोनों को आसन प्रदान किया, उनके पैर धोये और तब अर्घ्य, चन्दन-लेप, सुगन्धित तेल, धूप तथा फूल-मालाओं की भेंट चढ़ाकर पूजा की।

सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ।
पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सुखम्—आराम से; आसनम्—आसनों पर; आसीनौ—बैठे; प्रसाद—दया; अभिमुखौ—देने को उद्यत; मुनी—दो मुनियों के रूप में भगवान् के अवतारों को; पुनः—फिर से; आनम्य—प्रणाम करके; पादाभ्याम्—उनके पाँवों पर; गरिष्ठौ—अत्यन्त पूजनीय; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा।

मार्कण्डेय ऋषि ने पुनः इन दो पूज्य मुनियों के चरणकमलों पर शीश झुकाया जो सुखपूर्वक बैठे थे और उन पर कृपा करने के लिए उद्यत थे। तब उन्होंने उनसे इस प्रकार कहा।

श्रीमार्कण्डेय उवाच
किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः
संस्पन्दते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि ।
स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च
स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-मार्कण्डेयः उवाच—श्री मार्कण्डेय ने कहा; किम्—क्या; वर्णये—वर्णन करूँ; तव—आपके विषय में; विभो—हे सर्वशक्तिमान प्रभु; यत्—जिनसे; उदीरितः—चलाई जाती है; असुः—प्राणवायु; संस्पन्दते—जीवन पाती है; तम् अनु—पीछे-पीछे; वाक्—वाणी की शक्ति; मनः—मन; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; स्पन्दन्ति—कार्य करने लगती हैं; वै—निस्सन्देह; तनु-भृताम्—समस्त देहधारी जीवों का; अज-शर्वयोः—ब्रह्मा तथा शिव के स्वामी का; च—भी; स्वस्य—मेरा; अपि—भी; अथ अपि—तो भी; भजताम्—पूजा करने वालों के लिए; असि—हो; भाव-बन्धुः—घनिष्ठ प्रेमी मित्र।

श्री मार्कण्डेय ने कहा : ''हे सर्वशक्तिमान प्रभु, भला मैं आपका वर्णन कैसे कर सकता हूँ?'' आप प्राणवायु को जागृत करते हैं, जो मन, इन्द्रियों तथा वाक्-शक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। यह सारे सामान्य बद्धजीवों पर, यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा शिव जैसे महान् देवताओं पर भी, लागू होता है। अतएव यह निस्सन्देह, मेरे लिए भी सही है। तो भी, आप अपनी पूजा करने वालों के घनिष्ठ मित्र बन जाते हैं।

मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः
क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ।
नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं
सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

मूर्ती—दो साकार रूप; इमे—ये; भगवतः—भगवान् के; भगवन्—हे प्रभु; त्रि-लोक्याः—तीनों लोकों के; क्षेमाय—कल्याण के लिए; ताप—भौतिक कष्ट की; विरमाय—समाप्ति के लिए; च—तथा; मृत्यु—मृत्यु पर; जित्यै—विजय के लिए; नाना—विविध; बिभर्षि—प्रकट करते हो; अवितुम्—रक्षा करने के लिए; अन्य—अन्य; तनूः—दिव्य शरीर;

यथा—जिस तरह; इदम्—इस ब्रह्माण्ड को; सृष्ट्वा—उत्पन्न करके; पुनः—एक बार फिर; ग्रससि—निगल लेते हो; सर्वम्—पूरी तरह; इव—सदृश; ऊर्ण-नाभिः—मकड़ा।

हे भगवान्, आपके ये दो साकार रूप तीनों जगतों को परम लाभ प्रदान करने के लिए—भौतिक कष्ट की समाप्ति तथा मृत्यु पर विजय के लिए—प्रकट हुए हैं। हे प्रभु, यद्यपि आप इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं और इसकी रक्षा करने के लिए नाना प्रकार के दिव्य रूप धारण करते हैं, किन्तु आप इसे निगल भी लेते हैं जिस तरह मकड़ी पहले जाल बुनती है और बाद में उसे निगल जाती है।

तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरङ्घ्रिमूलं
यत्स्थं न कर्मगुणकालरजः स्पृशन्ति ।
यद्वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्त्यभीक्ष्णं
ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; अवितुः—रक्षक; स्थिर-चर—अचर तथा चर प्राणी; ईशितुः—परम नियन्ता; अङ्घ्रि-मूलम्—उनके चरणकमलों के तलवे; यत्-स्थम्—जिस पर स्थित है; न—नहीं; कर्म-गुण-काल—भौतिक कर्म, भौतिक गुणों तथा काल का; रजः—दूषण; स्पृशन्ति—छूते हैं; यत्—जिसको; वै—निस्सन्देह; स्तुवन्ति—प्रशंसा करते हैं; निनमन्ति—नमन करते हैं; यजन्ति—पूजा करते हैं; अभीक्ष्णम्—हर क्षण; ध्यायन्ति—ध्यान करते हैं; वेद-हृदयाः—जिन्होंने वेदों का आत्मसात् कर लिया है; मुनयः—मुनिगण; तत्-आप्त्यै—उन्हें प्राप्त करने के उद्देश्य से।

चूँकि आप सारे चर तथा अचर प्राणियों के रक्षक तथा परम नियन्ता हैं, इसलिए जो भी आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, उसे भौतिक कर्म, भौतिक गुण या काल के दूषण छू तक नहीं सकते। जिन महर्षियों ने वेदों के अर्थ को आत्मसात् कर रखा है, वे आपकी स्तुति करते हैं। आपका सान्निध्य प्राप्त करने के लिए वे हर अवसर पर आपको नमस्कार करते हैं, निरन्तर आपको पूजते हैं और आपका ध्यान करते हैं।

नान्यं तवाङ्घ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः
क्षेमं जनस्य परितोभिय ईश विद्मः ।
ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्धधिष्ण्यः
कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

न अन्यम्—अन्य नहीं; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रि—चरणकमलों के; उपनयात्—प्राप्ति की अपेक्षा; अपवर्ग-मूर्तेः—जो साक्षात् मोक्ष हैं; क्षेमम्—लाभ; जनस्य—पुरुष के लिए; परितः—सभी दिशाओं में; भियः—भयभीत; ईश—हे ईश्वर; विद्मः—हम जानते हैं; ब्रह्मा—ब्रह्मा; बिभेति—भयभीत रहता है; अलम्—अत्यधिक; अतः—इस कारण से; द्वि-परार्ध—ब्रह्माण्ड की पूरी अवधि; धिष्ण्यः—शासनकाल; कालस्य—काल का; ते—आपका स्वरूप; किम् उत—क्या कहा जाय; तत्-कृत—उस ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न; भौतिकानाम्—संसारी प्राणियों का।

हे प्रभु, ब्रह्मा भी, जोकि ब्रह्माण्ड की पूरी अवधि तक अपने उच्च पद का भोग करता है, काल के प्रवाह से भयभीत रहता है। तो उन बद्धजीवों के बारे में क्या कहा जाय जिन्हें

ब्रह्मा उत्पन्न करते हैं। वे अपने जीवन के पग-पग पर भयावने संकटों का सामना करते हैं।मैं इस भय से छुटकारा पाने के लिए आपके चरणमलों की जोकि साक्षात् मोक्ष स्वरूप हैं शरण ग्रहण करने के सिवाय और कोई साधन नहीं जानता।

तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं
हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ।
देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं
विन्देत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; वै—निस्सन्देह; भजामि—पूजा करता हूँ; ऋत-धियः—उनकी, जिनकी बुद्धि सदैव सत्य का अनुभव करती है; तव—तुम्हारे; पाद-मूलम्—चरणकमलों के तलवे; हित्वा—त्याग कर; इदम्—यह; आत्म-छदि—आत्मा का आवरण; च—तथा; आत्म-गुरोः—आत्म के गुरु का; परस्य—परब्रह्म का; देह-आदि—भौतिक शरीर तथा अन्य मिथ्या उपाधियाँ; अपार्थम्—व्यर्थ; असत्—अयथार्थ; अन्त्यम्—क्षणिक; अभिज्ञ-मात्रम्—पृथक् अस्तित्व की कल्पना करके; विन्देत—प्राप्त करता है; ते—आपसे; तर्हि—तब; सर्व—सारा; मनीषित—वांछित; अर्थम्—वस्तुएँ।

इसलिए मैं भौतिक शरीर तथा उन सारी वस्तुओं से, जो मेरी असली आत्मा को प्रच्छन्न करती हैं, अपनी पहचान का परित्याग करके आपके चरणकमलों की पूजा करता हूँ। ये व्यर्थ, अयथार्थ तथा क्षणिक आवरण, आपसे जिनकी बुद्धि समस्त सत्य को समेटने वाली है, पृथक् कल्पित मात्र किये जाते हैं। परमेश्वर तथा आत्मा के गुरु स्वरूप आपको प्राप्त करके मनुष्य प्रत्येक वांछित वस्तु प्राप्त कर लेता है।

तात्पर्य : जो व्यक्ति झूठे ही अपने को भौतिक देह या मन मानता है, वह अपने को भौतिक जगत का दुरुपयोग करने का अधिकारी समझता है। किन्तु जब हमें अपने नित्य आध्यात्मिक स्वभाव तथा सभी पर कृष्ण के परम स्वामित्व का बोध होता है, तो हम आध्यात्मिक ज्ञान के बल पर मिथ्या भोग-लालसा की मनोवृत्ति को त्याग देते हैं।

सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो
मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ।
लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै
नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥ ४५॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतो; रजः—रजो; तमः—तमो; इति—इस प्रकार कहलाने वाले गुण; ईश—हे ईश्वर; तव—तुम्हारा; आत्म-बन्धो—हे आत्म के परम मित्र; माया-मयाः—आपकी माया से उत्पन्न; स्थिति-लय-उदय—पालन, विनाश तथा सृजन; हेतवः—कारण; अस्य—इस ब्रह्माण्ड के; लीलाः—लीलाओं के रूप में; धृताः—कल्पित; यत् अपि—यद्यपि; सत्त्व-मयी—सात्विक; प्रशान्त्यै—मोक्ष के लिए; न—नहीं; अन्ये—अन्य दो; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; व्यसन—खतरा; मोह—मोह; भियः—तथा भय; च—भी; याभ्याम्—जिससे।

हे प्रभु, हे बद्धजीव के परम मित्र, यद्यपि इस जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार के

लिए आप सतो, रजो तथा तमोगुणों को जो आपकी मायाशक्ति हैं, स्वीकार करते हैं? किन्तु बद्धजीवों को मुक्त करने के लिए आप सतोगुण का प्रयोग करते हैं। अन्य दो गुण उनके लिए कष्ट, मोह तथा भय लाने वाले हैं।

तात्पर्य : *लीला धृताः* शब्द सूचित करते हैं ब्रह्मा का सृजन-कार्य, शिव का विध्वंसात्मक कार्य तथा विष्णु का पालन-पोषण कार्य, परब्रह्म भगवान् कृष्ण की लीलाएँ हैं। किन्तु अन्त में भगवान् विष्णु ही भौतिक मोह के चंगुल से छुड़ा सकते हैं जैसाकि *सत्त्वमयी प्रशान्त्यै* शब्दों से सूचित होता है।

हमारे रजोगुणी तथा तमोगुणी कर्म हमारे लिए तथा अन्यों के लिए महान् कष्ट, मोह तथा भय उत्पन्न करने वाले हैं, अतएव उनका परित्याग किया जाना चाहिए। मनुष्य को सतोगुण में स्थिर होकर आध्यात्मिक पद पर शान्तिपूर्वक जीवन बिताना चाहिए। सतोगुण का सार यह है कि सारे कार्यों में स्वार्थ को त्याग कर अपना सारा जीवन उन भगवान् कृष्ण को समर्पित कर दिया जाय जो हमारे जीवन के स्रोत हैं।

तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां
शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति ।
यत्सात्वताः पुरुषरूपमुशन्ति सत्त्वं
लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; तव—तुम्हारा; इह—इस जगत में; भगवन्—हे भगवान्; अथ—तथा; तावकानाम्—आपके भक्तों के; शुक्लाम्—दिव्य; तनुम्—स्वरूप को; स्व-दयिताम्—अत्यन्त प्रिय; कुशलाः—आध्यात्मिक ज्ञान में दक्ष; भजन्ति—पूजा करते हैं; यत्—क्योंकि; सात्वताः—महान् भक्तगण; पुरुष—आदि भगवान् के; रूपम्—स्वरूप को; उशन्ति—मानते हैं; सत्त्वम्—सतोगुण; लोकः—आध्यात्मिक जगत; यतः—जिससे; अभयम्—निर्भीकता; उत—तथा; आत्म-सुखम्—आत्मा का सुख; न—नहीं; च—तथा; अन्यत्—अन्य कोई।

हे प्रभु, चूँकि निर्भीकता, आध्यात्मिक सुख तथा भगवद्धाम—ये सभी सतोगुण के द्वारा ही प्राप्त किये जाते हैं इसलिए आपके भक्त इसी गुण को आपकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति मानते हैं, रजो तथा तमोगुण को नहीं। इस तरह बुद्धिमान व्यक्ति आपके प्रिय दिव्य रूप को, जोकि शुद्ध सत्व से बना होता है, आपके शुद्ध भक्तों के आध्यात्मिक स्वरूपों के साथ पूजा करते हैं।

तात्पर्य : बुद्धिमान व्यक्ति देवताओं की पूजा नहीं करते क्योंकि वे रजो तथा तमोगुणों के सूचक हैं। ब्रह्मा रजोगुण के और शिव तमोगुण के सूचक हैं तथा इन्द्र आदि देवता भी भौतिक प्रकृति के गुणों के सूचक हैं। किन्तु विष्णु या नारायण शुद्ध सतोगुण के सूचक हैं जिससे मनुष्य को आध्यात्मिक जगत का साक्षात्कार, भय से मुक्ति तथा आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त होते हैं। ऐसे लाभ अशुद्ध भौतिक सतोगुण से कभी नहीं मिल सकते क्योंकि उसमें सदा रजो तथा तमोगुण मिले रहते हैं। जैसाकि इस श्लोक से स्पष्ट सूचित होता है ईश्वर का दिव्य स्वरूप नित्य सतोगुण से बना

होता है, अतएव उसमें भौतिक सतो, रजो या तमोगुण का लेश भी नहीं रहता।

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने
विश्वाय विश्वगुरवे परदैवताय ।
नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय
हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥ ४७॥

शब्दार्थ

तस्मै—उस; नमः—मेरा नमस्कार; भगवते—भगवान् को; पुरुषाय—परम पुरुष; भूम्ने—सर्वव्यापी; विश्वाय—ब्रह्माण्ड के समस्त स्वरूप; विश्व-गुरवे—ब्रह्माण्ड के गुरु; पर-दैवताय—परम पूज्य देव; नारायणाय—नारायण को; ऋषये—ऋषि; च—तथा; नर-उत्तमाय—पुरुषों में श्रेष्ठ; हंसाय—नितान्त शुद्ध; संयत-गिरे—संयमित वाणी वाले; निगम-ईश्वराय—वैदिक शास्त्रों के स्वामी।

मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ। वे ब्रह्माण्ड के सर्वव्यापक तथा सर्वस्व हैं और उसके गुरु भी हैं। मैं भगवान् नारायण को नमस्कार करता हूँ जो ऋषि के रूप में प्रकट होने वाले परम पूज्य देव हैं। मैं सन्त स्वभाव वाले नर को भी नमस्कार करता हूँ जो मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं, जो पूर्ण सात्विक हैं, जिनकी वाणी संयमित है और जो वैदिक ग्रन्थों के प्रचारक हैं।

यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः
सन्तं स्वकेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ।
तन्माययावृतमतिः स उ एव साक्षा-
दाद्यस्तवाखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥ ४८॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको; वै—निस्सन्देह; न वेद—नहीं पहचानते; वितथ—धोखेबाज; अक्ष-पथैः—काल्पनिक अनुभूति की विधियों द्वारा; भ्रमत्—घुमाया जाकर; धीः—जिसकी बुद्धि; सन्तम्—उपस्थित; स्वकेषु—अपने ही भीतर; असुषु—इन्द्रियों में; हृदि—हृदय के भीतर; अपि—भी; दृक्-पथेषु—बाह्य जगत की दृश्य वस्तुओं में; तत्-मायया—उसकी माया से; आवृत—ढकी; मतिः—ज्ञान; सः—वह; उ—भी; एव—ही; साक्षात्—प्रत्यक्ष; आद्यः—मूल रूप से (अज्ञान में); तव—तुम्हारा; अखिल-गुरोः—सारे जीवों के गुरु; उपसाद्य—प्राप्त करके; वेदम्—वेदों का ज्ञान।

भौतिकतावादी की बुद्धि उसकी धोखेबाज इन्द्रियों की क्रिया से विकृत रहती है, इसलिए वह आपको तनिक भी पहचान नहीं पाता यद्यपि आप उसकी इन्द्रियों तथा हृदय में और उसकी अनुभूति की वस्तुओं में सदैव विद्यमान रहते हैं। मनुष्य का ज्ञान आपकी माया से आवृत होते हुए भी, यदि वह, सबों के गुरु आपसे, वैदिक ज्ञान प्राप्त करता है, तो वह आपको प्रत्यक्ष रूप से समझ सकता है।

यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं
मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः ।

तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं
वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसका; दर्शनम्—दर्शन; निगमे—वेदों में; आत्म—परमात्मा का; रहः—रहस्य; प्रकाशम्—प्रकाशित करता है; मुह्यन्ति—मोहित हो जाते हैं; यत्र—जिसमें; कवयः—बड़े बड़े विद्वान; अज-पराः—ब्रह्मा इत्यादि; यतन्तः—यत्न करते हुए; तम्—उसको; सर्व-वाद—विभिन्न दर्शनों का; विषय—विषय; प्रतिरूप—अपने को उपयुक्त बनाकर; शीलम्—जिसका निजी स्वभाव; वन्दे—नमस्कार करता हूँ; महा-पुरुषम्—भगवान् को; आत्म—आत्मा से; निगूढ—छिपा हुआ; बोधम्—ज्ञान।

हे प्रभु, केवल वैदिक ग्रंथ ही आपके परम स्वरूप का गुह्य ज्ञान प्रकट करने वाले हैं, अतएव भगवान् ब्रह्मा जैसे महान् विद्वान भी आगमन विधियों द्वारा आपको समझने के प्रयास में मोहित हो जाते हैं। हर दार्शनिक अपने विशेष चिन्तनपरक निष्कर्ष के अनुसार आपको समझता है। मैं उन परम पुरुष की पूजा करता हूँ जिनका ज्ञान बद्धात्माओं के आध्यात्मिक स्वरूप को आवृत करने वाली शारीरिक उपाधियों से छिपा हुआ है।

तात्पर्य : ब्रह्मा जैसे बड़े-बड़े देवता तक भगवान् को समझ पाने में विमोहित हो जाते हैं। हर दार्शनिक प्रकृति के गुणों के अनूठे संयोग द्वारा आवृत रहता है और इस तरह वह अपनी भौतिक स्थिति के अनुसार परब्रह्म का वर्णन करता है। इस तरह कठिन से कठिन आगमन प्रयास से भी समस्त ज्ञान का अन्त नहीं पाया जा सकता। सर्वोच्च ज्ञान तो भगवान् कृष्ण हैं और कोई भी व्यक्ति उनको पूर्ण समर्पण करके तथा प्रेमपूर्वक सेवा करके ही उन्हें समझ सकता है। इसीलिए मार्कण्डेय यहाँ पर कहते हैं—*वन्दे महापुरुषम्*—मैं उन महापुरुष की पूजा करता हूँ। जो लोग ईश्वर की पूजा करते हैं किन्तु साथ ही चिन्तन करते रहते हैं अथवा सकाम कर्मों में लगे रहते हैं, उन्हें मिश्रित तथा मोह में डालने वाले परिणाम मिलते हैं। शुद्ध होने के लिए भक्त को सारे सकाम कर्म तथा मानसिक चिन्तन त्याग देने चाहिए। उसी विधिसे, भगवान् के प्रति प्रेमाभक्ति से, उसे ब्रह्म का पूरा ज्ञान प्राप्त होगा। यही पूर्ण ज्ञान नित्य आत्मा को तुष्ट कर सकता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''मार्कण्डेय द्वारा नर-नारायण ऋषि की स्तुति'' नामक आठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter नौ

मार्कण्डेय ऋषि को भगवान् की मायाशक्ति के दर्शन

इस अध्याय में मार्कण्डेय ऋषि द्वारा भगवान् की मायाशक्ति का दर्शन करने का वर्णन हुआ है।

श्री मार्कण्डेय द्वारा की गई स्तुतियों से प्रसन्न होकर, भगवान् ने उनसे वर माँगने को कहा तो ऋषि ने कहा कि वे भगवान् की मायाशक्ति का दर्शन करना चाहते हैं। मार्कण्डेय के समक्ष नर-नारायण रूप में उपस्थित श्री हरि ने उत्तर दिया, ''तथास्तु''। और तब वे बदरिकाश्रम चले गये।

एक दिन जब श्री मार्कण्डेय सन्ध्याकालीन स्तुति कर रहे थे, तो सहसा प्रलय के जल ने तीनों लोकों को आप्लावित कर लिया। वे दीर्घकाल तक अकेले ही इस जल में बड़ी मुश्किल से इधर-उधर विचरण करते रहे, तभी उन्हें एक बरगद का वृक्ष मिला। उस वृक्ष के एक पत्ते पर एक बालक लेटा था, जो मनोहारी तेज से दमक रहा था। ज्योंही मार्कण्डेय इस पत्ते की ओर लपके कि वे बालक के श्वास द्वारा आकृष्ट हो गये और एक मच्छर की तरह उसके शरीर के भीतर चले गये।

बालक के शरीर के भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रलयकाल के पहले जैसा देख कर मार्कण्डेय चकित थे। क्षण-भर बाद ऋषि शिशु के निःश्वास द्वारा बाहर प्रलय के सागर में पुनः फेंक दिए गए। तब यह देख कर कि उस पत्ते पर पड़ा बालक वास्तव में श्री हरि हैं, जो उन्हीं के हृदय में स्थित दिव्य भगवान् हैं, तो श्री मार्कण्डेय ने उनका आलिंगन करना चाहा। किन्तु तभी योगेश्वर भगवान् हरि अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् प्रलय का जल भी अन्तर्धान हो गया और श्री मार्कण्डेय ने अपने को पहले की तरह अपने आश्रम में पाया।

सूत उवाच

संस्तुतो भगवानित्थं मार्कण्डेयेन धीमता ।
नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; संस्तुतः—भलीभाँति स्तुति किये जाने पर; भगवान्—भगवान्; इत्थम्—इस तरह; मार्कण्डेयेन—मार्कण्डेय द्वारा; धी-मता—बुद्धिमान मुनि; नारायणः—नारायण; नर-सखः—नर के मित्र; प्रीतः—प्रसन्न; आह—बोले; भृगु-उद्वहम्—अत्यन्त प्रसिद्ध भृगुवंशी से।

सूत गोस्वामी ने कहा : नर के मित्र, भगवान् नारायण, बुद्धिमान मुनि मार्कण्डेय द्वारा की गई उपयुक्त स्तुति से तुष्ट हो गये। अतः वे उन श्रेष्ठ भृगवंशी से बोले।

श्रीभगवानुवाच

भो भो ब्रह्मर्षिवर्योऽसि सिद्ध आत्मसमाधिना ।
मयि भक्त्यानपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; भोः भोः—हे मुनि; ब्रह्म-ऋषि—समस्त विद्वान ब्राह्मणों में; वर्यः—श्रेष्ठ; असि—हो; सिद्धः—सिद्ध; आत्म-समाधिना—आत्मा पर स्थिर ध्यान से; मयि—मुझमें; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; अनपायिन्या—अविचल; तपः—तपस्या; स्वाध्याय—वेदाध्ययन; संयमैः—तथा विधि-विधानों द्वारा।

भगवान् ने कहा : हे मार्कण्डेय, तुम सचमुच ही समस्त विद्वान ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हो। तुमने परमात्मा पर ध्यान स्थिर करके तथा अपनी अविचल भक्ति, अपनी तपस्या, अपने वेदाध्ययन एवं विधि-विधानों के प्रति अपनी तत्परता मुझ पर केन्द्रित करते हुए, अपने जीवन को सफल बना लिया है।

वयं ते परितुष्टाः स्म त्वद्बृहद्व्रतचर्यया ।
वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदोऽस्मि त्वदीप्सितम् ॥ ३॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; ते—तुमसे; परितुष्टाः—पूर्णतया तुष्ट; स्म—हो चुके हैं; त्वत्—तुम्हारा; बृहत्-व्रत—आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की; चर्यया—सम्पन्नता द्वारा; वरम्—वर; प्रतीच्छ—चुनो; भद्रम्—कल्याण हो; ते—तुम्हारा; वर-दः—वर देने वाले; अस्मि—मैं हूँ; त्वत्-ईप्सितम्—आपके द्वारा चाहा हुआ।

हम तुम्हारे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत से पूर्णतया तुष्ट हैं। अब जो वर चाहो, चुन लो क्योंकि मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर सकता हूँ। तुम समस्त सौभाग्य का भोग करो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि भगवान् ने इस श्लोक के प्रारम्भ में बहुवचन ''हम'' का प्रयोग किया है क्योंकि वे अपना उल्लेख शिव तथा उमा के साथ-साथ कर रहे थे जिनकी स्तुति बाद में मार्कण्डेय द्वारा की जायेगी। तब भगवान् ने एकवचन ''मैं'' का प्रयोग किया क्योंकि अन्ततः, एकमात्र भगवान् नारायण (कृष्ण) ही जीवन की सर्वोच्च सिद्धि—शाश्वत कृष्णभावनामृत—प्रदान कर सकते हैं।

श्रीऋषिरुवाच
जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ।
वरेणैतावतालं नो यद्भवान्समदृश्यत ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषिः उवाच—ऋषि ने कहा; जितम्—विजयी हों; ते—आप; देव-देव-ईश—हे ईशों के भी ईश; प्रपन्न—शरणागत; आर्ति-हर—हे कष्टों को दूर करने वाले; अच्युत—हे अच्युत; वरेण—वर से; एतावता—इतना; अलम्—पर्याप्त; नः—हमारे द्वारा; यत्—जो; भवान्—आपने; समदृश्यत—देखे जा चुके।

ऋषि ने कहा : हे देव-देवेश, आपकी जय हो। हे अच्युत, आप उन भक्तों का सारा कष्ट दूर कर देते हैं, जो आपके शरणागत हैं। आपने मुझे अपना दर्शन करने की अनुमति दी, यही मेरे द्वारा चाहा गया वर है।

गृहीत्वाजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् ।
मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षिगोचरः ॥ ५॥

शब्दार्थ

गृहीत्वा—पाकर; अज-आदयः—ब्रह्मा तथा अन्य; यस्य—जिसके; श्रीमत्—सर्व ऐश्वर्यवान्; पाद-अब्ज—चरणकमलों का; दर्शनम्—दर्शन; मनसा—मन से; योग-पक्वेन—योग में परिपक्व; सः—वह; भवान्—आप; मे—मेरी; अक्षि—आँखों को; गो-चरः—दृश्य।

ब्रह्मा जैसे देवताओं ने आपके सुन्दर चरणकमलों का दर्शन करके ही उच्च पद प्राप्त किया क्योंकि उनके मन योगाभ्यास से परिपक्व हो चुके थे। और हे प्रभु, अब आप मेरे समक्ष साक्षात् प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : मार्कण्डेय ऋषि इंगित करते हैं कि ब्रह्मा जैसे उच्च देवताओं ने भगवान् के

चरणकमलों का दर्शन करके ही उच्च पद प्राप्त किया, तो भी मार्कण्डेय ऋषि भगवान् कृष्ण का अब पूरा शरीर देख पा रहे थे। इस तरह वे अपने सौभाग्य की हद की कल्पना तक नहीं कर पाये।

अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ।
द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अथ अपि—तो भी; अम्बुज-पत्र—कमल की पंखड़ियों जैसी; अक्ष—आँखों वाले हे; पुण्य-श्लोक—प्रसिद्ध पुरुषों के; शिखामणे—हे शिरोमणि; द्रक्ष्ये—मैं देखना चाहता हूँ; मायाम्—मायाशक्ति को; यया—जिससे; लोकः—सम्पूर्ण जगत; स-पालः—अधिष्ठाता देवताओं सहित; वेद—मानता है; सत्—परम सत्य का; भिदाम्—भौतिक अन्तर।

हे कमलनयन, हे विख्यात पुरुषों के शिरोमणि, यद्यपि मैं मात्र आपका दर्शन करके तुष्ट हूँ किन्तु मैं आपकी मायाशक्ति को देखना चाहता हूँ जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण जगत तथा उसके अधिष्ठाता देवता सत्य को भौतिक दृष्टि से विविधतापूर्ण मानते हैं।

तात्पर्य : बद्धजीव भौतिक जगत को स्वतंत्र पृथक् जीवों से बना हुआ मानता है। वस्तुतः सारी वस्तुएँ भगवान् की शक्तियाँ होने से एक में मिली हुई हैं। मार्कण्डेय ऋषि यह देखने के लिए उत्सुक हैं कि वह कौन-सी विधि है, जिससे भगवान् की मोहिनी शक्ति *माया,* जीवों को मोह में डाल देती है।

सूत उवाच
इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान्मुने ।
तथेति स स्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इन शब्दों द्वारा; ईडितः—स्तुति किये गये; अर्चितः—पूजित; कामम्—संतोषजनक रूप से; ऋषिणा—मार्कण्डेय ऋषि द्वारा; भगवान्—भगवान्; मुने—हे विज्ञ शौनक; तथा इति—तथास्तु, ऐसा ही हो; सः—वह; स्मयन्—मुसकाते हुए; प्रागात्—चले गये; बदरी-आश्रमम्—बदरिकाश्रम; ईश्वरः—भगवान्।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे विज्ञ शौनक, मार्कण्डेय की स्तुति तथा पूजा से इस तरह तुष्ट हुए भगवान् ने हँसते हुए उत्तर दिया ''तथास्तु'' और तब बदरिकाश्रम स्थित अपनी कुटिया चले गये।

तात्पर्य : इस श्लोक में *भगवान्* तथा *ईश्वर* शब्द परमेश्वर के नर तथा नारायण दो मुनि अवतारों के द्योतक हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् इसलिए खेदपूर्वक हँसे क्योंकि वे चाहते हैं कि उनके भक्त उनकी मायाशक्ति से दूर रहते जाँए। भगवान् की मायाशक्ति देखने की उत्सुकता से कभी कभी पापपूर्ण भौतिक इच्छा उत्पन्न हो सकती है। तो भी, अपने भक्त मार्कण्डेय को प्रसन्न करने के लिए भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली जिस तरह कि कोई पिता, जो अपने पुत्र को किसी हानिप्रद इच्छा को छोड़ने के लिए आश्वस्त नहीं कर पाता, तो वह उसे कुछ कष्ट भोगने देता है, जिससे वह स्वेच्छा से उससे विरत हो सके। इस तरह, यह जानते

हुए कि मार्कण्डेय पर क्या बीतने वाली है, भगवान् अपनी मायाशक्ति दिखाने की तैयारी करते हुए हँसे।

तमेव चिन्तयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ।
वसन्नग्न्यर्कसोमाम्बुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८ ॥
ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् ।
क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसम्प्लुतः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; एव—निस्सन्देह; चिन्तयन्—सोचते हुए; अर्थम्—लक्ष्य को; ऋषिः—मार्कण्डेय; स्व-आश्रमे—अपनी कुटिया में; एव—निस्सन्देह; सः—वह; वसन्—रहते हुए; अग्नि—अग्नि; अर्क—सूर्य; सोम—चन्द्रमा; अम्बु—जल; भू—पृथ्वी; वायु—हवा; वियत्—बिजली; आत्मसु—तथा अपने हृदय में; ध्यायन्—ध्यान करते हुए; सर्वत्र—सभी परिस्थितियों में; च—तथा; हरिम्—भगवान् हरि को; भाव-द्रव्यैः—मन में कल्पित साज-सामग्री से; अपूजयत्—पूजा की; क्वचित्—कभी; पूजाम्—पूजा; विसस्मार—भूल गया; प्रेम—ईश्वर-प्रेम की; प्रसर—बाढ़ में; सम्प्लुतः—डूब जाने से।

मार्कण्डेय ऋषि, भगवान् की माया का दर्शन करने की इच्छा के विषय में सदैव सोचते हुए, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, जल, पृथ्वी, वायु, बिजली से तथा अपने हृदय में भगवान् का निरन्तर ध्यान करते हुए और अपने मन में कल्पित साज-सामग्री से उनकी पूजा करते हुए, अपने आश्रम (कुटिया) में रहते रहे। किन्तु कभी कभी भगवत्प्रेम की तरंगों से अभिभूत होकर वे नियमित पूजा करना भूल जाते।

तात्पर्य : इन श्लोकों से आभास मिलता है कि मार्कण्डेय ऋषि भगवान् कृष्ण के बहुत बड़े भक्त थे, इसलिए वे भगवान् का दर्शन यह जानने के लिए करना चाहते थे कि भगवान् की शक्ति किस तरह कार्य करती है, न कि किसी भौतिक आकांक्षा की पूर्ति के लिए।

तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः ।
उपासीनस्य सन्ध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तस्य—जब वह; एकदा—एक दिन; भृगु-श्रेष्ठ—हे भृगुवंशियों में सर्वश्रेष्ठ; पुष्पभद्रा-तटे—पुष्पभद्रा नदी के तट पर; मुनेः—मुनि के; उपासीनस्य—पूजा कर रहे थे; सन्ध्यायाम्—दिन की संधि पर; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; वायुः—वायु; अभूत्—चलने लगी; महान्—तेज।

हे ब्राह्मण शौनक, हे भृगुश्रेष्ठ, एक दिन जब मार्कण्डेय पुष्पभद्रा नदी के तट पर संध्याकालीन पूजा कर रहे थे तो सहसा तेज वायु चलने लगी।

तं चण्डशब्दं समुदीरयन्तं
बलाहका अन्वभवन्कराला: ।
अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः

स्वनन्त उच्चैरभि वर्षधाराः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तम्—वह वायु; चण्ड-शब्दम्—भयंकर शब्द; समुदीरयन्तम्—उत्पन्न करता हुआ; बलाहकाः—बादल; अनु—पीछे-पीछे; अभवन्—प्रकट हुए; करालाः—भयानक; अक्ष—पहिये की तरह; स्थविष्ठाः—ठोस; मुमुचुः—छोड़ा; तडिद्भिः—बिजली के साथ; स्वनन्तः—गूँजते; उच्चैः—तेज; अभि—सभी दिशाओं; वर्ष—वर्षा की; धाराः—धारा।

उस वायु ने भयंकर शब्द उत्पन्न किया और अपने साथ भयावने बादल लेती आई जिनके साथ बिजली तथा गर्जना थी और जिन्होंने सभी दिशाओं में गाड़ी के पहियों जितनी भारी मूसलाधार वर्षा की।

ततो व्यदृश्यन्त चतुः समुद्राः
समन्ततः क्ष्मातलमाग्रसन्तः ।
समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्र-
महाभयावर्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; व्यदृश्यन्त—प्रकट हुए; चतुः समुद्रः—चार सागर; समन्ततः—सभी दिशाओं में; क्ष्मा-तलम्—पृथ्वी की सतह पर; आग्रसन्तः—निगलते हुए; समीर—वायु का; वेग—वेग; ऊर्मिभिः—लहरों से; उग्र—भयंकर; नक्र—मगरों से; महा-भय—अत्यन्त भयावह; आवर्त—भँवरों से; गभीर—गम्भीर; घोषाः—शब्द।

तब सभी दिशाओं में चार महासागर प्रकट हो गये जो वायु से उछाली गई लहरों से पृथ्वी की सतह को निगल रहे थे। इन महासागरों में भयानक मगर थे, भयानक भँवरें थीं तथा अमांगलिक-गर्जन हो रहा था।

अन्तर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिः खरैः
शतह्रदाभिरुपतापितं जगत् ।
चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनि-
र्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अन्तः—भीतर से; बहिः—बाहर से; च—तथा; अद्भिः—जल से; अति-द्युभिः—आकाश से भी ऊपर उठती; खरैः—प्रचण्ड (वायु से); शत-ह्रदाभिः—बिजली की चमक से; उपतापितम्—अत्यन्त दुखी; जगत्—ब्रह्माण्ड के सारे निवासी; चतुः-विधम्—चार प्रकार के (उद्भिज, अण्डज, स्वेदज, जरायुज); वीक्ष्य—देख कर; सह—साथ; आत्मना—अपने; मुनिः—मुनि; जल—जल से; आप्लुताम्—आप्लावित; क्ष्माम्—पृथ्वी; विमनाः—उदास; समत्रसत्—डर गया।

ऋषि ने अपने सहित ब्रह्माण्ड के सारे निवासियों को देखा जो तेज वायु, बिजली के वज्रपात तथा आकाश से भी ऊपर तक उठने वाली बड़ी-बड़ी लहरों से भीतर और बाहर से सताये जा रहे थे। ज्योंही सारी पृथ्वी जलमग्न हो गई, वे उदास तथा भयभीत हो उठे।

तात्पर्य : यहाँ पर *चतुर्विधम्* शब्द बद्धजीवों के जन्म के चार स्रोतों—भ्रूण, अण्डे, बीज तथा स्वेद—का सूचक है।

तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः
प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णवः ।
आपूर्यमाणो वरषद्भिरम्बुदैः
क्ष्मामप्यधाद्द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

तस्य—जब वे; एवम्—इस तरह; उद्वीक्षतः—देख रहे थे; ऊर्मि—लहरें; भीषणः—भयावनी; प्रभञ्जन—अंधड़ से; आघूर्णित—चक्कर काटता; वाः—जल; महा-अर्णवः—महासागर; आपूर्यमानः—भर कर; वरषद्भिः—वर्षा से; अम्बु-दैः—बादलों से; क्ष्माम्—पृथ्वी को; अप्यधात्—ढक लिया; द्वीप—द्वीप; वर्ष—महाद्वीप; अद्रिभिः—पर्वतों को; समम्—एकसाथ।

मार्कण्डेय के देखते-देखते बादल से हो रही वर्षा समुद्र को भरती रही जिससे महासागर के जल ने अंधड़ द्वारा भयानक लहरों के उठने से पृथ्वी के द्वीपों, पर्वतों तथा महाद्वीपों को ढक लिया।

सक्ष्मान्तरिक्षं सदिवं सभागणं
त्रैलोक्यमासीत्सह दिग्भिराप्लुतम् ।
स एक एवोर्वरितो महामुनि-
र्बभ्राम विक्षिप्य जटा जडान्धवत् ॥ १५॥

शब्दार्थ

स—सहित; क्ष्मा—पृथ्वी; अन्तरिक्षम्—तथा बाह्य अवकाश; स-दिवम्—स्वर्गलोकों सहित; स-भा-गणम्—समस्त स्वर्गिक पिंडों समेत; त्रै-लोक्यम्—तीनों लोकों; आसीत्—हो गया; सह—सहित; दिग्भिः—सारी दिशाएँ; आप्लुतम्—जल से मग्न; सः—वह; एकः—अकेला; एव—निस्सन्देह; उर्वरितः—बचे हुए; महा-मुनिः—महामुनि; बभ्राम—घूमता रहा; विक्षिप्य—छितराये; जटाः—अपनी जटाएँ; जड—मूक व्यक्ति; अन्ध—अन्धा व्यक्ति; वत्—सदृश।

जल ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग तथा स्वर्ग-क्षेत्र को आप्लावित कर दिया। निस्सन्देह, सारा ब्रह्माण्ड सभी दिशाओं में जलमग्न था और उसके सारे निवासियों में से एकमात्र मार्कण्डेय ही बचे थे। उनकी जटाएँ छितरा गई थीं और ये महामुनि जल में अकेले इधर-उधर घूम रहे थे मानो मूक तथा अंधे हों।

क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिङ्गिलै-
रुपद्रुतो वीचिनभस्वताहतः ।
तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो
न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६॥

शब्दार्थ

क्षुत्—भूख; तृट्—तथा प्यास से; परीतः—घिरे हुए; मकरैः—मकरों द्वारा; तिमिङ्गिलैः—तथा तिमिंगलों अर्थात् ह्वेल को भी खा जाने वाली विशाल मछली के द्वारा; उपद्रुतः—सताये हुए; वीचि—लहरों; नभस्वता—तथा वायुद्वारा; आहतः—

सताये हुए; तमसि—अंधकार में; अपारे—असीम; पतितः—गिरे हुए; भ्रमन्—घूमते हुए; दिशः—दिशाएँ; न वेद—ज्ञान नहीं रहा; खम्—आकाश; गाम्—पृथ्वी; च—तथा; परिश्रम-इषितः—थका हुआ।

भूख-प्यास से सताये, दैत्याकार मकरों तथा विमिंगिल मछलियों द्वारा हमला किये गये तथा वायु और लहरों से त्रस्त, वे उस अपार अंधकार में निरुद्देश्य घूमते रहे जिसमें वे गिर चुके थे। जब वे अत्यधिक थक गये तो उन्हें दिशाओं की सुधि न रही और वे आकाश तथा पृथ्वी में भेद नहीं कर पा रहे थे।

क्वचिन्मग्नो महावर्ते तरलैस्ताडितः क्वचित् ।
यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योन्यघातिभिः ॥ १७॥

क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् ।
क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥ १८॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; मग्नः—डूबते हुए; महा-आवर्ते—भारी भँवर में; तरलैः—लहरों से; ताडितः—थपेड़े खाकर; क्वचित्—कभी; यादोभिः—जल-जन्तुओं द्वारा; भक्ष्यते—खाये जाने से आशंकित; क्व अपि—कभी; स्वयम्—स्वयं; अन्योन्य—परस्पर; घातिभिः—आक्रमण करते हुए; क्वचित्—कभी; शोकम्—उदासी; क्वचित्—कभी; मोहम्—मोह; क्वचित्—कभी; दुःखम्—कष्ट; सुखम्—सुख; भयम्—भय; क्वचित्—कभी; मृत्युम्—मृत्यु; अवाप्नोति—अनुभव करता; व्याधि—रोग; आदिभिः—इत्यादि से; उत—भी; अर्दितः—पीड़ित।

कभी वे भारी भँवर में फँस जाते, कभी प्रबल लहरों के थपेड़े खाते, कभी जल-दैत्यों के परस्पर आक्रमण करने पर उनके द्वारा निगले जाने से आशंकित हो उठते। कभी उन्हें शोक, मोह, दुख, सुख या भय का अनुभव होता तो कभी उन्हें ऐसी भयानक बीमारी तथा पीड़ा का अनुभव होता जैसे कि वे मरे जा रहे हों।

अयुतायतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ।
व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९॥

शब्दार्थ

अयुत—दस हजार का; अयुत—दस हजार गुणा; वर्षाणाम्—वर्षों के; सहस्राणि—हजारों; शतानि—सैकड़ों; च—तथा; व्यतीयुः—बीत गये; भ्रमतः—विचरण करते हुए; तस्मिन्—उसमें; विष्णु-माया—भगवान् विष्णु की माया से; आवृत—आच्छादित; आत्मनः—मन।

मार्कण्डेय को उस जलप्लावन में इधर-उधर घूमते करोड़ों वर्ष बीत गये; उनका मन भगवान् विष्णु की माया से विमोहित था।

स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि द्विजः ।
न्याग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥ २०॥

शब्दार्थ

सः—उसने; कदाचित्—एक बार; भ्रमन्—विचरण करते हुए; तस्मिन्—उस जल में; पृथिव्याः—पृथ्वी के; ककुदि—उठे स्थान पर; द्विजः—ब्राह्मण ने; न्यग्रोध-पोतम्—एक छोटा बरगद का पेड़; ददृशे—देखा; फल—फलों; पल्लव—तथा कोपलों से; शोभितम्—सुशोभित।

एक बार जल में विचरण करते हुए ब्राह्मण मार्कण्डेय ने एक छोटा टापू (द्वीप) देखा जिस पर एक छोटा बरगद का पेड़ खड़ा था जिसमें फल-फूल लगे थे।

प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् ।
शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

प्राक्-उत्तरस्याम्—उत्तर पूर्व की ओर; शाखायाम्—एक शाखा में; तस्य—उस वृक्ष की; अपि—निस्सन्देह; ददृशे—देखा; शिशुम्—एक शिशु को; शयानम्—लेटे हुए; पर्ण-पुटके—पत्ते के गर्त के भीतर; ग्रसन्तम्—निगलते हुए; प्रभया—उसके तेज से; तमः—अँधेरा।

उन्होंने उस वृक्ष की उत्तर-पूर्व की एक शाखा में एक पत्ते के भीतर एक शिशु को लेटे देखा। इस शिशु का तेज अंधकार को लील रहा था।

महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम् ।
कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनसं सुन्दरभ्रुवम् ॥ २२ ॥
श्वासैजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम् ।
विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥
पद्मगर्भारुणापाङ्गं हृद्यहासावलोकनम् ।
श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥ २४ ॥
चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम् ।
मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

महा-मरकत—महामरकत मणि की तरह; श्यामम्—गहरा नीला; श्रीमत्—सुन्दर; वदन-पङ्कजम्—जिसका कमल जैसा मुख; कम्बु—शंख जैसा; ग्रीवम्—गर्दन; महा—चौड़ा; उरस्कम्—छाती, वक्षस्थल; सु-नसम्—सुन्दर नाक वाली; सुन्दर-भ्रुवम्—सुन्दर भौंहों वाला; श्वास—उनकी श्वास से; एजत्—हिलती; अलक—बाल से; आभातम्—शानदार; कम्बु—शंख जैसा; श्री—सुन्दर; कर्ण—कान; दाडिमम्—अनार के फूल जैसा; विद्रुम—मूँगा जैसा; अधर—होंठों का; भासा—तेज से; ईषत्—कुछ-कुछ; शोणायित—लाल हुआ; सुधा—अमृत जैसी; स्मितम्—मुसकान; पद्म-गर्भ—कमल के कोश जैसा; अरुण—लाल; अपाङ्गम्—आँखों के कोर; हृद्य—मनोहर; हास—हँसी से युक्त; अवलोकनम्—मुखमण्डल; श्वास—उनकी श्वास से; एजत्—हिलाया गया; वलि—रेखाओं से; संविग्न—मोड़ी हुई; निम्न—गहरी; नाभि—नाभि से; दल—पत्ते की तरह; उदरम्—जिसका पेट; चारु—आकर्षक; अङ्गुलिभ्याम्—अंगुलियों वाले; पाणिभ्याम्—दोनों हाथों से; उन्नीय—उठाते हुए; चरण-अम्बुजम्—अपना चरणकमल; मुखे—मुँह में; निधाय—डाल कर; विप्र-इन्द्रः—ब्राह्मण-श्रेष्ठ, मार्कण्डेय; धयन्तम्—पीते हुए; वीक्ष्य—देख कर; विस्मितः—चकित।

बालक का गहरा नीला रंग निष्कलंक मरकत जैसा था; उसका कमल मुखमण्डल अपार सौंदर्य के कारण चमक रहा था और उसकी गर्दन में शंख जैसी रेखाएँ थीं। उसका

वक्षस्थल चौड़ा, नाक सुन्दर आकार वाली, भौंहे सुन्दर तथा अनार के फूलों जैसे सुन्दर कान थे जिसके भीतर के वलन शंख के घुमावों जैसे थे। उसकी आँखों के कोर कमल के कोश जैसे लाल रंग के थे और मूँगे जैसे होठों का तेज उसके मुखमण्डल की सुधामयी मोहनी मुसकान को लाल-लाल बना रहा था। जब वह साँस लेता, उसके सुन्दर बाल हिलते थे और गहरी नाभि उसके बरगद के पत्ते जैसे उदर की चमड़ी के हिलते वलनों से विकृत होती थी। वह ब्राह्मण-श्रेष्ठ आश्चर्य से उस बालक को देख रहा था, जो अपने एक चरणकमल को अपनी सुन्दर सुन्दर अंगुलियों से पकड़ कर अपने मुँह में डाल कर चूस रहा था।

तात्पर्य : यह शिशु स्वयं भगवान् था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् कृष्ण को आश्चर्य हुआ, ''इतने भक्तगण मेरे चरणकमल के अमृत के लिए लालायित रहते हैं, अतएव मैं स्वयं उस अमृत का अनुभव क्यों न करूँ।'' इस तरह एक सामान्य बालक की तरह खेल रहे भगवान् नेअपना अँगूठा चूसना शुरू कर दिया।

तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा
प्रोत्फुल्लहृत्पौल्मविलोचनाम्बुजः ।
प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशङ्कितः
प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तत्-दर्शनात्—उस शिशु का दर्शन करने से; वीत—दूर हो गया; परिश्रमः—थकान; मुदा—हर्ष के कारण; प्रोत्फुल्ल—खिल उठा; हृत्-पद्म—हृदय का कमल; विलोचन-अम्बुजः—तथा उसकी कमल जैसी आँखें; प्रहृष्ट—खड़े हो गये; रोमा—शरीर के रोएँ; अद्भुत-भाव—इस अद्भुत रूप की पहचान के बारे में; शङ्कितः—शंकालु; प्रष्टुम्—पूछने के लिए; पुरः—आगे; तम्—उसके; प्रससार—पास गया; बालकम्—बालक के।

जैसे ही मार्कण्डेय ने बालक को देखा उनकी सारी थकान जाती रही। निस्सन्देह उनको इतनी अधिक प्रसन्नता हुई कि उनका हृदय तथा उनके नेत्र कमल की भाँति पूरी तरह प्रफुल्लित हो उठे और उन्हें रोमांच हो आया। इस बालक की अद्भुत पहचान के विषय में शंकित मुनि उसके पास पहुँचे।

तात्पर्य : मार्कण्डेय उस बालक से उसकी पहचान पूछना चाहते थे, इसीलिए वे उसके पास गये।

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः
सोऽन्तः शरीरं मशको यथाविशत् ।
तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो
यथा पुरामुह्यदतीव विस्मितः ॥ २७॥

शब्दार्थ

तावत्—उसी क्षण; शिशोः—शिशु का; वै—निस्सन्देह; श्वसितेन—श्वास लेने से; भार्गवः—भृगुवंशी; सः—वह; अन्तः शरीरम्—शरीर के भीतर; मशकः—मच्छर; यथा—जिस तरह; अविशत्—घुस गया; तत्र—वहाँ पर; अपि—निस्सन्देह; अदः—यह ब्रह्माण्ड; न्यस्तम्—रखा हुआ; अचष्ट—उसने देखा; कृत्स्नशः—समूचा; यथा—जिस तरह; पुरा—पहले; अमुह्यत्—विमोहित हो चुका था; अतीव—अत्यधिक; विस्मितः—चकित।

तभी उस शिशु ने श्वास ली जिससे मार्कण्डेय मच्छर की तरह उसके शरीर के भीतर खिंच गये। वहाँ पर ऋषि ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रलय के पूर्व की स्थिति में सुव्यवस्थित पाया। यह देख कर मार्कण्डेय अत्यधिक आश्चर्यचकित तथा मोहग्रस्त हो गए।

खं रोदसी भागणानद्रिसागरान्
द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान् ।
वनानि देशान्सरितः पुराकरान्
खेटान्व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥
महान्ति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ
कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ।
यत्किञ्चिदन्यद्व्यवहारकारणं
ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

खम्—आकाश; रोदसी—स्वर्ग तथा पृथ्वी; भा-गणान्—सारे तारों; अद्रि—पर्वत; सागरान्—तथा सागरों; द्वीपान्—बड़े-बड़े द्वीपों; स-वर्षान्—महाद्वीपों समेत; ककुभः—दिशाओं; सुर-असुरान्—सन्त भक्तों तथा असुरों; वनानि—जंगलों; देशान्—विविध देशों; सरितः—नदियों; पुर—नगरों; आकरान्—तथा खानों; खेटान्—खेतिहर गाँवों; व्रजान्—चरागाहों; आश्रम-वर्ण—विभिन्न आश्रमों तथा वर्णों; वृत्तयः—पेशों; महान्ति भूतानि—प्रकृति के मूल तत्त्वों; अथ—तथा; भौतिकानि—स्थूल रूपों को; असौ—उसने; कालम्—काल; च—तथा; नाना-युग-कल्प—विभिन्न युग तथा ब्रह्मा का दिन; कल्पनम्—नियामककारक; यत् किञ्चित्—जो कुछ भी; अन्यत्—दूसरा; व्यवहार-कारणम्—भौतिक जीवन में काम आने वाली वस्तु; ददर्श—देखा; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; सत्—सत्य; इव—मानो; अवभासितम्—प्रकट।

वहाँ पर मुनि ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखा—आकाश, स्वर्ग तथा पृथ्वी, तारे, पर्वत, सागर, द्वीप तथा महाद्वीप, हर दिशा में विस्तार, सन्त तथा आसुरी जीव, वन, देश, नदियाँ, नगर तथा खानें, खेतिहर गाँव तथा चरागाह, समाज के वर्ण तथा आश्रम। उन्होंने सृष्टि के मूल तत्त्वों तथा उनके गौण उत्पादों के साथ ही साक्षात् काल को देखा जो ब्रह्मा के दिनों में असंख्य युगों को नियमित करता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भौतिक जीवन में काम आने वाली अन्य सारी वस्तुएँ देखीं। उन्होंने अपने समक्ष यह सब देखा जो सत्य जैसा प्रतीत हो रहा था।

हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं
निजाश्रमं यत्र ऋषी अपश्यत ।
विश्वं विपश्यञ्छ्वसिताच्छिशोर्वै

बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

हिमालयम्—हिमालय पर्वत को; पुष्प-वहाम्—पुष्पभद्रा; च—तथा; ताम्—उस; नदीम्—नदी को; निज-आश्रमम्—अपनी कुटिया को; यत्र—जहाँ; ऋषी—दो ऋषि, नर तथा नारायण; अपश्यत—देखा था; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; विपश्यन्—देखते हुए; श्वसितात्—श्वास से; शिशोः—शिशु के; वै—निस्सन्देह; बहिः—बाहर; निरस्तः—निकाला गया; न्यपतत्—गिर पड़ा; लय-अब्धौ—प्रलय के सागर में।

उन्होंने अपने समक्ष हिमालय पर्वत, पुष्पभद्रा नदी तथा अपनी कुटिया देखी जहाँ उन्होंने नर-नारायण ऋषियों के दर्शन किये थे। तत्पश्चात् मार्कण्डेय द्वारा सम्पूर्ण विश्व के देखते-देखते, जब उस शिशु ने श्वास बाहर निकाली तो ऋषि उसके शरीर से बाहर धकेल दिए गए और प्रलय सागर में गिरा दिए गए।

तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं
वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ।
तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन
निरीक्षितोऽपाङ्गनिरीक्षणेन ॥ ३१ ॥
अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि ।
अभ्ययादतिसङ्क्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस जल में; पृथिव्याः—पृथ्वी का; ककुदि—उठे स्थान पर; प्ररूढम्—उगता हुआ; वटम्—बरगद का वृक्ष; च—तथा; तत्—उसके; पर्ण-पुटे—पत्ते के दोने में; शयानम्—लेटे हुए; तोकम्—बालक को; च—तथा; तत्—अपने; प्रेम—प्रेम की; सुधा—अमृत जैसी; स्मितेन—हँसी से; निरीक्षितः—देखा जाकर; अपाङ्ग—आँख के कोरों से; निरीक्षणेन—चितवन से; अथ—तब; तम्—उस; बालकम्—बालक को; वीक्ष्य—देख कर; नेत्राभ्याम्—अपनी आँखों से; धिष्ठितम्—रखते हुए; हृदि—हृदय के भीतर; अभ्ययात्—आगे दौड़ा; अति-सङ्क्लिष्टः—अत्यन्त क्षुब्ध; परिष्वक्तुम्—आलिंगन करने के लिए; अधोक्षजम्—भगवान् को।

उस विशाल सागर में उन्होंने छोटे-से द्वीप पर बरगद के वृक्ष को उगा हुआ और शिशु को पत्ते के भीतर लेटे हुए देखा। वह शिशु उनको अपनी आँखों की कोरों से प्रेम के अमृत से भरी हँसी से देख रहा था। मार्कण्डेय ने उसे अपनी आँखों के द्वारा अपने हृदय में कर लिया। अत्यन्त क्षुब्ध ऋषि भगवान् का आलिंगन करने दौड़े।

तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः ।
अन्तर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तभी; सः—वह; भगवान्—भगवान्; साक्षात्—प्रत्यक्ष; योग-अधीशः—योगेश्वर; गुहा-शयः—समस्त जीवों के हृदयों में छिपे; अन्तर्दधे—अन्तर्धान हो गये; ऋषेः—ऋषि के समक्ष; सद्यः—सहसा; यथा—जिस तरह; ईहा—प्रयास द्वारा वस्तु; अनीश—अक्षम व्यक्ति द्वारा; निर्मिता—बनाई हुई।

तभी भगवान्, जोकि योगेश्वर हैं तथा हर एक के हृदय में छिपे रहते हैं, ऋषि की आँखों

से ओझल हो गये जिस तरह अक्षम व्यक्ति की सारी उपलब्धियाँ सहसा विलीन हो जाती हैं।

तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसम्प्लवः ।
तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तम्—उसके; अनु—पीछे; अथ—तब; वटः—बरगद का वृक्ष; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण, शौनक; सलिलम्—जल; लोक-सम्प्लवः—ब्रह्माण्ड का प्रलय; तिरोधायि—अदृश्य हो गये; क्षणात्—तुरन्त; अस्य—उसके सामने ही; स्व-आश्रमे—अपनी कुटिया में; पूर्व-वत्—पहले की तरह; स्थितः—उपस्थित था।

हे ब्राह्मण, भगवान् के अदृश्य हो जाने पर, वह बरगद का वृक्ष, अपार जल तथा ब्रह्माण्ड का प्रलय—सारे के सारे विलीन हो गये और क्षण-भर में मार्कण्डेय ने पहले की तरह अपने को अपनी कुटिया में पाया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''मार्कण्डेय ऋषि को भगवान् की मायाशक्ति के दर्शन'' शीर्षक नौवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter दस

शिव तथा उमा द्वारा मार्कण्डेय ऋषि का गुणगान

इस अध्याय में श्री सूत गोस्वामी ने वर्णन किया है कि किस तरह मार्कण्डेय ऋषि को शिव से वर मिले।

एक बार जब शिवजी अपनी पत्नी पार्वती समेत आकाश से होकर यात्रा कर रहे थे, तो उन्होंने श्री मार्कण्डेय को ध्यान समाधि में लीन देखा। पार्वती के अनुरोध पर, शिवजी उस ऋषि की तपस्या का फल देने उसके समक्ष उपस्थित हुए। श्री मार्कण्डेय ने समाधि से बाहर आकर तीनों लोक के गुरु शिव तथा पार्वती को देखा और नमस्कार, सत्कार के वचन तथा आसन प्रदान करके उनकी पूजा की।

तब शिवजी ने भगवान् के सन्त भक्तों की प्रशंसा की और श्री मार्कण्डेय से मनवांछित वर माँगने के लिए कहा। उन्होंने भगवान् श्री हरि, भगवान् के भक्तों तथा स्वयं शिवजी के प्रति अविचल भक्ति की याचना की। शिवजी ने मार्कण्डेय की भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें प्रसिद्धि, प्रलय होने तक वृद्धावस्था से मुक्ति, काल की तीनों अवस्थाओं का ज्ञान, त्याग, स्वरूपसिद्ध ज्ञान तथा पुराणों के शिक्षक के पद के वर प्रदान किये।

जो लोग मार्कण्डेय ऋषि की कथा का कीर्तन तथा श्रवण करते हैं, वे भौतिक जीवन से मोक्ष प्राप्त करेंगे जो सकाम कर्म से उत्पन्न संचित इच्छाओं पर आधारित है।

सूत उवाच
स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ।

वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; सः—वह, मार्कण्डेय; एवम्—इस तरह; अनुभूय—अनुभव करके; इदम्—यह; नारायण-विनिर्मितम्—भगवान् नारायण द्वारा निर्मित; वैभवम्—ऐश्वर्यमय प्रदर्शन; योग-मायायाः—अपनी अन्तरंगा योगशक्ति का; तम्—उसकी; एव—निस्सन्देह; शरणम्—शरण में; ययौ—चला गया।

सूत गोस्वामी ने कहा : भगवान् नारायण ने अपनी मोहमयी शक्ति का यह ऐश्वर्यशाली प्रदर्शन नियोजित किया था। इसका अनुभव करके मार्कण्डेय ऋषि ने भगवान् की शरण ग्रहण की।

श्रीमार्कण्डेय उवाच

प्रपन्नोऽस्म्यङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ।
यन्माययापि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥ २॥

शब्दार्थ

श्री-मार्कण्डेयः उवाच—श्री मार्कण्डेय ने कहा; प्रपन्नः—शरणागत; अस्मि—मैं हूँ; अङ्घ्रि-मूलम्—चरणकमलों के तलवों; ते—तुम्हारा; प्रपन्न—शरण लेने वालों का; अभय-दम्—अभय दान देने वाला; हरे—हे हरि; यत्-मायया—जिसकी माया से; अपि—भी; विबुधाः—बुद्धिमान देवता; मुह्यन्ति—मोहित हो जाते हैं; ज्ञान-काशया—जो झूठे ही ज्ञान जैसा प्रतीत होती है।

श्री मार्कण्डेय ने कहा : हे भगवान् हरि, मैं आपके उन चरणकमलों के तलवों की शरण ग्रहण करता हूँ जो उनकी शरण ग्रहण करने वालों को अभय दान देते हैं। बड़े-बड़े देवता भी आपकी माया से जो ज्ञान के वेश में उनके समक्ष प्रकट होती है, मोहित रहते हैं।

तात्पर्य : बद्धजीव भौतिक इन्द्रियतृप्ति के प्रति आकृष्ट होते हैं और वे प्रकृति की करनी का सावधानी से अध्ययन करते हैं। यद्यपि वे वैज्ञानिक ज्ञान में आगे बढ़ते प्रतीत होते हैं किन्तु वे भौतिक देह के साथ अपनी झूठी पहचान में अधिकाधिक फँसते जाते हैं जिससे वे अज्ञान में निमग्न होते रहते हैं।

सूत उवाच

तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ।
रुद्राण्या भगवान्रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; तम्—उसको, मार्कण्डेय ऋषि को; एवम्—इस प्रकार; निभृत-आत्मानम्—समाधि में पूर्णतया निमग्न मन वाला; वृषेण—अपने बैल पर; दिवि—आकाश में; पर्यटन्—यात्रा करते हुए; रुद्राण्या—अपनी प्रिया रुद्राणी (उमा) के साथ; भगवान्—शक्तिशाली प्रभु; रुद्रः—शिव ने; ददर्श—देखा; स्व-गणैः—अपने संगियों से; वृतः—घिरे हुए।

सूत गोस्वामी ने कहा : भगवान् रुद्र ने अपने बैल पर सवार अपनी प्रिया रुद्राणी तथा अपने निजी संगियों के साथ, मार्कण्डेय को समाधि में देखा।

अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ।
पश्येमं भगवन्विप्रं निभृतात्मेन्द्रियाशयम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

अथ—तब; उमा—उमा; तम्—उस; ऋषिम्—ऋषि को; वीक्ष्य—देख कर; गिरिशम्—शिव से; समभाषत—बोलीं; पश्य—देखो न; इमम्—इस; भगवन्—मेरे प्रभु; विप्रम्—विद्वान ब्राह्मण को; निभृत—स्थिर; आत्म-इन्द्रिय-आशयम्—शरीर, इन्द्रियाँ तथा मन।

ऋषि को देख कर देवी उमा ने भगवान् गिरिश से कहा, ''हे प्रभु, जरा इस विद्वान ब्राह्मण को, उसके शरीर, मन तथा इन्द्रियों को समाधि में अचल हुए, देखो।''

निभृतोदझषव्रातो वातापाये यथार्णवः ।
कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ॥ ५॥

शब्दार्थ

निभृत—अचल; उद—जल; झष-व्रातः—तथा मछलियों का झुंड; वात—वायु के; अपाये—बन्द होने पर; यथा—जिस तरह; अर्णवः—समुद्र; कुरु—कीजिये; अस्य—इसकी; तपसः—तपस्या का; साक्षात्—प्रकट; संसिद्धिम्—सिद्धि; सिद्धि-दः—सिद्धि-दाता; भवान्—आप।

वह उस समुद्र के जल की तरह शान्त है जब वायु बन्द हो जाती है और मछलियाँ शान्त हो जाती हैं। इसलिए हे प्रभु, चूँकि आप तपस्या करने वाले को सिद्धि प्रदान करते हैं, इसलिए इस ऋषि को सिद्धि प्रदान करें जोकि उसे मिलनी चाहिए।

श्रीभगवानुवाच
नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ।
भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये ॥ ६॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—शक्तिमान प्रभु ने कहा; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; इच्छति—इच्छा करती है; आशिषः—वर; क्व अपि—किसी भी देश में; ब्रह्म-ऋषिः—सन्त ब्राह्मण; मोक्षम्—मोक्ष; अपि उत—ही; भक्तिम्—भक्ति; पराम्—दिव्य; भगवति—भगवान् के लिए; लब्धवान्—प्राप्त किया है; पुरुषे—भगवान् के लिए; अव्यये—अव्यय।

शिवजी ने उत्तर दिया : निश्चय ही, यह सन्त ब्राह्मण किसी वर की यहाँ तक कि मोक्ष तक की भी कामना नहीं करता क्योंकि इसने भगवान् अव्यय की शुद्ध भक्ति प्राप्त कर ली है।

तात्पर्य : *नैवेच्छत्याशिषः क्वापि* सूचित करता है कि मार्कण्डेय ऋषि इस ब्रह्माण्ड के किसी भी लोक में प्राप्य किसी वर में रुचि नहीं रखते थे। न ही, उन्हें कोई इच्छा थी क्योंकि उन्होंने स्वयं भगवान् को प्राप्त कर लिया था।

अथापि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ।
अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७॥

शब्दार्थ

अथ अपि—तो भी; संवदिष्यामः—हम बात करेंगे; भवानि—हे भवानी; एतेन—इस; साधुना—शुद्ध भक्त से; अयम्—यह; हि—निस्सन्देह; परमः—सर्वोत्तम; लाभः—लाभ; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; साधु-समागमः—सन्त भक्तों की संगति।

तो भी हे भवानी, चलो हम इस सन्त पुरुष से बातें करें। आखिर सन्त भक्तों की संगति मनुष्य की सर्वोच्च उपलब्धि है।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान्स सतां गतिः ।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कह कर; तम्—उस ऋषि के पास; उपेयाय—जाकर; भगवान्—वरिष्ठ देवता; सः—वह; सताम्—शुद्ध आत्माओं के; गतिः—शरण; ईशानः—स्वामी; सर्व-विद्यानाम्—विद्या की समस्त शाखाओं के; ईश्वरः—नियन्ता; सर्व-देहिनाम्—समस्त देहधारी जीवों के।

सूत गोस्वामी ने कहा : इस तरह कहने के बाद, शुद्धात्माओं के आश्रय, समस्त आध्यात्मिक विद्याओं के स्वामी तथा समस्त देहधारी जीवों के नियन्ता भगवान् शंकर उस ऋषि के पास गये।

तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ।
न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों का; आगमनम्—आना; साक्षात्—स्वयं; ईशयोः—शक्तिमान पुरुषों का; जगत्-आत्मनोः—ब्रह्माण्ड के नियन्ताओं का; न वेद—नहीं देख पाया; रुद्ध—रुका हुआ; धी-वृत्तिः—मन की गति; आत्मानम्—स्वयं; विश्वम्—बाह्य ब्रह्माण्ड; एव—निस्सन्देह; च—भी।

चूँकि मार्कण्डेय का भौतिक मन कार्य करना बन्द कर चुका था अतएव वे ब्रह्माण्ड के नियन्ता शिव तथा उनकी पत्नी का आना देख नहीं पाये, जो स्वयं उन्हें देखने आये थे। मार्कण्डेय ध्यान में इतने लीन थे कि उन्हें अपनी या बाह्य जगत की कोई सुधि-बुधि नहीं थी।

भगवांस्तदभिज्ञाय गिरिशो योगमायया ।
आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

भगवान्—महापुरुष; तत्—उस; अभिज्ञाय—समझ कर; गिरिशः—भगवान् गिरिश ने; योग-मायया—अपनी योगशक्ति से; आविशत्—प्रवेश किया; तत्—मार्कण्डेय के; गुहा-आकाशम्—हृदय के गुप्त आकाश में; वायुः—वायु; छिद्रम्—छेद; इव—सदृश; ईश्वरः—प्रभु।

स्थिति से भलीभाँति परिचित होने पर, शक्तिमान भगवान् शिव ने मार्कण्डेय के हृदय-

आकाश के भीतर प्रविष्ट होने के लिए अपनी योगशक्ति का प्रयोग किया जिस तरह वायु छेद में से प्रवेश कर जाती है।

आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिङ्गजटाधरम् ।
त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ११ ॥
व्याघ्रचर्माम्बरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः ।
अक्षमालाडमरुककपालं परशुं सह ॥ १२ ॥
बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः ।
किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

आत्मनि—अपने भीतर; अपि—भी; शिवम्—शिव को; प्राप्तम्—आया हुआ; तडित्—बिजली के समान; पिङ्ग—पीलाभ; जटा—बालों की लटें; धरम्—धारण किये; त्रि-अक्षम्—तीन नेत्रों सहित; दश-भुजम्—तथा दस भुजाएँ; प्रांशुम्—अत्यधिक ऊँचा; उद्यन्तम्—उठा हुआ; इव—सदृश; भास्करम्—सूर्य को; व्याघ्र—बाघ का; चर्म—रोंएदार चमड़ा; अम्बरम्—वस्त्र के रूप में; शूल—त्रिशूल; धनः—धनुष; इषु—बाण; असि—तलवार; चर्मभिः—तथा ढाल सहित; अक्ष-माला—जपमाला; डमरुक—डमरू; कपालम्—तथा सिर; परशुम्—फरसा; सह—सहित; बिभ्राणम्—प्रदर्शित करते हुए; सहसा—एकाएक; भातम्—प्रकट; विचक्ष्य—देख कर; हृदि—हृदय में; विस्मितः—चकित; किम्—क्या; इदम्—यह; कुतः—कहाँ से; एव—निस्सन्देह; इति—इस प्रकार; समाधेः—समाधि से; विरतः—हटा; मुनिः—मुनि।

श्री मार्कण्डेय ने सहसा भगवान् शिव को अपने हृदय के भीतर प्रकट हुए देखा। शिवजी के सुनहरे केश बिजली के समान थे। उनके तीन नेत्र, दस भुजाएँ तथा ऊँचा शरीर था, जो उदय हो रहे सूर्य की तरह चमक रहा था। वे व्याघ्र चर्म पहने थे और त्रिशूल, धनुष, बाण, तलवार तथा ढाल लिये थे। वे जपमाला, डमरू, कपाल तथा परशु भी लिए थे। मुनि ने चकित होकर अपनी समाधि तोड़ दी और सोचा, "यह कौन है और कहाँ से आया है?"

नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयागतम् ।
रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

नेत्रे—अपने नेत्र; उन्मील्य—खोल कर; ददृशे—देखा; स-गणम्—अपने संगियों के साथ; स-उमया—तथा उमा समेत; आगतम्—आया हुआ; रुद्रम्—रुद्र को; त्रि-लोक—तीनों लोकों के; एक-गुरुम्—एकमात्र गुरु; ननाम—नमस्कार किया; शिरसा—सिर के बल; मुनिः—मुनि ने।

अपनी आँखें खोल कर मुनि ने तीनों जगत के गुरु भगवान् रुद्र को उमा तथा उनके गणों समेत देखा। तब मार्कण्डेय ने सिर के बल झुक कर उन्हें सादर नमस्कार किया।

तात्पर्य : जब मार्कण्डेय ऋषि ने अपने हृदय के भीतर शिव तथा उमा को देखा तो वे तुरन्त उनके प्रति तथा स्वयं अपने प्रति भी सतर्क हो उठे। दूसरी ओर, समाधि के समय वे भगवान् के भाव में लीन थे और अपने को प्रत्यक्ष दर्शक के रूप में भूल चुके थे।

तस्मै सपर्यां व्यदधात्सगणाय सहोमया ।
स्वागतासनपाद्यार्घ्यगन्धस्रग्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उसको; सपर्याम्—पूजा; व्यदधात्—अर्पित की; स-गणाय—उनके गणों समेत; सह उमया—उमा सहित; सु-आगत—स्वागत के शब्दों से; आसन—बैठने के लिए स्थान देते हुए; पाद्य—चरण धोने के लिए जल; अर्घ्य—सुगन्धित पीने का पानी; गन्ध—सुगन्धित तेल; स्रक्—माला; धूप—धूप; दीपकैः—तथा दीपकों से।

मार्कण्डेय ने उमा तथा शिव के गणों समेत भगवान् शिव की पूजा स्वागत के शब्दों, आसन, उनके पाँव धोने के लिए जल, सुगंधित पीने के पानी, सुगन्धित तेल, फूल-मालाओं तथा आरती के दीपक द्वारा की।

आह त्वात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो ।
करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

आह—मार्कण्डेय ने कहा; तु—निस्सन्देह; आत्म-अनुभावेन—निजी आनन्द अनुभूति से; पूर्ण-कामस्य—सभी प्रकार से तुष्ट; ते—आपके लिए; विभो—हे सर्वशक्तिमान; करवाम—कर सकता हूँ; किम्—क्या; ईशान—हे ईश्वर; येन—जिससे; इदम्—यह; निर्वृतम्—शान्त बनता है; जगत्—पूरा संसार।

मार्कण्डेय ने कहा : हे विभु, मैं आपके लिए, जो अपने ही आनन्द में सदैव तुष्ट रहने वाले हैं, क्या कर सकता हूँ? निस्सन्देह, आप अपनी कृपा से इस सारे जगत को तुष्ट करते हैं।

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च ।
रजोजुषेऽथ घोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; शिवाय—सर्वमंगलकारी; शान्ताय—शान्त; सत्त्वाय—सतोगुण के साक्षात् रूप; प्रमृडाय—आनन्द के दाता; च—तथा; रजः-जुषे—रजोगुण के सम्पर्क में रहने वाला; अथ—भी; घोराय—घोर; नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—आपको; तमः-जुषे—तमोगुण के संगी।

हे सर्वमंगलकारी दिव्य पुरुष, मैं बारम्बार आपको नमस्कार करता हूँ। सतोगुण के स्वामी के रूप में आप आनन्द के दाता हैं, रजोगुण के सम्पर्क में आप अत्यन्त भयावने लगते हैं और तमोगुण से भी आप सान्निध्य रखते हैं।

सूत उवाच
एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः ।
परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इन शब्दों द्वारा; स्तुतः—स्तुति किया गया; सः—वह; भगवान्—शक्तिमान शिवजी; आदि-देवः—देवताओं के अग्रणी; सताम्—साधु भक्तों के; गतिः—आश्रय, शरण; परितुष्टः—पूरी तरह तुष्ट; प्रसन्न-आत्मा—मन में प्रसन्न; प्रहसन्—हँसते हुए; तम्—मार्कण्डेय से; अभाषत—बोले।

सूत गोस्वामी ने कहा : देवताओं में अग्रणी तथा साधु भक्तों के आश्रय रूप भगवान् शिव, मार्कण्डेय की स्तुति से तुष्ट हो गए। प्रसन्न होने के कारण वे हँसने लगे और मुनि से बोले।

श्रीभगवानुवाच
वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः ।
अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विन्दतेऽमृतम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—शिवजी ने कहा; वरम्—वर; वृणीष्व—चुनो; नः—हमसे; कामम्—जो इच्छा हो; वर-द—समस्त वर देने वालों में से; ईशाः—नियंता, स्वामी; वयम्—हम; त्रयः—तीन (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर); अमोघम्—व्यर्थ न जाने वाला; दर्शनम्—दर्शन; येषाम्—जिनके; मर्त्यः—मर्त्य जीव; यत्—जिससे; विन्दते—प्राप्त करता है; अमृतम्—अमरता।

शिवजी ने कहा : तुम मुझसे कोई वर माँगो क्योंकि वर देने वालों में से हम तीन—ब्रह्मा, विष्णु तथा मैं—सर्वश्रेष्ठ हैं। हमारा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता क्योंकि हमारे दर्शन मात्र से मर्त्य प्राणी अमरता प्राप्त कर लेता है।

ब्राह्मणाः साधवः शान्ता निःसङ्गा भूतवत्सलाः ।
एकान्तभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥ २० ॥
सलोका लोकपालास्तान्वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते ।
अहं च भगवान्ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणाः—ब्राह्मण; साधवः—साधु स्वभाव के; शान्ताः—शान्त तथा द्वेष एवं अन्य दुर्गुणों से रहित; निःसङ्गाः—भौतिक संगति से मुक्त; भूत-वत्सलाः—जीवों पर सदय; एक-अन्त-भक्ताः—अनन्य भक्त; अस्मासु—हमारे (ब्रह्मा, हरि तथा शिव); निर्वैराः—कभी घृणा से युक्त नहीं; सम-दर्शिनः—सबको समान दृष्टि से देखने वाले; स-लोकाः—सारे जगतों के निवासियों सहित; लोक-पालाः—विभिन्न लोकों के शासक; तान्—उन ब्राह्मणों को; वन्दन्ति—वन्दना करते हैं; अर्चन्ति—पूजा करते हैं; उपासते—सहायता करते हैं; अहम्—मैं; च—भी; भगवान्—महान् स्वामी; ब्रह्मा—ब्रह्मा; स्वयम्—स्वयं; च—भी; हरिः—हरि; ईश्वरः—भगवान्।

ब्रह्मा, हरि तथा मुझ समेत सारे लोकों के निवासी तथा शासन करने वाले देवता उन ब्राह्मणों की वन्दना, पूजा तथा सहायता करते हैं, जो सन्त स्वभाव के, सदैव शान्त, भौतिक आसक्ति से रहित, समस्त जीवों पर दयालु, हमारे प्रति शुद्ध भक्ति से युक्त, घृणा से रहित एवं समदृष्टि से युक्त होते हैं।

न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ।

नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान्वयमीमहि ॥ २२॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—वे; मयि—मुझमें; अच्युते—भगवान् विष्णु में; अजे—ब्रह्मा में; च—तथा; भिदाम्—अन्तर; अणु—लेश; अपि—भी; चक्षते—देखते हैं; न—नहीं; आत्मनः—अपना; च—तथा; जनस्य—अन्य लोगों का; अपि—भी; तत्—इसलिए; युष्मान्—तुम; वयम्—हम; ईमहि—पूजा करते हैं।

ये भक्तगण भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा मुझमें अन्तर नहीं करते, न ही वे अपने तथा अन्य जीवों के बीच अन्तर करते हैं। तुम इसी तरह के सन्त भक्त हो, इसलिए हम तुम्हारी पूजा करते हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा तथा शिव क्रमशः भगवान् विष्णु की सृजन तथा संहार शक्तियों की अभिव्यक्ति हैं। इस तरह भौतिक जगत के इन तीन शासनकर्ता देवों में एकता बनी रहती है। मनुष्य को, प्रकृति के गुणों के आधार पर, भगवान् की शासन शक्ति में भौतिक द्वैत नहीं ढूँढना चाहिए यद्यपि यह शक्ति ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इन तीन रूपों में प्रकट होती है।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २३॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अप्-मयानि—पवित्र जल से युक्त; तीर्थानि—तीर्थस्थल; न—नहीं; देवाः—देवताओं के अर्चाविग्रह रूप; चेतन-उज्झिताः—जीवन से रहित; ते—वे; पुनन्ति—शुद्ध करते हैं; उरु-कालेन—दीर्घकाल के पश्चात्; यूयम्—तुम सब; दर्शन-मात्रतः—केवल दर्शन करने से।

मात्र जलाशय तीर्थस्थान नहीं होते, न ही देवताओं की निर्जीव मूर्तियाँ वास्तविक पूज्य अर्चाविग्रह होती हैं। चूँकि बाह्य दृष्टि पवित्र नदियों तथा देवताओं के उच्च आशय को समझ नहीं पाती, इसलिए ये दीर्घकाल बाद ही पवित्र बना पाते हैं। किन्तु तुम जैसे भक्त, दर्शन मात्र से, पवित्र कर देते हो।

ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपं त्रयीमयम् ।
बिभ्रत्यात्मसमाधानतपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २४॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणेभ्यः—ब्रह्मणों को; नमस्यामः—हम नमस्कार करते हैं; ये—जो; अस्मत्-रूपम्—हमारे (शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु के) रूप; त्रयी-मयम्—तीन वेदों के द्वारा प्रदर्शित; बिभ्रति—वहन करते हैं; आत्म-समाधान—आत्म पर केन्द्रित ध्यान समाधि द्वारा; तपः—तपस्या द्वारा; स्वाध्याय—अध्ययन द्वारा; संयमैः—तथा विधि-विधानों के पालन द्वारा।

परमात्मा का ध्यान करके, तपस्या करके, वेदाध्ययन करके तथा विधि-विधानों का पालन करके, ब्राह्मणजन अपने भीतर तीनों वेदों को, जोकि विष्णु, ब्रह्मा तथा मुझसे अभिन्न हैं, धारण करते हैं। इसलिए मैं ब्राह्मणों को नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् का शुद्ध भक्त सबसे उच्च ब्राह्मण माना जाता है क्योंकि सारे आध्यात्मिक प्रयत्न ईश्वर की प्रेमाभक्ति में ही आकर समाप्त हो जाते हैं।

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोऽपि वः ।
शुध्येरन्नन्त्यजाश्चापि किमु सम्भाषणादिभिः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

श्रवणात्—श्रवण करने से; दर्शनात्—दर्शन करने से; वा—अथवा; अपि—भी; महा-पातकिनः—सबसे अधम पाप करने वाले; अपि—भी; वः—तुम; शुध्येरन्—शुद्ध बन जाते हैं; अन्त्य-जाः—अछूत लोग; च—तथा; अपि—भी; किम् उ—क्या कहा जाय; सम्भाषण-आदिभिः—प्रत्यक्ष बात करने इत्यादि से।

अधम से अधम पापी तथा अछूत भी तुम जैसे पुरुषों का श्रवण करने या दर्शन करने से शुद्ध बन जाते हैं। तब जरा कल्पना करो कि सीधे तुमसे बात करने से वे कितने शुद्ध बन जाते हैं?

सूत उवाच
इति चन्द्रललामस्य धर्मगह्योपबृंहितम् ।
वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; चन्द्र-ललामस्य—चन्द्रमा से सुशोभित शिव का; धर्म-गुह्य—धर्म के गुह्य सार से; उपबृंहितम्—पूरित; वचः—शब्द; अमृत-अयनम्—अमृत के आगार; ऋषिः—ऋषि; न अतृप्यत्—तृप्ति नहीं हुई; कर्णयोः—अपने कानों से; पिबन्—पीते हुए।

सूत गोस्वामी ने कहा : भगवान् शिव के अमृत तुल्य शब्दों को, जोकि धर्म के गुह्य सार से पूरित थे, अपने कानों से पीते हुए मार्कण्डेय ऋषि तुष्ट नहीं हुए।

तात्पर्य : मार्कण्डेय ऋषि शिवजी द्वारा प्रशंसित होने के लिए उत्सुक न थे अपितु उन्हें शिवजी द्वारा धर्म के सिद्धान्तों की गहन अनुभूति अच्छी लग रही थी, इसीलिए वे और अधिक सुनना चाह रहे थे।

स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् ।
शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुञ्जस्तमब्रवीत् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; चिरम्—दीर्घकाल तक; मायया—माया द्वारा; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; भ्रामितः—भटकाया हुआ; कर्शितः—थका; भृशम्—अत्यधिक; शिव—शिव के; वाक्-अमृत—अमृत तुल्य शब्दों से; ध्वस्त—विनष्ट; क्लेश-पुञ्जः—कष्टों का समूह; तम्—उससे; अब्रवीत्—बोला।

भगवान् विष्णु की माया द्वारा प्रलय के जल में दीर्घकाल तक भटकाये गये होने के कारण मार्कण्डेय अत्यधिक थक चुके थे। किन्तु शिवजी के अमृत तुल्य शब्दों से उनका संचित क्लेश नष्ट हो गया। अतः वे शिवजी से बोले।

तात्पर्य : मार्कण्डेय ऋषि भगवान् विष्णु की माया का दर्शन करना चाहते थे और काफी कष्ट भोग चुके थे। किन्तु अब शिव के रूप में भगवान् विष्णु पुनः ऋषि के समक्ष प्रकट हुए थे और

उन्होंने आनन्दमय उपदेशों द्वारा उन्हें सारे कष्टों से मुक्त कर दिया।

श्रीमार्कण्डेय उवाच
अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ।
यन्नमन्तीशितव्यानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

श्री-मार्कण्डेयः उवाच—श्री मार्कण्डेय ने कहा; अहो—ओह; ईश्वर—महान् स्वामियों की; लीला—लीला; इयम्—यह; दुर्विभाव्या—अविश्वसनीय; शरीरिणाम्—देहधारी जीवों के लिए; यत्—क्योंकि; नमन्ति—नमस्कार करते हैं; ईशितव्यानि—उनको जो उनके द्वारा नियंत्रित होते हैं; स्तुवन्ति—स्तुति करते हैं; जगत्-ईश्वराः—ब्रह्माण्ड के शासक।

श्री मार्कण्डेय ने कहा : देहधारी जीवों के लिए ब्रह्माण्ड के नियन्ताओं की लीलाओं को समझ पाना सबसे कठिन है क्योंकि ऐसे प्रभु अपने ही द्वारा शासित जीवों को सिर झुकाते तथा उनकी स्तुति करते हैं।

तात्पर्य : भौतिक जगत में बद्धजीव एक-दूसरे पर रोब दिखाना चाहते हैं, इसलिए वे ब्रह्माण्ड के वास्तविक स्वामियों की लीलाओं को नहीं समझ पाते। ऐसे प्रामाणिक स्वामियों में अद्भुत उदार मनोवृत्ति पाई जाती है, अतः वे कभी कभी अपनी प्रजा में से अत्यन्त योग्य तथा साधु स्वभाववाले व्यक्ति को नमस्कार तक करते हैं।

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् ।
आचरन्त्यनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्ति च ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

धर्मम्—धर्म; ग्राहयितुम्—स्वीकार करवाना; प्रायः—अधिकांशतः; प्रवक्तारः—वैध वक्ताओं; च—तथा; देहिनाम्—सामान्य देहधारियों के लिए; आचरन्ति—कर्म करते हैं; अनुमोदन्ते—प्रोत्साहित करते हैं; क्रियमाणम्—सम्पन्न करने वाला; स्तुवन्ति—स्तुति करते हैं; च—भी।

सामान्यतया देहधारी जीवों को धार्मिक सिद्धान्त स्वीकार करने के लिए प्रेरित करने के लिए ही प्रामाणिक धर्माचार्य, अन्यों को प्रोत्साहित करके तथा उनके आचरण की प्रशंसा करके, आदर्श आचरण प्रदर्शित करते हैं।

नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः ।
न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतावता—ऐसे (विनयशीलता के प्रदर्शन) द्वारा; भगवतः—भगवान् का; स्व-माया—अपनी माया; मय—से युक्त; वृत्तिभिः—कार्यों द्वारा; न दुष्येत—बिगड़ता नहीं; अनुभावः—शक्ति; तैः—उनके द्वारा; मायिनः—जादूगर की; कुहकम्—करामातें; यथा—जिस तरह।

यह ऊपरी विनयशीलता दया का दिखावा मात्र है। भगवान् तथा उनके संगियों का ऐसा आचरण, जिसे भगवान् अपनी मोहिनी शक्ति से दिखलाते हैं, उनकी शक्ति को नहीं

बिगाड़ता जिस तरह जादूगर की शक्तियाँ जादूगरी की करामातें दिखाने से घटती नहीं।

सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ।
गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तेव स्वप्नदृग्यथा ॥ ३१ ॥
तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ।
केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सृष्ट्वा—उत्पन्न करके; इदम्—इस; मनसा—अपने मन से, अपनी इच्छा मात्र से; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; आत्मना—परमात्मा रूप में; अनुप्रविश्य—बाद में प्रविष्ट होकर; यः—जो; गुणैः—गुणों के द्वारा; कुर्वद्भिः—कर्म करते हैं; आभाति—प्रकट होता है; कर्ता इव—मानो कर्ता हो; स्वप्न-दृक्—स्वप्न देखने वाला व्यक्ति; यथा—जिस तरह; तस्मै—उस; नमः—नमस्कार; भगवते—भगवान् को; त्रि-गुणाय—तीन गुणों वाले; गुण-आत्मने—प्रकृति के तीनों गुणों के स्वामी; केवलाय—शुद्ध; अद्वितीयाय—अद्वितीय; गुरवे—गुरु को; ब्रह्म-मूर्तये—परब्रह्म के साकार रूप।

मैं उन भगवान् को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने अपनी इच्छा मात्र से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि की और फिर जो उसमें परमात्मा रूप में प्रविष्ट हो गये। वे प्रकृति के गुणों को क्रियमाण बनाकर इस जगत के प्रत्यक्ष स्रष्टा प्रतीत होते हैं जिस तरह स्वप्न देखने वाला अपने स्वप्न के भीतर कर्म करता प्रतीत होता है। वे प्रकृति के तीनों गुणों के स्वामी और परम नियन्ता हैं, फिर भी वे पृथक् रहते हैं और शुद्ध तथा अद्वितीय हैं। वे सबों के परम गुरु तथा परब्रह्म के आदि साकार रूप हैं।

तात्पर्य : जब भगवान् अपनी भौतिक शक्तियों को मुक्त करते हैं, तो उनकी अन्योन्य क्रिया से सृष्टि बनती है। भगवान् परम दिव्य सत्ता के रूप में पृथक् रहते हैं। फिर भी चूँकि सारी सृष्टि उनकी योजना तथा इच्छा के अनुसार प्रकट होती है, अत: सारी वस्तुओं में उनका नियामक हाथ देखा जाता है। इस तरह लोग कल्पना करते हैं कि ईश्वर इस जगत का प्रत्यक्ष निर्माता है यद्यपि वे अलग रहते हुए अपनी अनेक शक्तियों के नियोजन से उसकी सृष्टि करते हैं।

कं वृणे नु परं भूमन्वरं त्वद्वरदर्शनात् ।
यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामः पुमान्भवेत् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

कम्—क्या; वृणे—मैं चुनूँ; नु—निस्सन्देह; परम्—अन्य; भूमन्—हे सर्वव्यापक प्रभु; वरम्—वर; त्वत्—आपसे; वर-दर्शनात्—जिनका दर्शन ही सबसे बड़ा वर है; यत्—जिसके; दर्शनात्—दर्शन से; पूर्ण-कामः—सारी इच्छाओं से पूर्ण; सत्य-कामः—किसी भी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने में सक्षम; पुमान्—पुरुष; भवेत्—बन जाता है।

हे सर्वव्यापक प्रभु, चूँकि मुझे आपका दर्शन करने का वर प्राप्त हो चुका है, इसलिए मैं आपसे अन्य किस वर की याचना करूँ? केवल आपका दर्शन करने से मनुष्य की सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं और वह कोई भी कल्पित कार्य संपन्न कर सकता है।

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् ।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३४॥

शब्दार्थ

वरम्—वर; एकम्—एक; वृणे—याचना करता हूँ; अथ अपि—तो भी; पूर्णात्—जो पूर्ण है उससे; काम-अभिवर्षणात्—जो इच्छाओं की पूर्ति की वर्षा करता है; भगवति—भगवान् के लिए; अच्युताम्—अच्युत; भक्तिम्—भक्ति; तत्-परेषु—उनके शरणागतों; तथा—भी; त्वयि—आप में।

किन्तु मैं आपसे एक वर माँगता हूँ क्योंकि आप समस्त सिद्धि से पूर्ण हैं और समस्त इच्छाओं की पूर्ति की वर्षा करने में समर्थ हैं। मैं आपसे भगवान् की तथा उनके समर्पित भक्तों की, विशेष रूप से आपकी, अच्युत भक्ति के लिए याचना करता हूँ।

तात्पर्य : *तत्परेषु तथा त्वयि* पद स्पष्ट बतलाता है कि शिवजी परमेश्वर के भक्त हैं, स्वयं परमेश्वर नहीं। चूँकि ईश्वर के प्रतिनिधि को वही पद दिया जाता है, जो ईश्वर का होता है, इसीलिए मार्कण्डेय ऋषि पिछले श्लोकों में शिवजी को भगवान् कहते हैं। किन्तु अब यह स्पष्ट हो जाता है कि, जैसाकि वैदिक वाङ्मय में कहा गया है, शिवजी ईश्वर के शाश्वत भक्त हैं, ईश्वर नहीं हैं।

चेतना के सूक्ष्म नियमों के अनुसार, इच्छा मन तथा हृदय के भीतर प्रकट होती है। भगवान् की सेवा करने की शुद्ध इच्छा मनुष्य को चेतना के सर्वोच्च पद पर लाती है और जीवन का ऐसा पूर्ण ज्ञान भगवद्भक्तों की विशेष कृपा से ही प्राप्त हो पाता है।

सूत उवाच
इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ।
तमाह भगवाञ्छर्वः शर्वया चाभिनन्दितः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इन शब्दों में; अर्चितः—पूजित; अभिष्टुतः—स्तुति किये गये; च—तथा; मुनिना—मुनि द्वारा; सु-उक्तया—अच्छी तरह कहे गये; गिरा—शब्दों से; तम्—उससे; आह—कहा; भगवान् शर्वः—शिवजी; शर्वया—अपनी प्रिया शर्वा द्वारा; च—तथा; अभिनन्दितः—प्रोत्साहित।

सूत गोस्वामी ने कहा : मुनि मार्कण्डेय के वाक्पटु कथनों द्वारा पूजित तथा प्रशंसित भगवान् शर्व (शिव) ने अपनी प्रिया द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर उनसे इस प्रकार कहा।

कामो महर्षे सर्वोऽयं भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे ।
आकल्पान्ताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३६॥

शब्दार्थ

कामः—इच्छा; महा-ऋषे—हे महर्षि; सर्वः—सारा; अयम्—यह; भक्ति-मान्—भक्ति से पूर्ण; त्वम्—तुम; अधोक्षजे—भगवान् के लिए; आ-कल्प-अन्तात्—ब्रह्मा के दिन के अन्त तक; यशः—यश; पुण्यम्—पवित्र; अजर-अमरता—वृद्धावस्था तथा मृत्यु से मुक्ति; तथा—भी।

हे महर्षि, तुम भगवान् अधोक्षज के प्रति अनुरक्त हो, इसलिए तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूरी होंगी। इस सृष्टि चक्र के अन्त तक तुम पवित्र यश तथा वृद्धावस्था एवं मृत्यु से मुक्ति का

भोग करोगे।

ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन् विज्ञानं च विरक्तिमत् ।
ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यतास्तु ते ॥ ३७॥

शब्दार्थ

ज्ञानम्—ज्ञान; त्रै-कालिकम्—काल की तीनों अवस्थाओं (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) का; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; विज्ञानम्—दिव्य अनुभूति; च—भी; विरक्ति-मत्—वैराग्य समेत; ब्रह्म-वर्चस्विन:—ब्रह्म शक्ति से युक्त है, जो उसका; भूयात्—हो; पुराण-आचार्यता—पुराणों के आचार्य का पद; अस्तु—हो; ते—तुम्हारा।.

हे ब्राह्मण, तुम्हें भूत, वर्तमान तथा भविष्य का पूर्ण ज्ञान और उसी के साथ वैराग्य से युक्त ब्रह्म की दिव्य अनुभूति प्राप्त हो। तुम्हारे पास आदर्श ब्राह्मण का तेज है, जिससे तुम पुराणों के आचार्य का पद पा सको।

सूत उवाच
एवं वरान्स मुनये दत्त्वागात्त्र्यक्ष ईश्वरः ।
देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुरामुना ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; वरान्—वर; सः—वह; मुनये—मुनि को; दत्त्वा—देकर; अगात्—चला गया; त्रि-अक्षः—तीन नेत्रों वाले; ईश्वरः—शिवजी; देव्यै—देवी पार्वती को; तत्-कर्म—मार्कण्डेय के कार्यकलाप; कथयन्—बतलाते हुए; अनुभूतम्—अनुभव किया हुआ; पुरा—पहले; अमुना—उसके द्वारा, मार्कण्डेय द्वारा।.

सूत गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार मार्कण्डेय ऋषि को वर देकर शिवजी अपने मार्ग में देवी पार्वती से ऋषि की उपलब्धियों का तथा उनके द्वारा अनुभव की गई भगवान् की माया के प्रत्यक्ष प्रदर्शन का वर्णन करते चले गये।

सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ।
विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकान्ततां गतः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, मार्कण्डेय; अपि—निस्सन्देह; अवाप्त—प्राप्त करके; महा-योग—योग की सर्वोच्च सिद्धि की; महिमा—महिमा; भार्गव-उत्तमः—श्रेष्ठ भृगुवंशी; विचरति—विचरण कर रहा है; अधुना अपि—आज भी; अद्धा—प्रत्यक्ष; हरौ—हरि के लिए; एक-अन्तताम्—एकान्तिक भक्ति का पद; गतः—प्राप्त करके।.

श्रेष्ठ भृगुवंशी मार्कण्डेय ऋषि अपनी योग-सिद्धि की उपलब्धि के कारण यशस्वी हैं। आज भी वे इस जगत में भगवान् की अनन्य भक्ति में पूरी तरह लीन होकर विचरण करते हैं।

अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः ।

अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अनुवर्णितम्—वर्णन किया गया; एतत्—यह; ते—तुमसे; मार्कण्डेयस्य—मार्कण्डेय का; धी-मतः—बुद्धिमान; अनुभूतम्—अनुभव किया गया; भगवतः—भगवान् का; माया-वैभवम्—माया का ऐश्वर्य; अद्भुतम्—अद्भुत।

इस तरह मैंने तुमसे अत्यन्त बुद्धिमान ऋषि मार्कण्डेय के कार्यकलापों का, विशेष रूप से जिस तरह उन्होंने भगवान् की माया की अद्भुत शक्ति का अनुभव किया, वर्णन कर दिया।

एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिरात्मनः ।
अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; केचित्—कुछ व्यक्ति; अविद्वांसः—जो विद्वान नहीं हैं; माया-संसृतिः—मायामयी सृष्टि; आत्मनः—परमात्मा की; अनादि—अनन्त काल से; आवर्तितम्—पिष्टपेषण की गई; नृणाम्—बद्धजीवों का; कादाचित्कम्—अभूतपूर्व; प्रचक्षते—कहते हैं।

यद्यपि यह घटना अद्वितीय तथा अभूतपूर्व थी, किन्तु कुछ अज्ञानी लोग इसकी तुलना बद्धजीवों के लिए भगवान् द्वारा रचित मायामय जगत के चक्र से करते हैं—ऐसा अन्तहीन चक्र जो अनन्त काल से चल रहा है।

तात्पर्य : मार्कण्डेय का भगवान् की श्वास से उनके शरीर में खिंच जाने और प्रश्वास के साथ बाहर आ जाने को सृष्टि तथा प्रलय के निरन्तर चक्र का प्रतीकात्मक वर्णन नहीं मानना चाहिए। *श्रीमद्भागवत* का यह अंश एक भगवद्भक्त द्वारा अनुभव की हुई असली ऐतिहासिक घटना है। जो लोग इस कथा को प्रतीकात्मक रूपक मात्र मानते हैं उन्हें यहाँ अज्ञानी मूर्ख कहा गया है।

य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं
रथाङ्गपाणेरनुभावभावितम् ।
संश्रावयेत्संशृणुयादु तावुभौ
तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एवम्—इस प्रकार; एतत्—यह; भृगु-वर्य—हे श्रेष्ठ भृगुवंशी (शौनक); वर्णितम्—वर्णित; रथ-अङ्ग-पाणेः—रथ के पहिए को हाथ में धारण करने वाले श्री हरि का; अनुभाव—शक्ति से; भावितम्—सिक्त; संश्रावयेत्—सुनाता है; संशृणुयात्—स्वयं सुनता है; उ—अथवा; तौ—वे; उभौ—दोनों; तयोः—उनके; न—नहीं; कर्म-आशय—सकाम कर्म की मनोवृत्ति पर आधारित; संसृतिः—भौतिक जीवन का चक्र; भवेत्—है।

हे श्रेष्ठ भृगुवंशी, मार्कण्डेय ऋषि से सम्बन्धित यह विवरण भगवान् की दिव्य शक्ति को बताने वाला है। जो कोई इसका ठीक से वर्णन करता है या इसे सुनता है, उसे सकाम कर्म करने की इच्छा पर आधारित भौतिक जगत में फिर से नहीं आना होगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत ‘‘शिव तथा उमा द्वारा मार्कण्डेय ऋषि

का गुणगान" नामक दसवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter ग्यारह

महापुरुष का संक्षिप्त वर्णन

पूजा के सन्दर्भ में इस अध्याय में महापुरुष तथा प्रत्येक मास में सूर्य के विभिन्न विस्तारों का वर्णन हुआ है। सर्वप्रथम श्री सूत शौनक ऋषि को उन भौतिक वस्तुओं के बारे में बताते हैं जिनसे जीव भगवान् श्री हरि के मुख्य अंगों, उपांगों, आयुधों तथा वस्त्रों को समझ सकता है। तत्पश्चात् वे उस व्यावहारिक सेवा विधि की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं जिसके द्वारा मर्त्य प्राणी अमरता प्राप्त कर सकता है। जब शौनक सूर्य देव के रूप में भगवान् हरि के विस्तार के बारे में अधिक जानकारी के लिए रुचि प्रदर्शित करते हैं, तो सूत गोस्वामी उत्तर देते हैं कि ब्रह्माण्ड के अन्तस्थ नियन्ता तथा इसके आदि स्रष्टा भगवान् श्री हरि सूर्य देव के रूप में प्रकट होते हैं। ऋषिगण इस सूर्य देव का वर्णन अनेक रूपों में, उनकी विविध भौतिक उपाधियों के अनुसार करते हैं। जगत को धारण करने के लिए भगवान् अपनी कालशक्ति को सूर्य के रूप में प्रकट करते हैं और अपने संगियों की बारह मंडलियों के साथ चैत्र आदि बारहों मास यात्रा करते रहते हैं। जो कोई सूर्य के रूप में भगवान् श्री हरि के ऐश्वर्यों का स्मरण करता है, वह अपने पापकर्मों के फलों से मुक्त हो जायेगा।

श्रीशौनक उवाच
अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवित्तमम् ।
समस्ततन्त्रराद्धान्ते भवान्भागवत तत्त्ववित् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शौनकः उवाच—श्री शौनक ने कहा; अथ—अब; इमम्—यह; अर्थम्—विषय; पृच्छामः—हम पूछ रहे हैं; भवन्तम्—आप से; बहु-वित्-तमम्—सबसे विस्तृत ज्ञान के स्वामी; समस्त—समस्त; तन्त्र—पूजा की व्यावहारिक विधि बताने वाले शास्त्र; राद्ध-अन्ते—अन्तिम निर्णय; भवान्—आप; भागवत—हे महान् भगवद्भक्त; तत्त्व-वित्—असली तथ्यों के ज्ञाता।

श्री शौनक ने कहा : हे सूत, आप सर्वश्रेष्ठ विद्वान तथा भगवद्भक्त हैं। अतएव अब हम आपसे समस्त तंत्र शास्त्रों के अन्तिम निर्णय के विषय में पूछते हैं।

तान्त्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः ।
अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पं कल्पयन्ति यथा च यैः ॥ २ ॥
तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम् ।
येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तान्त्रिकाः—तांत्रिक साहित्य की विधि के अनुयायी; परिचर्यायाम्—नियमित पूजा में; केवलस्य—शुद्ध आत्मा की; श्रियः—लक्ष्मी के; पतेः—पति का; अङ्ग—अंग, यथा पाँव; उपाङ्ग—गौण अंग यथा गरुड़ जैसे संगी; आयुध—हथियार, यथा सुदर्शन चक्र; आकल्पम्—तथा आभूषण यथा कौस्तुभ मणि; कल्पयन्ति—कल्पना करते हैं; यथा—जैसे; च—तथा; यैः—जिससे (भौतिक वस्तुओं से); तत्—वह; नः—हमसे; वर्णय—कृपा करके वर्णन करें; भद्रम्—सर्वमंगल; ते—तुम्हारा; क्रिया-योगम्—अनुशीलन की व्यावहारिक विधि; बुभुत्सताम्—सीखने के लिए उत्सुक; येन—जिससे; क्रिया—क्रमबद्ध अभ्यास में; नैपुणेन—दक्षता; मर्त्यः—मरणशील प्राणी; यायात्—प्राप्त कर सके; अमर्त्यताम्—अमरता।

आपका कल्याण हो, कृपा करके हम जिज्ञासुओं को वह लक्ष्मीपति दिव्य भगवान् की नियमित पूजा द्वारा सम्पन्न की जाने वाली *क्रिया योग* विधि बतलायें। कृपा करके यह भी बतलायें कि भक्तगण उनके अंगों, संगियों, आयुधों तथा आभूषणों की किन विशेष भौतिक वस्तुओं से कल्पना करते हैं। भगवान् की दक्षतापूर्वक पूजा करके मर्त्य प्राणी अमरता प्राप्त कर सकता है।

सूत उवाच
नमस्कृत्य गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि ।
याः प्रोक्ता वेदतन्त्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ॥ ४॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; गुरून्—गुरुओं को; वक्ष्ये—कहूँगा; विभूतीः—ऐश्वर्य; वैष्णवीः—भगवान् विष्णु सम्बन्धी; अपि—निस्सन्देह; याः—जो; प्रोक्ताः—वर्णित होते हैं; वेद-तन्त्राभ्याम्—वेदों तथा तंत्रों द्वारा; आचार्यैः—अधिकारियों द्वारा; पद्मज-आदिभिः—ब्रह्मा इत्यादि द्वारा।

सूत गोस्वामी ने कहा : मैं अपने गुरुओं को नमस्कार करके कमल से उत्पन्न ब्रह्मा आदि महान् विद्वानों द्वारा वेदों तथा तंत्रों में दिये हुए भगवान् के ऐश्वर्यों का वर्णन तुमसे फिर से करूँगा।

मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट् ।
निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

माया-आद्यैः—प्रकृति की अव्यक्त अवस्था से शुरू करके; नवभिः—नौ; तत्त्वैः—तत्वों से; सः—वह; विकार-मयः—रूपान्तरों वाला भी (ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच स्थूल तत्त्व); विराट्—भगवान् का विश्व रूप; निर्मितः—निर्मित; दृश्यते—देखा जाता है; यत्र—जिसमें; स-चित्के—सचेतन होने से; भुवन-त्रयम्—तीनों लोक।

भगवान् का विराट रूप अव्यक्त प्रकृति तथा परवर्ती विकारों आदि से युक्त सृष्टि के नौ मूलभूत तत्त्वों से बना है। एक बार चेतना द्वारा इस विराट रूप को अधिष्ठित करने पर इसमें तीनों लोक दिखाई पड़ने लगते हैं।

तात्पर्य : सृष्टि के नौ मूलभूत तत्त्व हैं—प्रकृति, सूत्र, महत् तत्त्व, मिथ्या अहंकार तथा पाँच सूक्ष्म अनुभूतियाँ (तन्मात्रा)। विकारों में ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच स्थूल भौतिक तत्त्व आते हैं।

एतद्वै पौरुषं रूपं भू: पादौ द्यौ: शिरो नभ: ।
नाभि: सूर्योऽक्षिणी नासे वायु: कर्णौ दिश: प्रभो: ॥ ६ ॥

प्रजापति: प्रजननमपानो मृत्युरीशितु: ।
तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ यम: ॥ ७ ॥

लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दन्ता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रम: ।
रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघा: पुरुषमूर्धजा: ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; वै—निस्सन्देह; पौरुषम्—विराट पुरुष का; रूपम्—रूप; भू:—पृथ्वी; पादौ—उनके पाँव; द्यौ:—स्वर्ग; शिर:—उनका शिर; नभ:—आकाश; नाभि:—उनकी नाभि; सूर्य:—सूर्य; अक्षिणी—उनके दो नेत्र; नासे—उनके नथुने; वायु:—वायु; कर्णौ—उनके कान; दिश:—दिशाएँ; प्रभो:—भगवान् के; प्रजा-पति:—प्रजनन का देवता; प्रजननम्—उनका प्रजनन अंग; अपान:—उनकी गुदा; मृत्यु:—मृत्यु; ईशितु:—परम नियन्ता का; तत्-बाहव:—उनकी अनेक भुजाएँ; लोक-पाला:—विभिन्न लोकों के अधिष्ठाता; मन:—उनका मन; चन्द्र:—चन्द्रमा; भ्रुवौ—उनकी भौंहें; यम:—यमराज; लज्जा—लज्जा; उत्तर:—उनका ऊपरी होठ; अधर:—उनका निचला होठ; लोभ:—लालच; दन्ता:—उनके दाँत; ज्योत्स्ना—चाँदनी; स्मय:—उनकी मुसकान; भ्रम:—भ्रम; रोमाणि—उनके रोएँ; भू-रुहा:—वृक्ष; भूम्न:—सर्वशक्तिमान प्रभु के; मेघा:—बादल; पुरुष—विराट पुरुष के; मूर्ध-जा:—सिर के बाल।

यह भगवान् का विराट रूप है, जिसमें पृथ्वी उनके पाँव, आकाश उनकी नाभि, सूर्य उनकी आँखें, वायु उनके नथुने, प्रजापति उनके जननांग, मृत्यु उनकी गुदा तथा चन्द्रमा उनका मन है। स्वर्गलोक उनका शिर, दिशाएँ उनके कान तथा विभिन्न लोकपाल उनकी अनेक भुजाएँ हैं। यमराज उनकी भौंहे, लज्जा उनका निचला होठ, लालच उनका ऊपरी होठ, भ्रम उनकी मुसकान तथा चाँदनी उनके दाँत है, जबकि वृक्ष उन सर्वशक्तिमान पुरुष के शरीर के रोम हैं और बादल उनके शिर के बाल हैं।

तात्पर्य : भौतिक जगत के विविध पक्ष, यथा पृथ्वी, सूर्य तथा वृक्ष भगवान् के विराट शरीर के विविध अंगों द्वारा पालित-पोषित हैं। इसलिए वे उनसे अभिन्न माने जाते हैं, जैसाकि इस श्लोक में वर्णन आया है। ये सभी ध्यान के निमित्त हैं।

यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थया मित: ।
तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यावान्—जिस विस्तार तक; अयम्—यह; वै—निस्सन्देह; पुरुष:—सामान्य व्यक्ति; यावत्या—जिस आकार तक; संस्थया—उसके अंगों की स्थिति द्वारा; मित:—मापित; तावान्—उसी विस्तार तक; असौ—वह; अपि—भी; महा-पुरुष:—दिव्य पुरुष; लोक-संस्थया—लोकों की स्थितियों के अनुसार।

जिस तरह इस जगत के सामान्य पुरुष के आकार-प्रकार को उसके विविध अंगों को माप कर निश्चित किया जा सकता है, उसी तरह महापुरुष के विराट रूप के अन्तर्गत लोकों की व्यवस्था को माप कर महापुरुष का आकार-प्रकार जाना जा सकता है।

कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ।
तत्प्रभा व्यापिनी साक्षात्श्रीवत्समुरसा विभुः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

कौस्तुभ-व्यपदेशेन—कौस्तुभ मणि द्वारा प्रदर्शित; स्व-आत्म—शुद्ध जीवात्मा का; ज्योतिः—आध्यात्मिक प्रकाश; बिभर्ति—वहन करता है; अजः—अजन्मा ईश्वर; तत्-प्रभा—इस (कौस्तुभ मणि) का तेज; व्यापिनी—विस्तृत; साक्षात्—प्रत्यक्ष; श्रीवत्सम्—श्रीवत्स चिह्न का; उरसा—उनके वक्षस्थल पर; विभुः—सर्वशक्तिमान।

सर्वशक्तिमान अजन्मा भगवान् अपने वक्षस्थल पर शुद्ध आत्मा का प्रतिनिधित्व करने वाला कौस्तुभ मणि और उसी के साथ इस मणि के विस्तृत तेज का प्रत्यक्ष स्वरूप, श्रीवत्स चिह्न, धारण करते हैं।

स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ।
वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम् ॥ ११ ॥
बिभर्ति साङ्ख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले ।
मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयङ्करम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

स्व-मायाम्—अपनी माया; वन-माला-आख्याम्—फूल की माला कहलाने वाली; नाना-गुण—प्रकृति के गुणों के विविध मेल; मयीम्—से बनी; दधत्—पहने हुए; वासः—उनका वस्त्र; छन्दः-मयम्—वैदिक छन्दों से युक्त; पीतम्—पीला; ब्रह्म-सूत्रम्—उनका जनेऊ; त्रि-वृत्—तेहरा; स्वरम्—ॐकार नामक पवित्र ध्वनि; बिभर्ति—धारण करते हैं; साङ्ख्यम्—सांख्य विधि; योगम्—योग-विधि; च—तथा; देवः—स्वामी; मकर-कुण्डले—मगर की आकृति वाले कान के कुंडल; मौलिम्—उनका मुकुट; पदम्—पद; पारमेष्ठ्यम्—परम (ब्रह्मा का); सर्व-लोक—सारे जगतों को; अभयम्—अभय; करम्—देने वाले।

उनकी फूल-माला उनकी भौतिक माया है, जो प्रकृति के गुणों के विविध मेलों से युक्त है। उनका पीत वस्त्र वैदिक छन्द हैं और उनका जनेऊ तीन ध्वनियों वाला ॐ अक्षर है। अपने दो मकराकृत कुण्डलों के रूप में भगवान् सांख्य तथा योग की विधियाँ धारण करते हैं। उनका मुकुट जो सारे लोकवासियों को अभय प्रदान करता है, ब्रह्मलोक का परम पद है।

अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः ।
धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अव्याकृतम्—सृष्टि की अव्यक्त अवस्था; अनन्त-आख्यम्—अनन्त कहलाने वाली; आसनम्—उनका आसन; यत्-अधिष्ठितः—जिस पर वे बैठे हुए हैं; धर्म-ज्ञान-आदिभिः—धर्म, ज्ञान इत्यादि के साथ; युक्तम्—जुड़ा हुआ; सत्त्वम्—सतोगुणमें; पद्मम्—उनका कमल; इह—उस पर; उच्यते—कहा जाता है।

भगवान् का आसन, अनन्त, भौतिक प्रकृति की अव्यक्त अवस्था है और भगवान् का कमल सिंहासन, सतोगुण है, जो धर्म तथा ज्ञान से समन्वित है।

ओज:सहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् ।
अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४॥
नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् ।
कालरूपं धनु: शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

ओज:-सह:-बल—इन्द्रियों के, मन के तथा शरीर के बल से; युतम्—युक्त; मुख्य-तत्त्वम्—मुख्य तत्त्व वायु जो भौतिक शरीर के भीतर प्राणशक्ति है; गदाम्—उनकी गदा; दधत्—धारण किये; अपाम्—जल का; तत्त्वम्—तत्व; दर—उनका शंख; वरम्—उत्तम; तेज:-तत्त्वम्—अग्नि तत्त्व; सुदर्शनम्—सुदर्शन चक्र; नभ:-निभम्—आकाश के समान; नभ:-तत्त्वम्—आकाश तत्त्व; असिम्—उनकी तलवार; चर्म—ढाल; तम:-मयम्—तमोगुण से बनी; काल-रूपम्—काल के रूप में प्रकट; धनु:—उनका धनुष; शार्ङ्गम्—शार्ङ्ग नामक; तथा—तथा; कर्म-मय—सक्रिय इन्द्रिय रूप; इषु-धिम्—तरकस।

भगवान् की गदा इन्द्रिय, मन, शरीर सम्बन्धी शक्तियों से युक्त मुख्य तत्त्व प्राण है। उनका उत्तम शंख जल तत्त्व है। उनका सुदर्शन चक्र अग्नि तत्त्व है और उनकी तलवार जोकि आकाश के समान निर्मल है, आकाश तत्त्व है। उनकी ढाल तमोगुण, उनका शाङ्र्ग नामक धनुष काल तथा उनका तरकस कर्मेन्द्रियाँ हैं।

इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यन्दनम् ।
तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; शरान्—उनके तीर; आहु:—कहते हैं; आकूती:—(मन अपने) सक्रिय कर्म सहित; अस्य—उनका; स्यन्दनम्—रथ; तत्-मात्राणि—अनुभूति की वस्तुएँ; अस्य—उनका; अभिव्यक्तिम्—बाह्य स्वरूप; मुद्रया—हाथ के इशारों द्वारा (वर देने, अभय देने आदि के लिए); अर्थ-क्रिया-आत्मताम्—सार्थक क्रिया का सार।

उनके बाण इन्द्रियाँ हैं और उनका रथ चंचल वेगवान मन है। उनका बाह्य स्वरूप तन्मात्राएँ हैं और उनके हाथ के इशारे (मुद्राएँ) सार्थक क्रिया के सार हैं।

तात्पर्य : समस्त क्रिया का लक्ष्य अन्तत: जीवन की परम सिद्धि है और यह सिद्धि भगवान् के कृपालु हाथों द्वारा प्रदान की जाती है। भगवान् की मुद्राएँ भक्त के हृदय से सारा भय दूर करके उसे वैकुण्ठ में भगवान् का सान्निध्य दिलाने वाली होती हैं।

मण्डलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मन: ।
परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षय: ॥ १७॥

शब्दार्थ

मण्डलम्—सूर्य मंडल; देव-यजनम्—वह स्थान जहाँ परमेश्वर की पूजा होती है; दीक्षा—दीक्षा; संस्कार:—संस्कार; आत्मन:—आत्मा के लिए; परिचर्या—भक्ति; भगवत:—भगवान् की; आत्मन:—जीवात्मा के लिए; दुरित—पापों का; क्षय:—विनाश।

सूर्य मण्डल ही वह स्थान है जहाँ भगवान् पूजे जाते हैं; दीक्षा ही आत्मा की शुद्धि का साधन है और भगवान् की भक्ति करना ही किसी के पापों को समूल नष्ट करने की विधि है।

तात्पर्य : मनुष्य को अग्निमय सूर्य मण्डल का ध्यान ऐसे स्थान के रूप में करना चाहिए जहाँ ईश्वर की पूजा होती है। भगवान् कृष्ण समस्त तेज के आगार हैं इसलिए यह युक्तियुक्त है कि उनकी पूजा तेजोमय सूर्य में की जाय।

भगवान्भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ।
धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; भग-शब्द—भग शब्द का; अर्थम्—अर्थ (ऐश्वर्य); लीला-कमलम्—उनका लीला कमल; उद्वहन्—धारण करते हुए; धर्मम्—धर्म; यशः—यश; च—तथा; भगवान्—भगवान् ने; चामर-व्यजने—चामर के दो पंखे; अभजत्—स्वीकार किया है।

लीलाकमल को जोकि भग शब्द से विभिन्न ऐश्वर्यों का सूचक है सहज रूप में धारण करते हुए भगवान्, धर्म तथा यश रूपी दो चामरों से सेवित हैं।

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाकुतोभयम् ।
त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

आतपत्रम्—उनका छाता; तु—तथा; वैकुण्ठम्—वैकुण्ठ; द्विजाः—हे ब्राह्मणो; धाम—उनका निजी धाम; अकुतः-भयम्—भय से रहित; त्रि-वृत्—तीन; वेदः—वेद; सुपर्ण-आख्यः—सुपर्ण या गरुड़ नामक; यज्ञम्—साक्षात् यज्ञ; वहति—वहन करता है; पूरुषम्—भगवान् को।

हे ब्राह्मणो, भगवान् का छाता उनका धाम वैकुण्ठ है जहाँ कोई भय नहीं है और यज्ञ के स्वामी को ले जाने वाला गरुड़, तीनों वेद हैं।

अनपायिनी भगवती श्रृईः साक्षादात्मनो हरेः ।
विष्वक्षेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ।
नन्दादयोऽष्टौ द्वाःस्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अनपायिनी—पृथक् न की जा सकने वाली; भगवती—लक्ष्मी; श्रीः—श्री; साक्षात्—प्रत्यक्ष; आत्मनः—अन्तरंगा प्रकृति का; हरेः—हरि का; विष्वक्सेनः—विष्वक्सेन; तन्त्र-मूर्तिः—तंत्र शास्त्रों के रूप में; विदितः—ज्ञात है; पार्षद-अधिपः—उनके निजी संगियों का प्रधान; नन्द-आदयः—नन्द इत्यादि; अष्टौ—आठ; द्वाः-स्थाः—द्वारपाल; च—तथा; ते—वे; अणिमा-आद्याः—अणिमा तथा अन्य सिद्धियाँ; हरेः—भगवान् के; गुणाः—गुण।

भगवती श्री, जो भगवान् का संग कभी नहीं छोड़तीं, उनके साथ उनकी अन्तरंगा शक्ति के रूप में इस जगत में प्रकट होती हैं। विष्वक्सेन जोकि भगवान् के निजी संगियों में प्रमुख हैं, पंचरात्र तथा अन्य तंत्रों के रूप में विख्यात हैं। और नन्द आदि भगवान् के आठ द्वारपाल

उनकी अणिमादिक योगसिद्धियाँ हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार लक्ष्मीजी समस्त ऐश्वर्य की आदि स्रोत हैं। भौतिक प्रकृति का नियंत्रण भगवान् की अपरा शक्ति, महामाया, द्वारा होता है, जबकि लक्ष्मीजी उनकी अन्तरंगा परा शक्ति हैं। फिर भी, भगवान् की अपरा प्रकृति के ऐश्वर्य का स्रोत लक्ष्मी का परम आध्यात्मिक ऐश्वर्य है। *श्री हयशीर्ष पञ्चरात्र* में कहा गया है—

परमात्मा हरिर्देवस्तच्छक्तिः श्रीरिहोदिता।
श्रीर्देवी प्रकृतिः प्रोक्ता केशवः पुरुषः स्मृतः।
न विष्णुना विना देवी न हरिः पद्मजां विना।

''परमात्मा भगवान् हरि हैं और उनकी शक्ति इस जगत में श्री कहलाती है। देवी श्री *प्रकृति* के नाम से विख्यात हैं और परम भगवान् केशव *पुरुष* नाम से विख्यात हैं। यह दिव्य देवी न तो उनके बिना कभी रहती हैं न ही वे उनके बिना कभी प्रकट होते हैं।''

श्री विष्णु पुराण में भी (१.८.१५) कहा गया है—

नित्यैव स जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तमाः॥

''वे ब्रह्माण्ड की शाश्वत माता, भगवान् विष्णु की लक्ष्मी हैं और वे उनसे कभी भी पृथक् नहीं होतीं। हे ब्राह्मण-श्रेष्ठो! भगवान् विष्णु की ही तरह वे भी सर्वत्र उपस्थित हैं।''

विष्णु पुराण में ही (१.९.१४०) आया है—

एवं यथा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्येव तथा श्रीस्तत्सहायिनी॥

''जिस तरह ईश्वरों के ईश्वर, ब्रह्माण्ड के स्वामी जनार्दन इस जगत में अवतरित होते हैं, उसी तरह उनकी प्रिया लक्ष्मी भी अवतरित होती हैं।''

स्कन्द पुराण में लक्ष्मीजी के शुद्ध आध्यात्मिक पद का वर्णन मिलता है—

अपरं त्वक्षरं या सा प्रकृतिर्जडरूपिका।
श्रीः परा प्रकृतिः प्रोक्ता चेतना विष्णुसंश्रया॥
तं अक्षरं परं प्राहुः परतः परम् अक्षरम्।
हरिरेवाखिलगुणोऽपि अक्षरत्रयमीरितम्॥

''अपर अक्षर वह प्रकृति है, जो भौतिक जगत के रूप में प्रकट होती है। किन्तु लक्ष्मीजी परा प्रकृति कहलाती हैं। वे शुद्ध चेतना हैं और भगवान् विष्णु की प्रत्यक्ष शरण में रहती हैं। यद्यपि वे परा अच्युता कहलाती हैं किन्तु बड़े से बड़े अच्युत स्वयं भगवान् हरि हैं, जो समस्त दिव्य गुणों के आदि स्वामी हैं। इस तरह तीन स्पष्ट अच्युत वर्णित हैं।''

इस तरह यद्यपि भगवान् की अपरा शक्ति अपने कार्य में अच्युत है किन्तु क्षणिक मायामय ऐश्वर्यों को प्रदर्शित करने की उसकी शक्ति परमेश्वर की प्रिया लक्ष्मी, जोकि अन्तरंगा शक्ति हैं, की

सौजन्य से विद्यमान है।

पद्म पुराण (२५६.९-२१) में भगवान् के अठारह द्वारपालों की सूची प्राप्त है—नन्द, सुनन्द, जय, विजय, चण्ड, प्रचण्ड, भद्र, सुभद्र, धाता, विधाता, कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक्ष, वामन, शंकुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख तथा सुप्रतिष्ठित।

वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ।
अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः—वासुदेव, संकर्षण तथा प्रद्युम्न; पुरुषः—भगवान्; स्वयम्—स्वयं; अनिरुद्धः—अनिरुद्ध; इति—इस प्रकार; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण, शौनक; मूर्ति-व्यूहः—साकार रूपों के अंश; अभिधीयते—कहलाती है।.

हे ब्राह्मण शौनक, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—ये भगवान् के साक्षात् अंशों (चतुर्व्यूह) के नाम हैं।

स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ।
अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; विश्वः तैजसः प्राज्ञः—जाग्रत, सुप्त तथा सुषुप्त रूप; तुरीयः—चौथी, दिव्य अवस्था; इति—इस तरह कहे गये; वृत्तिभिः—कार्यों द्वारा; अर्थ—इन्द्रिय-विषय; इन्द्रिय—मन; आशय—आवृत चेतना; ज्ञानैः—तथा आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा; भगवान्—भगवान्; परिभाव्यते—कल्पित किये जाते हैं।.

मनुष्य भगवान् की कल्पना जाग्रत, सुप्त तथा सुषुप्त अवस्थाओं में कर सकता है, जो क्रमशः बाह्य वस्तुओं, मन तथा भौतिक बुद्धि के माध्यम से कार्य करती हैं। एक चौथी अवस्था भी है, जो चेतना का दिव्य स्तर है और शुद्ध ज्ञान के लक्षण वाली है।

अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् ।
बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

अङ्ग—अपने प्रमुख अंगों; उपाङ्ग—गौण अंगों; आयुध—हथियारों; आकल्पैः—तथा आभूषणों से; भगवान्—भगवान्; तत् चतुष्टयम्—ये चार स्वरूप (विश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा तुरीय); बिभर्ति—धारण करता है; स्म—निस्सन्देह; चतुः-मूर्तिः—अपने चार साकार रूपों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध); भगवान्—भगवान्; हरिः—हरि; ईश्वरः—परम नियन्ता।.

इस प्रकार भगवान् हरि चार साकार अंशों (मूर्तियों) के रूप में प्रकट होते हैं जिनमें से हर अंश प्रमुख अंग, गौण अंग, आयुध तथा आभूषण से युक्त होता है। इन स्पष्ट स्वरूपों से भगवान् चार अवस्थाओं को बनाये रखते हैं।

तात्पर्य : भगवान् का आध्यात्मिक शरीर, आयुध, आभूषण तथा संगी—ये सभी शुद्ध और दिव्य हैं और उनसे अभिन्न हैं।

द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक्
स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्वयैतत् ।
सृजति हरति पातीत्याख्ययानावृताक्षो
विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलभ्यः ॥ २४॥

शब्दार्थ

द्विज-ऋषभ—हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ; सः एषः—एकमात्र वही; ब्रह्म-योनिः—वेदों के स्रोत; स्वयम्-दृक्—आत्म-प्रकाशित; स्व-महिम—अपनी महिमा में; परिपूर्णः—अच्छी तरह से पूर्ण; मायया—माया द्वारा; च—तथा; स्वया—अपनी; एतत्—यह ब्रह्माण्ड; सृजति—रचता है; हरति—हर लेता है; पाति—पालन करता है; इति आख्यया—इस तरह से कल्पित; अनावृत—खुला; अक्षः—उसकी दिव्य चेतना; विवृतः—विभक्त; इव—मानो; निरुक्तः—वर्णित; तत्-परैः—उनके द्वारा जो उनके भक्त हैं; आत्म—उनके आत्मा रूप; लभ्यः—प्राप्त होने वाले।

हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ, एकमात्र वे ही आत्म-प्रकाशित, वेदों के आदि स्त्रोत, पूर्ण तथा अपनी महिमा में पूर्ण हैं। वे अपनी मायाशक्ति से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं। चूँकि वे विविध भौतिक कार्यों के कर्ता हैं अतएव कभी कभी उन्हें विभक्त कहा जाता है फिर भी वे शुद्ध ज्ञान में स्थित बने रहते हैं। जो लोग उनकी भक्ति में लगे हुए हैं, वे उन्हें अपनी असली आत्मा के रूप में अनुभव कर सकते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की संस्तुति है कि हम निम्नलिखित ध्यान द्वारा विनीत बनें—"मुझे सदैव दिखने वाली पृथ्वी मेरे भगवान् के चरणकमलों का अंश है, जो सदैव ध्यातव्य हैं। समस्त चर तथा अचर प्राणियों ने पृथ्वी की शरण ले रखी है, अत: वे मेरे भगवान् के चरणकमलों में ही शरण पाते हैं। इस कारण मुझे हर जीव का आदर करना चाहिए, किसी से द्वेष नहीं रखना चाहिए। वस्तुत: सारे जीव मेरे प्रभु के वक्षस्थल के कौस्तुभ मणि हैं। इसलिए मैं किसी जीव से न तो ईर्ष्या करूँगा न उसका मजाक उड़ाऊँगा।" इस ध्यान का अभ्यास करके मनुष्य जीवन में सफल बन सकता है।

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रु-
ग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोपवनिताव्रजभृत्यगीत-
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गल पाहि भृत्यान् ॥ २५॥

शब्दार्थ

श्री-कृष्ण—हे श्रीकृष्ण; कृष्ण-सख—हे अर्जुन के मित्र; वृष्णि—वृष्णिवंशी के; ऋषभ—हे प्रमुख; अवनि—पृथ्वी पर; ध्रुक्—विद्रोही; राजन्य-वंश—राजवंशों के; दहन—हे संहारक; अनपवर्ग—बिना ह्रास के; वीर्य—जिसका पराक्रम; गोविन्द—हे गोलोक धाम के स्वामी; गोप—ग्वालों के; वनिता—तथा गोपियाँ; व्रज—समूह; भृत्य—तथा उनके सेवक; गीत—गाया हुआ; तीर्थ—पवित्र, जिस तरह तीर्थस्थान होते हैं; श्रवः—जसिका यश; श्रवण—जिसके विषय में सुनने के लिए; मङ्गल—शुभ; पाहि—कृपया रक्षा करें; भृत्यान्—अपने सेवकों की।

हे कृष्ण, हे अर्जुन के सखा, हे वृष्णिवंशियों के प्रमुख, आप इस पृथ्वी पर उत्पात

मचाने वाले राजनीतिक दलों के संहारक हैं। आपका पराक्रम कभी घटता नहीं। आप दिव्य धाम के स्वामी हैं और आपकी पवित्र महिमा जो वृन्दावन के गोपों, गोपियों तथा उनके सेवकों द्वारा गाई जाती है, सुनने मात्र से सर्वमंगलदायिनी है। हे प्रभु, आप अपने भक्तों की रक्षा करें।

य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम् ।
तच्चित्तः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; इदम्—इसे; कल्ये—प्रातःकाल; उत्थाय—उठ कर; महा-पुरुष-लक्षणम्—विश्व रूप भगवान् के लक्षण; तत्-चित्तः—उनमें लीन मन; प्रयतः—शुद्ध हुआ; जप्त्वा—अपने आप जप करके; ब्रह्म—परब्रह्म; वेद—जान पाता है; गुहा-शयम्—हृदय के भीतर स्थित।

जो कोई प्रातःकाल जल्दी उठता है और शुद्ध मन को महापुरुष में स्थिर करके, उनके गुणों का यह वर्णन मन ही मन जपता है, वह उन्हें अपने हृदय के भीतर निवास करने वाले परब्रह्म के रूप में अनुभव करेगा।

श्रीशौनक उवाच
शुको यदाह भगवान्विष्णुराताय शृण्वते ।
सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः ॥ २७॥
तेषां नामानि कर्माणि नियुक्तानामधीश्वरैः ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शौनकः उवाच—श्री शौनक ने कहा; शुकः—शुकदेव गोस्वामी ने; यत्—जो; आह—वर्णन किया; भगवान्—महामुनि; विष्णु-राताय—राजा परीक्षित से; शृण्वते—सुन रहे; सौरः—सूर्य देव के; गणः—संगी; मासि मासि—प्रत्येक मास में; नाना—विविध; वसति—निवास करता है; सप्तकः—सात का समूह; तेषाम्—उनमें से; नामानि—नाम; कर्माणि—कर्म; नियुक्तानाम्—लगे हुए; अधीश्वरैः—अपने नियन्ता सूर्य देव के विविध स्वरूपों से; ब्रूहि—कृपा करके कहें; नः—हमसे; श्रद्दधानानाम्—श्रद्धालुओं के; व्यूहम्—स्वांशों; सूर्य-आत्मनः—सूर्य देव के रूप में उनके निजी अंश में; हरेः—भगवान् हरि का।

श्री शौनक ने कहा : कृपया आपके वचनों में अत्यन्त श्रद्धा रखने वाले हमसे उन सात साकार रूपों तथा संगियों के विभिन्न समूहों का वर्णन उनके नामों तथा कार्यों समेत करें जिन्हें सूर्य देव प्रति मास प्रदर्शित करते हैं। सूर्य देव के संगी, जो अपने स्वामी की सेवा करते हैं, सूर्य देव के अधिष्ठाता देवता के रूप में भगवान् हरि के स्वांश हैं।

तात्पर्य : शुकदेव गोस्वामी तथा राजा परीक्षित की उच्च वार्ता का विवरण सुनने के बाद अब शौनक भगवान् के अंश रूप सूर्य के विषय में पूछताछ करते हैं। यद्यपि सूर्य सारे ग्रहों के स्वामी हैं, किन्तु श्री शौनक भगवान् श्री हरि के अंश रूप इस तेजस्वी मंडल में विशेष रुचि दिखाते हैं।

सूर्य से सम्बद्ध पुरुष सात प्रकार के हैं। सूर्य की कक्षा के मार्ग में बारह मास होते हैं और हर

मास में एक पृथक् सूर्य देव तथा उनके छः संगियों का समूह अध्यक्षता करता है। वैशाख से प्रारम्भ करके बारहों महीनों में से हर एक के लिए सूर्य देव, ऋषि, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस तथा नाग के विभिन्न नाम होते हैं। इस तरह कुल सात प्रकार बन जाते हैं।

सूत उवाच
अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम् ।
निर्मितो लोकतन्त्रोऽयं लोकेषु परिवर्तते ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; अनादि—जिसका आदि न हो; अविद्यया—माया द्वारा; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; आत्मनः—परमात्मा रूप; सर्व-देहिनाम्—सारे देहधारी जीवों का; निर्मितः—उत्पन्न किया; लोक-तन्त्रः—लोकों के नियामक; अयम्—इस; लोकेषु—लोकों के बीच; परिवर्तते—भ्रमण करता है।

सूत गोस्वामी ने कहा : सूर्य समस्त ग्रहों के बीच भ्रमण करता है और उनकी गतियों को नियमित करता है। इसे समस्त देहधारियों के परमात्मा, भगवान् विष्णु, ने अपनी अनादि भौतिक शक्ति के द्वारा उत्पन्न किया है।

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृद्धरिः ।
सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

एकः—एक; एव—एकमात्र; हि—निस्सन्देह; लोकानाम्—सारे जगतों के; सूर्यः—सूर्य; आत्मा—आत्मा; आदि-कृत्—आदि स्रष्टा; हरिः—भगवान् हरि; सर्व-वेद—सारे वेदों में; क्रिया—कर्मकाण्ड का; मूलम्—आधार; ऋषिभिः—ऋषियों द्वारा; बहुधा—विविध प्रकार से; उदितः—नाम दिये।

भगवान् हरि से अभिन्न होने के कारण सूर्य देव सारे जगतों तथा उनके आदि स्रष्टा की अकेली आत्मा हैं। वे वेदों द्वारा बताये गये समस्त कर्मकाण्ड के उद्गम हैं और वैदिक ऋषियों ने उन्हें तरह-तरह के नाम दिये हैं।

कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः ।
द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन्नवधोक्तोऽजया हरिः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

कालः—काल; देशः—स्थान; क्रिया—उद्योग; कर्ता—करने वाला; करणम्—उपकरण; कार्यम्—अनुष्ठान; आगमः—शास्त्र; द्रव्यम्—साज-सामग्री; फलम्—फल; इति—इस प्रकार; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण शौनक; नवधा—नौ प्रकार की; उक्तः—वर्णित; अजया—माया के रूप में; हरिः—भगवान् हरि।

हे शौनक, माया का स्रोत होने से भगवान् हरि के अंश रूप सूर्य देव को नौ प्रकार से—काल, देश, क्रिया, कर्ता, उपकरण, अनुष्ठान, शास्त्र, पूजा की साज-सामग्री तथा प्राप्तव्य फल के अनुसार—वर्णित किया गया है।

**मध्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ।
लोकतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥ ३२॥**

शब्दार्थ

मधु-आदिषु—मधु इत्यादि; द्वादशसु—बारहों (महीनों) में; भगवान्—भगवान्; काल-रूप—काल के रूप में; धृक्—धारण करके; लोक-तन्त्राय—ग्रहों की गति को नियमित करने के लिए; चरति—यात्रा करता है; पृथक्—अलग से; द्वादशभिः—बारह; गणैः—संगियों समेत।

भगवान् अपनी कालशक्ति को सूर्य देव के रूप में प्रकट करके मधु इत्यादि बारहों महीनों में ब्रह्माण्ड के भीतर ग्रह की गति को नियमित करने हेतु इधर-उधर यात्रा करते हैं। बारहों महीनों सूर्य देव के साथ यात्रा करने वाला छह संगियों का पृथक्-पृथक् समूह है।

**धाता कृतस्थली हेतिर्वासुकी रथकृन्मुने ।
पुलस्त्यस्तुम्बुरुरिति मधुमासं नयन्त्यमी ॥ ३३॥**

शब्दार्थ

धाता कृतस्थली हेतिः—धाता, कृतस्थली तथा हेति; वासुकिः रथकृत्—वासुकि तथा रथकृत; मुने—हे मुनि; पुलस्त्यः तुम्बुरुः—पुलस्त्य तथा तुम्बुरु; इति—इस प्रकार; मधु-मासम्—मधु मास (चैत्र); नयन्ति—आगे ले जाते हैं; अमी—ये।

हे मुनि, मधु मास को, धाता सूर्य देव के रूप में, कृतस्थली अप्सरा रूप में, हेति राक्षस रूप में, वासुकि नाग के रूप में, रथकृत यक्ष रूप में, पुलस्त्य मुनि रूप में तथा तुम्बुरु गन्धर्व के रूप में, नियंत्रित करते हैं।

**अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुञ्जिकस्थली ।
नारदः कच्छनीरश्च नयन्त्येते स्म माधवम् ॥ ३४॥**

शब्दार्थ

अर्यमा पुलहः अथौजाः—अर्यमा, पुलह तथा अथौजा; प्रहेतिः पुञ्जिकस्थली—प्रहेति तथा पुञ्जिकस्थली; नारदः कच्छनीरः—नारद तथा कच्छनीर; च—भी; नयन्ति—शासन करते हैं; एते—ये; स्म—निस्सन्देह; माधवम्—माधव (वैशाख) मास में।

माधव मास पर, अर्यमा सूर्य, पुलह मुनि, अथौजा यक्ष, प्रहेति राक्षस, पुञ्जिकस्थली अप्सरा, नारद गंधर्व तथा कच्छनीर नाग के रूप में, शासन करते हैं।

**मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः ।
रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयन्त्यमी ॥ ३५॥**

शब्दार्थ

मित्रः अत्रिः पौरुषेयः—मित्र, अत्रि तथा पौरुषेय; अथ—भी; तक्षकः मेनका हहाः—तक्षक, मेनका तथा हाहा; रथस्वनः—रथस्वन; इति—इस प्रकार; हि—निस्सन्देह; एते—ये; शुक्र-मासम्—शुक्र (ज्येष्ठ) मास; नयन्ति—शासन चलाते हैं; अमी—ये।

शुक्र मास पर, मित्र सूर्य देव, अत्रि मुनि, पौरुषेय राक्षस, तक्षक नाग, मेनका अप्सरा,

हहा गन्धर्व तथा रथस्वन यक्ष के रूप में, शासन चलाते हैं।

वसिष्ठो वरुणो रम्भा सहजन्यस्तथा हुहूः ।
शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयन्त्यमी ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

वसिष्ठः वरुणः रम्भा—वशिष्ठ, वरुण तथा रम्भा; सहजन्यः—सहजन्य; तथा—भी; हुहूः—हूहू; शुक्रः चित्रस्वनः—शुक्र तथा चित्रस्वन; च एव—भी; शुचि-मासम्—शुचि (आषाढ़) मास; नयन्ति—शासन चलाते हैं; अमी—ये।

शुचि मास पर, वसिष्ठ ऋषि, वरुण सूर्य देव, रम्भा अप्सरा, सहजन्य राक्षस, हूहू गन्धर्व, शुक्र नाग तथा चित्रस्वन यक्ष रूप में, शासन करते हैं।

इन्द्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथाङ्गिराः ।
प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयन्त्यमी ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रः विश्वावसुः श्रोताः—इन्द्र, विश्वावसु तथा श्रोता; एलापत्रः—एलापत्र; तथा—और; अङ्गिराः—अंगिरा; प्रम्लोचा—प्रम्लोचा; राक्षसः वर्यः—वर्य नामक राक्षस; नभः-मासम्—नभस (श्रावण) मास; नयन्ति—शासन करते हैं; अमी—ये।

नभस (श्रावण) मास पर, इन्द्र सूर्य देव, विश्वासु गन्धर्व, श्रोता यक्ष, एलापत्र नाग, अंगिरा मुनि, प्रम्लोचा अप्सरा तथा वर्य राक्षस के रूप में, शासन करते हैं।

विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः ।
अनुम्लोचा शङ्खपालो नभस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

विवस्वान् उग्रसेनः—विवस्वान तथा उग्रसेन; च—भी; व्याघ्रः आसारणः भृगुः—व्याघ्र, आसारण तथा भृगु; अनुम्लोचा शङ्खपालः—अनुम्लोचा तथा शंखपाल; नभस्य-आख्यम्—नभस्य (भाद्र) नामक मास; नयन्ति—शासन करते हैं; अमी—ये।

नभस्य मास में, विवस्वान सूर्य देव, उग्रसेन गंधर्व, व्याघ्र राक्षस, आसारण यक्ष, भृगु मुनि, अनुम्लोचा अप्सरा तथा शंखपाल नाग के रूप में शासन चलाते हैं।

पूषा धनञ्जयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा ।
घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

पूषा धनञ्जयः वातः—पूषा, धनञ्जय तथा वात; सुषेणः सुरुचिः—सुषेण तथा सुरुचि; तथा—भी; घृताची गौतमः—घृताची तथा गौतम; च—भी; इति—इस प्रकार; तपः-मासम्—तपस् मास (माघ); नयन्ति—शासन चलाते हैं; अमी—ये।

तपस् मास पर, पूषा सूर्य देव, धञ्जय नाग, वात राक्षस, सुषेण गन्धर्व, सुरुचि यक्ष, घृताची अप्सरा तथा गौतम मुनि के रूप में शासन करते हैं।

ऋतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा ।
विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

ऋतुः वर्चा भरद्वाजः—ऋतु, वर्चा तथा भरद्वाज; पर्जन्यः सेनजित्—पर्जन्य तथा सेनजित; तथा—भी; विश्वः ऐरावतः—विश्व तथा ऐरावत; च एव—भी; तपस्य-आख्यम्—तपस्य नामक मास (फाल्गुन); नयन्ति—शासन करते हैं; अमी—ये।

तपस्य नामक मास पर, ऋतु यक्ष, वर्चा राक्षस, भरद्वाज मुनि, पर्जन्य सूर्य देव, सेनजित अप्सरा, विश्व गन्धर्व तथा ऐरावत नाग के रूप में शासन चलाते हैं।

अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी ।
विद्युच्छत्रुर्महाशङ्खः सहोमासं नयन्त्यमी ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; अंशुः कश्यपः तार्क्ष्यः—अंशु, कश्यप तथा तार्क्ष्य; ऋतसेनः—ऋतसेन; तथा—और; उर्वशी—उर्वशी; विद्युच्छत्रुः महाशङ्खः—विद्युच्छत्रु तथा महाशंख; सहः-मासम्—सहस मास (मार्गशीर्ष); नयन्ति—शासन करते हैं; अमी—ये।

सहस् मास पर, अंशु सूर्य देव, कश्यप मुनि, तार्क्ष्य यक्ष, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, विद्युच्छत्रु राक्षस तथा महाशंख नाग के रूप में शासन चलाते हैं।

भगः स्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पञ्चमः ।
कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयन्त्यमी ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

भगः स्फूर्जः अरिष्टनेमिः—भग, स्फूर्ज तथा अरिष्टनेमि; ऊर्णः—ऊर्ण; आयुः—आयुर्; च—तथा; पञ्चमः—पाँचवा संगी; कर्कोटकः पूर्वचित्तिः—कर्कोटक तथा पूर्वचित्ति; पुष्य-माअसम्—पुष्य मास; नयन्ति—शासन करते हैं; अमी—ये।

पुष्य मास पर, भग सूर्य, स्फूर्ज राक्षस, अरिष्टनेमि गन्धर्व, ऊर्ण यक्ष, आयुर् मुनि, कर्कोटक नाग तथा पूर्वचित्ति अप्सरा के रूप में, शासन चलाते हैं।

त्वष्टा ऋचीकतनयः कम्बलश्च तिलोत्तमा ।
ब्रह्मापेतोऽथ शतजिद् धृतराष्ट्र इषम्भराः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

त्वष्टा—त्वष्टा; ऋचीक-तनयः—ऋचीक का पुत्र (जमदग्नि); कम्बलः—कम्बल; च—तथा; तिलोत्तमा—तिलोत्तमा; ब्रह्मापेतः—ब्रह्मापेत; अथ—और; शतजित्—शतजित; धृतराष्ट्रः—धृतराष्ट्र; इषम्-भराः—इष मास (अश्विन) के पोषक।

इष मास का, त्वष्टा सूर्य देव, ऋचीक-पुत्र जमदग्नि मुनि, कम्बलाश्व नाग, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस, शतजित यक्ष तथा धृतराष्ट्र गन्धर्व के रूप में, पालन-पोषण करते हैं।

विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ।
विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयन्त्यमी ॥ ४४॥

शब्दार्थ

विष्णु: अश्वतर: रम्भा—**विष्णु, अश्वतर तथा रम्भा**; सूर्यवर्चा:—**सूर्यवर्चा**; च—**तथा**; सत्यजित्—**सत्यजित**; विश्वामीत्र: मखापेत:—**विश्वामित्र तथा मखापेत**; ऊर्ज-मासम्—**ऊर्ज मास (कार्तिक)**; नयन्ति—**शासन करते हैं**; अमी—**ये** ।

ऊर्ज मास पर, विष्णु सूर्य देव, अश्वतर नाग, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र मुनि तथा मखापेत राक्षस के रूप में, शासन करते हैं।

तात्पर्य : इन सारे सूर्य देवों तथा उनके संगियों का उल्लेख *कूर्म पुराण* में निम्नवत् हुआ है—

धातार्यमा च मित्रश्च वरुणश्च चेन्द्र एव च।
विवस्वान् अथा पूषा च पर्जन्यश्चांशुरेव च॥
भगस्त्वष्टा च विष्णुश्च आदित्या द्वादश स्मृता: ।
पुलस्त्य: पुलहश्चात्रिर् वसिष्ठोऽथांगिरा भृगु: ॥
गौतमोऽथ भरद्वाज: कश्यप: क्रातुरेव च।
जमदग्नि: कौशिकश्च मुनयो ब्रह्मवादिना: ॥
रथकृच्चाप्यथोजाश्च ग्रामणी: सुरुचिस्तथा।
रथचित्रस्वन: श्रोता, अरुण: सेनजित तथा॥
तार्क्ष्य अरिष्टनेमिश्च ऋतजित् सत्यजित् तथा।
अथ हेति: प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा।
वर्यो व्याघ्रस्तथापश्च वायुर्विद्युद् दिवाकर: ॥
ब्रह्मापेतश्च विपेन्द्रा यज्ञापेतश्च राक्षका: ।
वासुकि: कच्छनीरश्च तक्षक: शुक्र एव च॥
एलापत्र: शंखपालस्तथैरावतसंज्ञित: ।
धनञ्जयो महापद्मस्तथा कर्कोटको द्विजा: ॥
कम्बलोऽश्वतरश्चैव वहन्त्येनम यथाक्रमम्।
तुम्बुरुर्नारदो हाहा हूहूर्विश्वावसुस्तथा॥
उग्रसेनो वसुरुचिर्विश्ववसुरथापर: ।
चित्रसेनस्तथोर्णायुर्धृतराष्ट्रो द्विजोत्तमा: ॥
सूर्यवर्चा द्वादशैते गन्धर्वा गायतां वरा: ।
कृतस्थल्यप्सरोवर्या तथान्या पुञ्जिकस्थली॥
मेनका सहजन्या च प्रम्लोचा च द्विजोत्तमा: ।
अनुम्लोचा घृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा॥
अन्या च पूर्ववचित्ति: स्याद् अन्या चैव तिलोत्तमा।
रम्भा चेति द्विजश्रेष्ठास्तथैवाप्सरस: स्मृता: ॥

एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः ।
स्मरतां सन्ध्ययोर्नृणां हरन्त्यंहो दिने दिने ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

एताः—ये; भगवतः—भगवान्; विष्णोः—विष्णु के; आदित्यस्य—सूर्य देव के; विभूतयः—ऐश्वर्य; स्मरताम्—स्मरण रखने वालों को; सन्ध्ययोः—दिन की सन्धियों के समय; नृणाम्—ऐसे मनुष्यों के; हरन्ति—हर लेते हैं; अंहः—पाप; दिने दिने—दिन-प्रतिदिन।

ये सारे पुरुष सूर्य देव के रूप में भगवान् विष्णु के ऐश्वर्यशाली अंश हैं। ये देव उन लोगों के सारे पापों को दूर कर देते हैं, जो प्रत्येक सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय उनका स्मरण करते हैं।

द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै ।
चरन्समन्तात्तनुते परत्रेह च सन्मतिम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

द्वादशसु—बारहों; अपि—निस्सन्देह; मासेषु—महीनों में; देवः—स्वामी; असौ—इस; षड्भिः—छः प्रकार के संगियों समेत; अस्य—इस ब्रह्माण्ड के लोगों के लिए; वै—निश्चय ही; चरन्—विचरण करते हुए; समन्तात्—सभी दिशाओं में; तनुते—विस्तार करता है; परत्र—अगले जीवन में; इह—इस जीवन में; च—तथा; सत्-मतिम्—शुद्ध चेतना।

इस प्रकार बारहों महीने सूर्य देव अपने छः प्रकार के संगियों के साथ सभी दिशाओं में विचरण करते हुए इस ब्रह्माण्ड के निवासियों में इस जीवन तथा अगले जीवन के लिए शुद्ध चेतना का विस्तार करता रहता है।

सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिङ्गैरृषयः संस्तुवन्त्यमुम् ।
गन्धर्वास्तं प्रगायन्ति नृत्यन्त्यप्सरसोऽग्रतः ॥ ४७ ॥

उन्नह्यन्ति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः ।
चोदयन्ति रथं पृष्ठे नैरृता बलशालिनः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

साम-ऋक्-यजुर्भिः—साम, ऋग् तथा यजुर्वेदों के स्तोत्रों द्वारा; तत्-लिङ्गैः—जो सूर्य को प्रकट करते हैं; ऋषयः—ऋषिगण; संस्तुवन्ति—स्तुति करते हैं; अमुम्—उसकी; गन्धर्वाः—गन्धर्वगण; तम्—उसके बारे में; प्रगायन्ति—जोर-जोर से गाते हैं; नृत्यन्ति—नाचती हैं; अप्सरसः—अप्सराएँ; अग्रतः—आगे; उन्नह्यन्ति—कसते हैं; रथम्—रथ को; नागाः—नागजन; ग्रामण्यः—यक्षगण; रथ-योजकाः—रथ में घोड़े जोतने वाले; चोदयन्ति—हाँकते हैं; रथम्—रथ; पृष्ठे—पीछे से; नैरृताः—राक्षसगण; बल-शालिनः—बलवान्।

एक ओर जहाँ ऋषिगण सूर्यदेव की पहचान को प्रकट करने वाले साम, ऋग् तथा यजुर्वेदों के स्तोत्रों द्वारा सूर्य देव की स्तुति करते हैं, वहीं गन्धर्वगण भी उनकी प्रशंसा करते हैं तथा अप्सराएँ उनके रथ के आगे-आगे नाचती हैं; नागगण रथ की रस्सियों को कसते हैं और यक्षगण रथ में घोड़ों को जोतते हैं जबकि प्रबल राक्षसगण रथ को पीछे से धकेलते हैं।

वालखिल्याः सहस्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।
पुरतोऽभिमुखं यान्ति स्तुवन्ति स्तुतिभिर्विभुम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

वालखिल्याः—वालखिल्य; सहस्राणि—हजार; षष्टिः—साठ; ब्रह्म-ऋषयः—ब्रह्मर्षि; अमलाः—शुद्ध; पुरतः—आगे-आगे; अभिमुखम्—रथ की ओर मुँह किये; यान्ति—जोतते हैं; स्तुवन्ति—स्तुति करते हैं; स्तुतिभिः—वैदिक स्तुतियों द्वारा; विभुम्—सर्वशक्तिमान प्रभु को।

रथ की ओर मुँह किये साठ हजार वालखिल्य नामक ब्रह्मर्षि आगे-आगे चलते हैं और वैदिक मंत्रों द्वारा सर्वशक्तिमान सूर्य देव की स्तुति करते हैं।

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान्हरिरीश्वरः ।
कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; हि—निस्सन्देह; अनादि—प्रारम्भ से; निधनः—अथवा अन्त; भगवान्—भगवान्; हरिः—हरि; ईश्वरः—परम नियन्ता; कल्पे कल्पे—प्रत्येक ब्रह्मा के दिन में; स्वम् आत्मानम्—अपना; व्यूह्य—वभिन्नि रूपों में विस्तार करके; लोकान्—लोकों की; अवति—रक्षा करते हैं; अजः—अजन्मा प्रभु।

इस तरह अजन्मा, अनादि तथा अनन्त भगवान् सारे लोकों की रक्षा हेतु, ब्रह्मा के प्रत्येक दिन में अपना विस्तार इन अपने विशेष निजी स्वरूपों में करते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''महापुरुष का संक्षिप्त वर्णन'' नामक ग्यारहवें अध्याय के श्री भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बारह

श्रीमद्भागवत की संक्षिप्त विषय-सूची

इस अध्याय में श्री सूत गोस्वामी श्रीमद्भागवत में विवेचित विषयों का संक्षेप प्रस्तुत करते हैं।

भगवान् श्री हरि उस व्यक्ति का सारा कष्ट स्वयं हर लेते हैं, जो उनकी महिमा का श्रवण करता है। जिन शब्दों से भगवान् के असंख्य दिव्य गुणों की स्तुति की जाती है वे सत्य, शुभ तथा शुद्धिदायक हैं जबकि अन्य सारे शब्द अशुद्ध होते हैं। भगवान् सम्बन्धी कथाओं की चर्चा आनन्द प्रदान करती है और यह आनन्द सदैव नवीन बना रहता है किन्तु वे व्यक्ति जो कौओं के समान हैं, व्यर्थ की कथाओं में लीन रहते हैं, जो भगवान् से सम्बन्धित नहीं होतीं।

श्री हरि के असंख्य नामों से जो उनके यशस्वी गुणों का वर्णन करने वाले हैं, कीर्तन तथा श्रवण से सारे मनुष्य अपने पापों से छूट सकते हैं। चाहे वह भगवान् विष्णु की भक्ति से विहीन ज्ञान हो, चाहे उन्हें अर्पित न किया गया सकाम कर्म हो, किसी सच्चे सौन्दर्य से युक्त नहीं होता है। किन्तु भगवान् कृष्ण का निरन्तर स्मरण करने से मनुष्य की सारी अशुभ इच्छाएँ विनष्ट हो जाती हैं, मन शुद्ध बन जाता है और वह साक्षात्कार तथा वैराग्य से पूर्ण ज्ञान के साथ भगवान् श्री हरि की

भक्ति प्राप्त करता है।

तत्पश्चात् सूत गोस्वामी बतलाते हैं कि कुछ समय पहले, उन्होंने महाराज परीक्षित की सभा में श्री शुकदेव गोस्वामी के मुख से श्रीकृष्ण की महिमाओं का श्रवण किया था, जो सारे पापों को नष्ट करने वाली हैं और अब उन्हीं महिमाओं को नैमिषारण्य के ऋषियों को उन्होंने सुनाया है। *श्रीमद्भागवत* सुनने से आत्मा शुद्ध होती है और सभी पापों तथा सभी प्रकार के भय से मोक्ष प्राप्त करती है। इस शास्त्र के अध्ययन से वैसा ही फल प्राप्त होता है जैसाकि वेदों के अध्ययन से मिलता है और मनुष्य की सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। संयमित मन से समस्त पुराणों के इस महत्त्वपूर्ण संग्रह को पढ़ने से मनुष्य को परम भगवद्धाम प्राप्त होता है। इस *श्रीमद्भागवत* के हर श्लोक में असंख्य स्वरूपों वाले श्री हरि की कथाएँ हैं।

अन्त में श्री सूत अजन्मे तथा अनन्त परमात्मा श्रीकृष्ण के साथ ही व्यासपुत्र श्री शुकदेव को भी नमस्कार करते हैं, जो जीवों के सारे पाप विनष्ट करने में सक्षम हैं।

सूत उवाच

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ।
ब्रह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; नमः—नमस्कार; धर्माय—धर्म को; महते—महानतम; नमः—नमस्कार; कृष्णाय—कृष्ण को; वेधसे—स्रष्टा; ब्रह्मणेभ्यः—ब्राह्मणों को; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; धर्मान्—धर्म को; वक्ष्ये—कहूँगा; सनातनान्—शाश्वत।

सूत गोस्वामी ने कहा : परम धर्म भक्ति को, परम स्रष्टा भगवान् कृष्ण को तथा समस्त ब्राह्मणों को नमस्कार करके, अब मैं धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों का वर्णन करूँगा।

तात्पर्य : इस अध्याय में सूत गोस्वामी प्रथम स्कन्ध से लेकर बारहवें स्कन्ध तक श्रीमद्भागवत की सारी कथाओं का सार प्रस्तुत करेंगे।

एतद्वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् ।
भवद्भिर्यदहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

एतत्—ये; वः—तुम सबों को; कथितम्—सुनाया; विप्राः—हे ऋषियो; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; चरितम्—लीलाएँ; अद्भुतम्—अद्भुत; भवद्भिः—आप लोगों द्वारा; यत्—जो; अहम्—मैं; पृष्टः—पूछा गया; नराणाम्—मनुष्यों में से; पुरुष—वास्तविक मनुष्य के लिए; उचितम्—उपयुक्त।

हे ऋषियो, मैं आप लोगों से भगवान् विष्णु की अद्भुत लीलाएँ कह चुका हूँ, क्योंकि आप लोगों ने इनके विषय में मुझसे पूछा था। ऐसी कथाओं का सुनना उस व्यक्ति के लिए उचित है, जो वास्तव में मानव है।

तात्पर्य : *नराणाम् पुरुषोचितम्* शब्द सूचित करते हैं कि जो पुरुष तथा स्त्रियाँ आदर्श मानव

जीवन को प्राप्त हैं, वे भगवान् की महिमाओं का श्रवण और कीर्तन करते हैं किन्तु असभ्य लोगों को ईश-विज्ञान में रुचि नहीं होती।

अत्र सङ्कीर्तितः साक्षात्सर्वपापहरो हरिः ।
नारायणो हृषीकेशो भगवान्सात्वताम्पतिः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अत्र—यहाँ, श्रीमद्भागवत में; सङ्कीर्तितः—पूरी तरह प्रशंसित; साक्षात्—प्रत्यक्ष; सर्व-पाप—सारे पापों का; हरः—हर्ता; हरिः—भगवान् हरि; नारायणः—नारायण; हृषीकेशः—हृषीकेश; भगवान्—भगवान्; सात्वताम्—यदुओं के; पतिः—स्वामी।

यह ग्रंथ उन भगवान् श्री हरि का पूर्ण गुणगान करने वाला है, जो अपने भक्तों के सारे पापों को दूर करने वाले हैं। भगवान् का यह गुणगान नारायण, हृषीकेश तथा सात्वतों के प्रभु के रूप में किया गया है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण के अनेक पावन नाम उनके असामान्य दिव्य गुणों के सूचक हैं। *हरि* नाम सूचित करता है कि भगवान् अपने भक्त के हृदय के सारे पापों को दूर करने वाले हैं। *नारायण* सूचित करता है कि भगवान् सारे अन्य जीवों का भरण-पोषण करते हैं। *हृषीकेश* सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण सारे जीवों की इन्द्रियों के परम नियन्ता हैं। *भगवान्* शब्द सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण सर्वाकर्षक परम पुरुष हैं। *सात्वताम् पतिः* सूचित करता है कि भगवान् स्वभाव से साधु तथा धार्मिक पुरुषों के, विशेष रूप से उच्च यदुवंश के सदस्यों के, स्वामी हैं।

अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

अत्र—यहाँ; ब्रह्म—परब्रह्म; परम्—परम; गुह्यम्—गोपनीय; जगतः—इस ब्रह्माण्ड के; प्रभव—सृष्टि; अप्ययम्—तथा संहार; ज्ञानम्—ज्ञान; च—तथा; तत्-उपाख्यानम्—उसका अनुशीलन करने के साधन; प्रोक्तम्—कहे हुए; विज्ञान—दिव्य अनुभूति; संयुतम्—से युक्त।

यह ग्रंथ इस ब्रह्माण्ड के सृजन तथा संहार के स्रोत परब्रह्म के रहस्य का वर्णन करता है। यही नहीं, इसमें उनके दैवी ज्ञान के साथ साथ उसके अनुशीलन की विधि तथा मनुष्य द्वारा प्राप्त होने वाली दिव्य अनुभूति का भी वर्णन हुआ है।

भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ।
पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

भक्ति-योगः—भक्ति की विधि; समाख्यातः—भलीभाँति कही गई; वैराग्यम्—वैराग्य; च—तथा; तत्-आश्रयम्—उससे गौण; पारीक्षितम्—महाराज परीक्षित का; उपाख्यानम्—इतिहास; नारद—नारद का; आख्यानम्—इतिहास; एव—निस्सन्देह; च—भी।

इसमें भक्ति की विधि के साथ साथ वैराग्य का गौण स्वरूप तथा महाराज परीक्षित एवं नारद मुनि के इतिहास का भी वर्णन हुआ है।

प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः ।
शुकस्य ब्रह्मर्षभस्य संवादश्च परीक्षितः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

प्राय-उपवेशः—आमरण उपवास; राज-ऋषेः—राजर्षि के; विप्र-शापात्—ब्राह्मण-पुत्र के शाप के कारण; परीक्षितः—राजा परीक्षित का; शुकस्य—शुकदेव की; ब्रह्म-ऋषभस्य—ब्राह्मण-श्रेष्ठ; संवादः—वार्ता; च—तथा; परीक्षितः—परीक्षित से।

इसके साथ ही ब्राह्मण-पुत्र के शाप के शमनार्थ परीक्षित का आमरण उपवास करना तथा परीक्षित और ब्राह्मण-श्रेष्ठ शुकदेव के मध्य हुई वार्ता का भी वर्णन हुआ है।

योगधारणयोत्क्रान्तिः संवादो नारदाजयोः ।
अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

योग-धारणया—योग में ध्यान स्थिर करके; उत्क्रान्तिः—मृत्यु के समय मोक्ष-लाभ; संवादः—वार्ता; नारद-अजयोः—नारद तथा ब्रह्मा के बीच; अवतार-अनुगीतम्—भगवान् के अवतारों की सूची प्रस्तुत करना; च—तथा; सर्गः—सृष्टि क्रिया; प्राधानिकः—अव्यक्त प्रकृति से; अग्रतः—आगे-आगे।

***भागवत* बतलाती है कि किस तरह योग में ध्यान स्थिर करके मृत्यु के समय मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। इसमें नारद तथा ब्रह्मा के बीच हुई वार्ता, भगवान् के अवतारों की गणना तथा भौतिक प्रकृति की अव्यक्त अवस्था से लेकर क्रमशः यह ब्रह्माण्ड जिस तरह बना, उसका भी वर्णन हुआ है।**

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि *श्रीमद्भागवत* में निहित विभिन्न विवरणों तथा विषयों की पूरी सूची प्रस्तुत कर पाना कठिन होगा। इसलिए यह समझना चाहिए कि सूत गोस्वामी इन विषयों का सारांश दे रहे हैं। वे जिन विषयों का उल्लेख नहीं कर पाये, उनके विषय में हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि वे कम महत्त्वपूर्ण अथवा व्यर्थ हैं क्योंकि *श्रीमद्भागवत* का हर अक्षर तथा शब्द सर्वोच्च, कृष्णभावनाभावित ध्वनि है।

विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः ।
पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

विदुर-उद्धव—विदुर तथा उद्धव के बीच हुई; संवादः—चर्चा; क्षत्तृ-मैत्रेययोः—विदुर तथा मैत्रेय के बीच; ततः—तब; पुराण-संहिता—पुराणों के संकलन के विषय में; प्रश्नः—प्रश्न; महा-पुरुष—भगवान् के भीतर; संस्थितिः—सृष्टि का लय।

इस शास्त्र में उद्धव तथा मैत्रेय के साथ विदुर के संवादों, इस पुराण के विषय में प्रश्न

तथा प्रलय के समय भगवान् के शरीर में सृष्टि के विलीन होने का भी वर्णन हुआ है।

ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये ।
ततो ब्रह्माण्डसम्भूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; प्राकृतिकः—भौतिक प्रकृति से; सर्गः—सृष्टि; सप्त—सात; वैकृतिकाः—विकारों से उत्पन्न सृष्टि की अवस्थाएँ; च—तथा; ये—जो; ततः—तत्पश्चात्; ब्रह्म-अण्ड—ब्रह्माण्ड के अंडे का; सम्भूतिः—निर्माण; वैराजः पुरुषः—भगवान् का विश्व रूप; यतः—जिससे।

प्रकृति के गुणों के क्षोभ से उत्पन्न सृष्टि, तात्विक विकारों से विकास की सात अवस्थाएँ तथा उस विश्व अंडे का निर्माण जिससे भगवान् के विश्व रूप का उदय होता है—इन सबों का इसमें पूरी तरह वर्णन हुआ है।

कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः ।
भुव उद्धरणेऽम्भोधेर्हिरण्याक्षवधो यथा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

कालस्य—काल की; स्थूल-सूक्ष्मस्य—स्थूल तथा सूक्ष्म; गतिः—गति; पद्म—कमल का; समुद्भवः—उत्पन्न होना; भुवः—पृथ्वी का; उद्धरणे—उद्धार करने के सम्बन्ध में; अम्भोधेः—सागर से; हिरण्याक्ष-वधः—हिरण्याक्ष का वध; यथा—जिस तरह हुआ।

अन्य विषयों में काल की स्थूल तथा सूक्ष्म गतियाँ, गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति तथा हिरण्याक्ष असुर का वध जब गर्भोदक सागर से पृथ्वी का उद्धार हुआ, सम्मिलित हैं।

ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च ।
अर्धनारीश्वरस्याथ यतः स्वायम्भुवो मनुः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

ऊर्ध्व—उच्च योनियों, अर्थात् देवताओं का; तिर्यक्—पशुओं का; अवाक्—तथा निम्न योनियों का; सर्गः—सृजन; रुद्र—शिव की; सर्गः—उत्पत्ति; तथा—और; एव—निस्सन्देह; च—भी; अर्ध-नारी—आधे पुरुष तथा आधे नारी रूप में; ईश्वरस्य—ईश्वर का; अथ—तब; यतः—जिससे; स्वायम्भुवः मनुः—स्वायंभुव मनु।

भागवत में देवताओं, पशुओं तथा आसुरी योनियों की उत्पत्ति, भगवान् रुद्र के जन्म तथा अर्धनारीश्वर से स्वायम्भुव मनु के प्राकट्य का भी वर्णन हुआ है।

शतरूपा च या स्त्रीणामाद्या प्रकृतिरुत्तमा ।
सन्तानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

शतरूपा—शतरूपा; च—तथा; या—जो; स्त्रीणाम्—स्त्रियों की; आद्या—पहली; प्रकृतिः—प्रिया; उत्तमा—उत्तम; सन्तानः—सन्तान; धर्म-पत्नीनाम्—पवित्र पत्नियों की; कर्दमस्य—कर्दम ऋषि की; प्रजापतेः—प्रजापति।

इसमें प्रथम स्त्री शतरूपा, जोकि मनु की उत्तम प्रिया थीं तथा प्रजापति कर्दम की पवित्र पत्नियों की सन्तान का भी वर्णन हुआ है।

अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ।
देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अवतारः—अवतरण; भगवतः—भगवान्; कपिलस्य—कपिल का; महा-आत्मनः—परमात्मा; देवहूत्याः—देवहूति का; च—तथा; संवादः—संवाद; कपिलेन—कपिल के साथ; च—तथा; धी-मता—बुद्धिमान।

***भागवत* में महान् कपिल मुनि के रूप में भगवान् के अवतार का और इस विद्वान महात्मा तथा उनकी माता देवहूति के बीच हुई वार्ता का अंकन है।**

नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् ।
ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥
नारदस्य च संवादस्ततः प्रैयव्रतं द्विजाः ।
नाभेस्ततोऽनुचरितमृषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

नव-ब्रह्म—नौ ब्राह्मणों (मरीचि आदि ब्रह्मा के पुत्रों) की; समुत्पत्तिः—सन्तानें; दक्ष-यज्ञ—दक्ष द्वारा सम्पन्न यज्ञ का; विनाशनम्—विध्वंस; ध्रुवस्य—ध्रुव महाराज का; चरितम्—इतिहास; पश्चात्—तब; पृथोः—राजा पृथु का; प्राचीनबर्हिषः—प्राचीनबर्हि का; नारदस्य—नारद मुनि का; च—तथा; संवादः—संवाद; ततः—तत्पश्चात्; प्रैयव्रतम्—महाराज प्रियव्रत की कथा; द्विजाः—हे ब्राह्मणो; नाभेः—नाभि का; ततः—तब; अनुचरितम्—जीवन चरित्र; ऋषभस्य—राजा ऋषभ का; भरतस्य—भरत महाराज का; च—तथा।

इसमें नौ महान् ब्राह्मणों की सन्तानों, दक्ष के यज्ञ के विध्वंस तथा ध्रुव महाराज के इतिहास, तत्पश्चात् राजा पृथु एवं राजा प्राचीनबर्हि की कथाओं, प्राचीनबर्हि तथा नारद के बीच संवाद तथा महाराज प्रियव्रत के जीवन का वर्णन हुआ है। तत्पश्चात् हे ब्राह्मणो, भागवत में राजा नाभि, भगवान् ऋषभ तथा राजा भरत के चरित्र एवं कार्यों का वर्णन मिलता है।

द्वीपवर्षसमुद्राणां गिरिनद्युपवर्णनम् ।
ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

द्वीप-वर्ष-समुद्राणाम्—द्वीपों, बड़े द्वीपों तथा समुद्रों का; गिरि-नदी—पर्वतों तथा नदियों का; उपवर्णनम्—विस्तृत वर्णन; ज्योतिः-चक्रस्य—स्वर्गिक मण्डल की; संस्थानम्—व्यवस्था; पाताल—अधोलोकों की; नरक—तथा नरक की; स्थितिः—स्थिति।

भागवत में पृथ्वी के महाद्वीपों, वर्षों, समुद्रों, पर्वतों तथा नदियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें स्वर्गिक मण्डल की व्यवस्था तथा पाताल और नरक में विद्यमान स्थितियों का भी वर्णन हुआ है।

दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्तत्पुत्रीणां च सन्ततिः ।
यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥ १७॥

शब्दार्थ

दक्ष-जन्म—दक्ष का जन्म; प्रचेतोभ्यः—प्रचेताओं से; तत्-पुत्रीणाम्—उसकी पुत्रियों की; च—तथा; सन्ततिः—सन्तान; यतः—जिससे; देव-असुर-नराः—देवता, असुर तथा मनुष्य; तिर्यक्-नग-खग-आदयः—पशु, सर्प, पक्षी आदि योनियाँ।

इसमें प्रचेताओं के पुत्र रूप में प्रजापति दक्ष का पुनर्जन्म तथा दक्ष की पुत्रियों की संतति जिससे देवताओं, असुरों, मनुष्यों, पशुओं, सर्पों, पक्षियों आदि की जातियाँ प्रारम्भ हुईं—इन सबों का वर्णन हुआ है।

त्वाष्ट्रस्य जन्मनिधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः ।
दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्रादस्य महात्मनः ॥ १८॥

शब्दार्थ

त्वाष्ट्रस्य—त्वष्टा के पुत्र (वृत्र) का; जन्म-निधनम्—जन्म तथा मृत्यु; पुत्रयोः—दो पुत्रों, हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु का; च—तथा; दितेः—दिति का; द्विजाः—हे ब्राह्मणो; दैत्य-ईश्वरस्य—सबसे बड़े दैत्य; चरितम्—इतिहास; प्रह्रादस्य—प्रह्लाद का; महा-आत्मनः—महात्मा।

हे ब्राह्मणो, *भागवत* में वृत्रासुर के तथा दिति-पुत्र हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु के जन्मों तथा मृत्युओं का और उसी के साथ दिति के महानतम वंशज, महात्मा प्रह्लाद, के इतिहास का वर्णन हुआ है।

मन्वन्तरानुकथनं गजेन्द्रस्य विमोक्षणम् ।
मन्वन्तरावताराश्च विष्णोर्हयशिरादयः ॥ १९॥

शब्दार्थ

मनु-अन्तर—विभिन्न मनुओं के शासनों के; अनुकथनम्—विस्तृत विवरण; गज-इन्द्रस्य—हाथियों के राजा का; विमोक्षणम्—मोक्ष; मनु-अन्तर-अवताराः—प्रत्येक मन्वन्तर में भगवान् के विशिष्ट अवतार; च—तथा; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; हयशिर-आदयः—यथा हयशीर्ष।

इसमें प्रत्येक मनु का शासनकाल, गजेन्द्र के मोक्ष तथा प्रत्येक मन्वन्तर में भगवान् विष्णु के विशिष्ट अवतारों, यथा भगवान् हयशीर्ष, का भी वर्णन है।

कौर्मं मात्स्यं नारसिंहं वामनं च जगत्पतेः ।
क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ॥ २०॥

शब्दार्थ

कौर्मम्—कछुए के रूप में अवतार; मात्स्यम्—मछली का; नारसिंहम्—नृसिंह के रूप में; वामनम्—वामन के रूप में; च—तथा; जगत्-पतेः—ब्रह्माण्ड के स्वामी का; क्षीर-उद—दूध के सागर का; मथनम्—मन्थन; तद्वत्—इस प्रकार; अमृत-अर्थे—अमृत के हेतु; दिव-ओकसाम्—स्वर्ग के निवासियों द्वारा।

भागवत में कूर्म, मत्स्य, नरसिंह तथा वामन के रूप में ब्रह्माण्ड के स्वामी के प्राकट्यों एवं अमृत प्राप्ति के लिए देवताओं द्वारा क्षीर सागर के मंथन का भी वर्णन है।

देवासुरमहायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ।
इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

देव-असुर—देवताओं तथा असुरों का; महा-युद्धम्—महान् युद्ध; राज-वंश—राजाओं के वंशों का; अनुकीर्तनम्—एक-एक करके सुनाया जाना; इक्ष्वाकु-जन्म—इक्ष्वाकु का जन्म; तत्-वंशः—उसका वंश; सुद्यम्नस्य—तथा सुद्युम्न का (वंश); महा-आत्मनः—महात्मा।

देवताओं तथा असुरों के बीच लड़ा गया महायुद्ध, विभिन्न राजाओं के वंशों का क्रमबद्ध वर्णन तथा इक्ष्वाकु के जन्म, उसके वंश एवं महात्मा सुद्युम्न के वंश से सम्बन्धित कथाएँ—इन सबों को इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है।

इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च ।
सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्या नृगादयः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

इला-उपाख्यानम्—इला का इतिहास; अत्र—इसमें; उक्तम्—कहा गया है; तारा-उपाख्यानम्—तारा का इतिहास; एव—निस्सन्देह; च—भी; सूर्य-वंश—सूर्यदेव के वंश की; अनुकथनम्—कथा; शशाद-आद्याः—शशाद इत्यादि; नृग-आदयः—नृग इत्यादि।

इसमें इला तथा तारा के इतिहास तथा सूर्य देव के वंशजों का जिनमें शशाद तथा नृग जैसे राजा सम्मिलित हैं, वर्णन हुआ है।

सौकन्यं चाथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः ।
खट्वाङ्गस्य च मान्धातुः सौभरेः सगरस्य च ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सौकन्यम्—सुकन्या की कथा; च—तथा; अथ—तब; शर्यातेः—शर्याति की; ककुत्स्थस्य—ककुत्स्थ की; च—तथा; धी-मतः—बुद्धिमान राजा; खट्वाङ्गस्य—खट्वांग की; च—तथा; मान्धातुः—मान्धाता की; सौभरेः—सौभरि की; सगरस्य—सगर की; च—तथा।

इसमें सुकन्या, शर्याति, बुद्धिमान ककुत्स्थ, खट्वांग, मान्धाता, सौभरि तथा सगर की कथाएँ कही गई हैं।

रामस्य कोशलेन्द्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ।

निमेरङ्गपरित्यागो जनकानां च सम्भवः ॥ २४॥

शब्दार्थ

रामस्य—भगवान् रामचन्द्र की; कोशल-इन्द्रस्य—कोशल के राजा; चरितम्—लीलाएँ; किल्बिष-अपहम्—समस्त पापों को भगाने वाली; निमेः—राजा निमि का; अङ्ग-परित्यागः—शरीर त्याग; जनकानाम्—जनक के वंशजों की; च—तथा; सम्भवः—उत्पत्ति।

भागवत में कोशल के राजा भगवान् रामचन्द्र की पवित्रकारिणी लीलाओं का वर्णन है और उसी के साथ यह भी बताया गया है कि राजा निमि ने किस तरह अपना भौतिक शरीर छोड़ा। इसमें राजा जनक के वंशजों की उत्पत्ति का भी उल्लेख हुआ है।

रामस्य भार्गवेन्द्रस्य निःक्षतृईकरणं भुवः ।
ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नहुषस्य च ॥ २५॥
दौष्मन्तेर्भरतस्यापि शान्तनोस्तत्सुतस्य च ।
ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोऽनुकीर्तितः ॥ २६॥

शब्दार्थ

रामस्य—परशुराम का; भार्गव-इन्द्रस्य—भृगु मुनि के वंशजों में सबसे महान्; निःक्षत्री-करणम्—सारे क्षत्रियों का निष्कासन; भुवः—पृथ्वी के; ऐलस्य—महाराज ऐल का; सोम-वंशस्य—चन्द्र देव के वंश का; ययातेः—ययाति का; नहुषस्य—नहुष का; च—तथा; दौष्मन्तेः—दुष्मन्त के पुत्र; भरतस्य—भरत का; अपि—भी; शान्तनोः—राजा शान्तनु का; तत्—उसका; सुतस्य—पुत्र, भीष्म का; च—तथा; ययातेः—ययाति के; ज्येष्ठ-पुत्रस्य—ज्येष्ठ पुत्र; यदोः—यदु का; वंशः—वंश; अनु-कीर्तितः—महिमा-गायन किया गया है।

श्रीमद्भागवत में वर्णन हुआ है कि किस तरह भृगुवंशियों में सबसे महान् भगवान् परशुराम ने पृथ्वी से सारे क्षत्रियों का संहार किया। इसमें उन यशस्वी राजाओं के जीवनों का वर्णन हुआ है, जो चन्द्रवंश में प्रकट हुए—यथा ऐल, ययाति, नहुष, दुष्मन्त पुत्र भरत, शान्तनु तथा शान्तनु पुत्र भीष्म जैसे राजा। इसके साथ ही ययाति के ज्येष्ठ पुत्र राजा यदु द्वारा स्थापित महान् वंश का भी वर्णन हुआ है।

यत्रावतीर्णो भगवान् कृष्णाख्यो जगदीश्वरः ।
वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥ २७॥

शब्दार्थ

यत्र—जिस वंश में; अवतीर्णः—अवतरित हुए; भगवान्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-आख्यः—कृष्ण नामक; जगत्-ईश्वरः—ब्रह्माण्ड के स्वामी; वसुदेव-गृहे—वसुदेव के घर में; जन्म—जन्म; ततः—तत्पश्चात्; वृद्धिः—बड़ा होना; च—तथा; गोकुले—गोकुल में।

जिस तरह ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण यदुवंश में अवतरित हुए, जिस तरह उन्होंने वसुदेव के घर में जन्म लिया और जिस तरह वे गोकुल में बड़े हुए—इन सबका इसमें विस्तार से वर्णन हुआ है।

तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः ।
पूतनासुपयःपानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥ २८ ॥
तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः ।
अघासुरवधो धात्रा वत्सपालावगूहनम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; कर्माणी—कार्यकलाप; अपाराणि—असंख्य; कीर्तितानि—स्तुति किये जाते हैं; असुर-द्विषः—असुरों के शत्रु; पूतना—पूतना के; असु—प्राण; पयः—दूध के; पानम्—पीना; शकत—गाड़ी का; उच्चाटनम्—भंजन; शिशोः—शिशु द्वारा; तृणावर्तस्य—तृणावर्त का; निष्पेषः—दलन; तथा—और; एव—निस्सन्देह; बक-वत्सयोः—बक तथा वत्स नामक असुरों के; अघ-असुर—अघ नामक असुर का; वधः—वध; धात्रा—ब्रह्मा द्वारा; वत्स-पाल—बछड़े तथा ग्वालबालों का; अवगूहनम्—छिपाया जाना।

इसमें असुरों के शत्रु श्रीकृष्ण की असंख्य लीलाओं का, जिनमें पूतना के स्तनों से दुग्ध के साथ प्राण को चूस लेने, शकट भंजन, तृणावर्त दलन, बकासुर-वध, वत्सासुर तथा अघासुर के वध की बाल-लीलाएँ और ब्रह्मा द्वारा उनके बछड़ों तथा ग्वालबाल मित्रों का गुफा में छिपाये जाने के समय की गई लीलाओं का महिमा-गायन है।

धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलम्बस्य च सङ्क्षयः ।
गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

धेनुकस्य—धेनुक का; सह-भ्रातुः—साथियों समेत; प्रलम्बस्य—प्रलम्ब का; च—तथा; सङ्क्षयः—विनाश; गोपानाम्—ग्वालबालों की; च—तथा; परित्राणम्—रक्षा; दाव-अग्नेः—जंगल की आग से; परिसर्पतः—घेरे हुई।

श्रीमद्भागवत में बताया गया है कि किस तरह भगवान् कृष्ण तथा बलराम ने धेनुकासुर तथा उसके साथियों को मारा, किस तरह बलराम ने प्रलम्बासुर का विनाश किया और किस तरह कृष्ण ने दावाग्नि से घिरे ग्वालबालों को बचाया।

दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नन्दमोक्षणम् ।
व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः ॥ ३१ ॥
प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम् ।
गोवर्धनोद्धारणं च शक्रस्य सुरभेरथ ॥ ३२ ॥
यज्ञभिषेकः कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु ।
शङ्खचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

दमनम्—दमन; कालियस्य—कालिय का; अहेः—सर्प; महा-अहेः—विशाल सर्प से; नन्द-मोक्षणम्—महाराज नन्द को छुड़ाना; व्रत-चर्या—व्रत रखना; तु—तथा; कन्यानाम्—गोपियों का; यत्र—जिससे; तुष्टः—तुष्ट हुए; अच्युतः—भगवान् कृष्ण; व्रतैः—उनके व्रतों से; प्रसादः—कृपा; यज्ञ-पत्नीभ्यः—वैदिक यज्ञ करने वाले ब्राह्मण पत्नियों को; विप्राणाम्—ब्राह्मण पतियों का; च—तथा; अनुतापनम्—पश्चाताप; गोवर्धन-उद्धारणम्—गोवर्धन पर्वत का उठाया जाना; च—तथा;

शक्रस्य—इन्द्र द्वारा; सुरभेः—सुरभि गाय के साथ; अथ—तब; यज्ञ-अभिषेकः—पूजा तथा अनुष्ठानिक स्नान कराना; कृष्णस्य—भगवान् कृष्ण का; स्त्रीभिः—स्त्रियों के साथ; क्रीडा—खेलकूद; च—तथा; रात्रिषु—रातों में; शङ्खचूडस्य—शंखचूड़ असुर का; दुर्बुद्धेः—मूर्ख; वधः—मारा जाना; अरिष्टस्य—अरिष्ट का; केशिनः—केशी का।

कालिय नाग का दमन, नन्द महाराज का विशाल सर्प से बचाया जाना, तरुण गोपियों द्वारा कठिन व्रत किया जाना और इस तरह कृष्ण का तुष्ट होना, उन वैदिक ब्राह्मणों की पश्चाताप कर रही पत्नियों के प्रति कृपा-प्रदर्शन, गोवर्धन पर्वत के उठाये जाने के बाद इन्द्र तथा सुरभि गाय द्वारा पूजा तथा अभिषेक किया जाना, गोपियों के साथ कृष्ण की रात्रिकालीन लीलाएँ तथा शंखचूड़, अरिष्ट एवं केशी जैसे मूर्ख असुरों का वध—ये सारी लीलाएँ इसमें विस्तार से वर्णित हैं।

अक्रूरागमनं पश्चात्प्रस्थानं रामकृष्णयोः ।
व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

अक्रूर—अक्रूर का; आगमनम्—आना; पश्चात्—उसके बाद; प्रस्थानम्—प्रस्थान; राम-कृष्णयोः—बलराम तथा कृष्ण का; व्रज-स्त्रीणाम्—वृन्दावन की स्त्रियों का; विलापः—शोक; च—तथा; मथुरा-आलोकनम्—मथुरा का देखना; ततः—तब।

भागवत में अक्रूर के आने, तत्पश्चात् कृष्ण तथा बलराम का जाना, गोपियों का विलाप और मथुरा भ्रमण का वर्णन मिलता है।

गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां तथा वधः ।
मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सान्दीपनेर्गुरोः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

गज—कुवलयापीड़ नामक हाथी का; मुष्टिक-चाणूर—मुष्टिक तथा चाणूर नामक मल्लों का; कंस—कंस का; आदीनाम्—तथा अन्यों का; तथा—भी; वधः—मारा जाना; मृतस्य—मरे हुए; आनयनम्—वापस लाया जाना; सूनोः—पुत्र का; पुनः—फिर से; सान्दीपनेः—सान्दीपनि के; गुरोः—अपने गुरु।

इसमें इसका भी वर्णन हुआ है कि किस तरह कृष्ण तथा बलराम ने कुवलयापीड़ हाथी, मुष्टिक तथा चाणूर मल्लों एवं कंस आदि असुरों का वध किया और किस तरह कृष्ण अपने गुरु सान्दीपनि मुनि के मृत पुत्र को वापस ले आये।

मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम् ।
कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ ३६॥

शब्दार्थ

मथुरायाम्—मथुरा में; निवसता—रहते हुए; यदु-चक्रस्य—यदुवंशियों के हेतु; यत्—जो; प्रियम्—तृप्तिकारक; कृतम्—किया गया; उद्धव-रामाभ्याम्—उद्धव तथा बलराम के साथ; युतेन—युक्त; हरिणा—हरि द्वारा; द्विजाः—हे ब्राह्मणो।

तत्पश्चात् हे ब्राह्मणो, इस शास्त्र में बतलाया गया है कि किस तरह उद्धव और बलराम

के साथ मथुरा में निवास करते हुए भगवान् हरि ने यदुवंश की तुष्टि के लिए लीलाएँ कीं।

जरासन्धसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ।
घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

जरासन्ध—जरासन्ध द्वारा; समानीत—एकत्र की गई; सैन्यस्य—सेना का; बहुशः—अनेक बार; वधः—विनाश; घातनम्—वध; यवन-इन्द्रस्य—बर्बरों के राजाओं का; कुशस्थल्याः—द्वारका की; निवेशनम्—स्थापना।

इसके साथ ही जरासन्ध द्वारा लाई गई अनेक सेनाओं का संहार, बर्बर राजा कालयवन का वध तथा द्वारकापुरी की स्थापना का भी वर्णन हुआ है।

आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात् ।
रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः ॥ ३८॥

शब्दार्थ

आदानम्—प्राप्त करना; पारिजातस्य—पारिजात वृक्ष का; सुधर्मायाः—सुधर्मा सभाभवन का; सुर-आलयात्—देवताओं के धाम से; रुक्मिण्याः—रुक्मिणी का; हरणम्—हरण; युद्धे—युद्ध में; प्रमथ्य—हराकर; द्विषतः—अपने प्रतिद्वन्द्वियों को; हरेः—भगवान् हरि द्वारा।

इस कृति में इसका भी वर्णन है कि भगवान् कृष्ण किस तरह स्वर्ग से पारिजात वृक्ष तथा सुधर्मा सभाभवन लाये और उन्होंने किस तरह युद्ध में अपने प्रतिद्वन्द्वियों को हराकर रुक्मिणी का हरण किया।

हरस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुजकृन्तनम् ।
प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥ ३९॥

शब्दार्थ

हरस्य—शिवजी का; जृम्भणम्—जबरन जँभाई लाकर; युद्धे—युद्ध में; बाणस्य—बाण की; भुज—भुजाओं का; कृन्तनम्—काटा जाना; प्राग्ज्योतिष-पतिम्—प्राग्ज्योतिषपुर के स्वामी को; हत्वा—मार कर; कन्यानाम्—कुमारियों का; हरणम्—हरण करना; च—तथा; यत्—जिससे।

इसमें इसका भी वर्णन हुआ है कि कृष्ण ने किस तरह बाणासुर के साथ युद्ध में, शिव को जँभाई दिलाकर परास्त किया, किस तरह उन्होंने बाणासुर की भुजाएँ काटीं और किस तरह प्राग्ज्योतिषपुर के स्वामी को मारा तथा उसके बाद उस नगरी में बन्दी की गई कुमारियों को छुड़ाया।

चैद्यपौण्ड्रकशाल्वानां दन्तवक्रस्य दुर्मतेः ।
शम्बरो द्विविदः पीठो मुरः पञ्चजनादयः ॥ ४०॥
माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनम् ।

भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

चैद्य—चेदि राजा शिशुपाल का; पौण्ड्रक—पौण्ड्रक का; शाल्वानाम्—तथा शाल्व का; दन्तवक्रस्य—दन्तवक्र का; दुर्मतेः—मूर्ख; शम्बरः द्विविदः पीठः—शम्बर, द्विविद तथा पीठ नामक असुरों; मुरः पञ्चजन-आदयः—मुर, पञ्चजन तथा अन्यों; माहात्म्यम्—पराक्रम; च—तथा; वधः—मृत्यु; तेषाम्—उनकी; वाराणस्याः—वाराणसी (बनारस) नामक पवित्र नगरी का; च—तथा; दाहनम्—जलाया जाना; भार—भार का; अवतरणम्—उतारा जाना या कमी लाना; भूमेः—पृथ्वी का; निमित्ती-कृत्य—कारण बनाकर; पाण्डवान्—पाण्डु-पुत्रों को।

भागवत में चेदिराज, पौण्ड्रक, शाल्व, मूर्ख दन्तवक्र, शम्बर, द्विविद, पीठ, मुर, पञ्चजन तथा अन्य असुरों के पराक्रमों तथा मृत्युओं के वर्णन के साथ-साथ बनारस के जलाये जाने का वर्णन है। इसमें यह भी बताया गया है कि किस तरह कृष्ण ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में पाण्डवों को लगाकर पृथ्वी के भार को कम किया।

विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ।
उद्धवस्य च संवादो वसुदेवस्य चाद्भुतः ॥ ४२ ॥
यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः ।
ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

विप्र-शाप—ब्राह्मण के शाप के; अपदेशेन—बहाने; संहारः—मारा जाना; स्व-कुलस्य—अपने ही परिवार का; च—तथा; उद्धवस्य—उद्धव के साथ; च—तथा; संवादः—बातचीत; वसुदेवस्य—(नारद के साथ) वासुदेव की; च—तथा; अद्भुतः—अद्भुत्; यत्र—जिसमें; आत्म-विद्या—आत्मा का विज्ञान; हि—निस्सन्देह; अखिला—पूर्णरूपेण; प्रोक्ता—कहा गया; धर्म-विनिर्णयः—धर्म का सुनिश्चित किया जाना; ततः—तब; मर्त्य—मर्त्य जगत का; परित्यागः—त्याग; आत्म-योग—अपनी योगशक्ति के; अनुभावतः—बल पर।

भगवान् द्वारा ब्राह्मण शाप के बहाने अपने वंश की समाप्ति, नारद के साथ वसुदेव का संवाद, उद्धव तथा कृष्ण के बीच असाधारण बातचीत जो आत्म-विज्ञान को विस्तार से प्रकट करने वाली है और मानव समाज के धर्म की व्याख्या करती है और फिर भगवान् कृष्ण द्वारा अपने योग-बल से इस मर्त्यलोक का परित्याग करना—इन सारी घटनाओं का भागवत में वर्णन हुआ है।

युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुपप्लवः ।
चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

युग—विभिन्न युगों के; लक्षण—लक्षण; वृत्तिः—तथा संगत कार्य; च—भी; कलौ—वर्तमान कलियुग में; नृणाम्—मनुष्यों के; उपप्लवः—पूर्ण उत्पात; चतुः-विधः—चार प्रकार की; च—तथा; प्रलयः—प्रलय की विधि; उत्पत्तिः—सृष्टि; त्रि-विधा—तीन प्रकार की; तथा—और।

इस कृति में विभिन्न युगों में लोगों के लक्षण तथा आचरण, कलियुग में मनुष्यों द्वारा अनुभव की जाने वाली अव्यवस्था, चार प्रकार के प्रलय तथा तीन प्रकार की सृष्टि का भी

वर्णन हुआ है।

देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः ।
शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कण्डेयस्य सत्कथा ।
महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥ ४५॥

शब्दार्थ

देह-त्यागः—शरीर का छोड़ना; च—तथा; राज-ऋषेः—सन्त साधु स्वभाव वाले राजा द्वारा; विष्णु-रातस्य—परीक्षित का; धी-मतः—बुद्धिमान; शाखा—वेदों की शाखाओं का; प्रणयनम्—प्रसार; ऋषेः—ऋषि व्यासदेव से; मार्कण्डेयस्य—मार्कण्डेय ऋषि की; सत्-कथा—शुभ कथा; महा-पुरुष—भगवान् के विश्व रूप का; विन्यासः—विस्तृत व्यवस्था; सूर्यस्य—सूर्य की; जगत्-आत्मनः—ब्रह्माण्ड की आत्मा स्वरूप।

इसमें बुद्धिमान तथा साधु स्वभाव वाले राजा विष्णुरात (परीक्षित) के निधन का, श्रील व्यासदेव द्वारा वेदों की शाखाओं के प्रसार की व्याख्या का, मार्कण्डेय ऋषि विषयक शुभ कथा का तथा भगवान् के विश्व रूप एवं ब्रह्माण्ड की आत्मा सूर्य के रूप में उनके रूप की विस्तृत व्याख्या का भी विवरण है।

इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोऽहमिहास्मि वः ।
लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥ ४६॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; च—और; उक्तम्—कहा गया; द्विज-श्रेष्ठाः—हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ; यत्—जो; पृष्टः—पूछा गया; अहम्—मैं; इह—यहाँ; अस्मि—हूँ; वः—तुम्हारे द्वारा; लीला-अवतार—अपने ही आनन्द के लिए भगवान् के दैवी अवतरण; कर्माणि—कार्य; कीर्तितानि—स्तुति किये गये; इह—इस शास्त्र में; सर्वशः—पूरी तरह से।

इस प्रकार हे ब्राह्मण-श्रेष्ठो, यहाँ पर तुम लोगों ने जो कुछ मुझसे पूछा था, वह सब मैंने बतला दिया। इस ग्रंथ में भगवान् के लीला अवतारों के कार्यकलापों का विस्तार से गुणगान हुआ है।

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो गृणन् ।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ४७॥

शब्दार्थ

पतितः—गिरते हुए; स्खलितः—लड़खड़ाते; च—तथा; आर्तः—पीड़ा का अनुभव करते हुए; क्षुत्त्वा—छींकते हुए; वा—अथवा; विवशः—विवश होकर; गृणन्—कीर्तन करते हुए; हरये नमः—हरि को नमस्कार; इति—इस प्रकार; उच्चैः—जोर-जोर से; मुच्यते—मुक्त हो जाता है; सर्व-पातकात्—सभी पापों से।

यदि गिरते, लड़खड़ाते, पीड़ा अनुभव करते या छींकते समय कोई विवशता से भी उच्च स्वर से "भगवान् हरि की जय हो" चिल्लाता है, तो वह स्वतः सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

तात्पर्य : श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव ही

श्रीवास ठाकुर के आँगन में *हरये नमः कृष्ण*-गीत का जोर-जोर से उच्चारण करते थे। यही श्री चैतन्य हमें हमारी भौतिकतावादी भोगलिप्सा से मुक्त करायेंगे यदि हम भी भगवान् हरि की महिमा का उच्च स्वर से कीर्तन करें।

सङ्कीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

सङ्कीर्त्यमानः—ठीक से कीर्तन किये जाने पर; भगवान्—भगवान्; अनन्तः—असीम; श्रुत—सुना जाकर; अनुभावः—उनकी शक्ति; व्यसनम्—कष्ट; हि—निस्सन्देह; पुंसाम्—मनुष्यों के; प्रविश्य—प्रवेश करके; चित्तम्—हृदय में; विधुनोति—स्वच्छ कर देता है; अशेषम्—पूरी तरह से; यथा—जिस तरह; तमः—अंधकार; अर्कः—सूर्य; अभ्रम्—बादलों को; इव—सदृश; अति-वातः—प्रबल वायु।

जब लोग ठीक से भगवान् की महिमा का गायन करते हैं या उनकी शक्तियों के विषय में श्रवण करते हैं, तो भगवान् स्वयं उनके हृदयों में प्रवेश करते हैं और सारे दुर्भाग्य को उसी तरह दूर कर देते हैं जिस तरह सूर्य अंधेरे को दूर करता है या कि प्रबल वायु बादलों को उड़ा ले जाती है।

तात्पर्य : हो सकता है कि कोई व्यक्ति सूर्य द्वारा अंधकार हटाये जाने के दृष्टान्त से तुष्ट न हो क्योंकि कभी-कभी सूर्य गुफा के अंधकार को नहीं हटा पाता। इसलिए प्रबल वायु का दृष्टान्त दिया गया है, जो बादलों के आवरण को उड़ा ले जाती है। इस तरह यह बलपूर्वक कहा गया है कि भगवान् अपने भक्त के हृदय से भौतिक मोह के अंधकार को हटा देंगे।

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः ।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

मृषाः—झूठे; गिरः—शब्द; ताः—वे; हि—निस्सन्देह; असतीः—असत्य; असत्-कथाः—जो नित्य नहीं है उसकी व्यर्थ चर्चा; न कथ्यते—नहीं कही जाती; यत्—जिसमें; भगवान्—भगवान्; अधोक्षजः—दिव्य प्रभु; तत्—वह; एव—एकमात्र; सत्यम्—सत्य; तत्—वह; उ ह—निस्सन्देह; एव—एकमात्र; मङ्गलम्—शुभ; तत्—वह; एव—एकमात्र; पुण्यम्—पवित्र; भगवत्-गुण—भगवान् के गुणों को; उदयम्—प्रकट करने वाला।

जो शब्द दिव्य भगवान् का वर्णन नहीं करते अपितु क्षणिक व्यापारों की चर्चा चलाते हैं, वे निरे झूठे तथा व्यर्थ होते हैं। केवल वे शब्द जो भगवान् के दिव्य गुणों को प्रकट करते हैं, वास्तव में, सत्य, शुभ तथा पवित्र हैं।

तात्पर्य : सारा भौतिक साहित्य तथा विचारविमर्श, आज नहीं तो कल, समय की कसौटी पर

असफल हो जायेगा। दूसरी ओर, भगवान् का दिव्य वर्णन हमें मोह के बन्धन से छुड़ाकर हमारे नित्य पद को प्राप्त करा सकता है, जोकि भगवान् के प्रेमी दास के रूप में होता है। यद्यपि पशुवत् व्यक्तिपरब्रह्म के महिमा-गान की आलोचना कर सकते हैं, किन्तु जो सभ्य हैं उन्हें चाहिए कि भगवान् की दिव्य महिमा का तेजी से प्रचार करें।

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमःश्लोकयशोऽनुगीयते ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; एव—निस्सन्देह; रम्यम्—आकर्षक; रुचिरम्—अच्छा लगने वाला; नवम् नवम्—नया से नया; तत्—वह; एव—निस्सन्देह; शश्वत्—निरन्तर; मनसः—मन से; महा-उत्सवम्—महान् उत्सव; तत्—वह; एव—निस्सन्देह; शोक-अर्णव—दुख का सागर; शोषणम्—सुखाने वाला; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; यत्—जिसमें; उत्तमःश्लोक—सर्व-प्रसिद्ध भगवान् का; यशः—यश; अनुगीयते—गाया जाता है।

सर्व-प्रसिद्ध भगवान् के यश का वर्णन करने वाले वे शब्द आकर्षक, आस्वाद्य तथा सदैव नवीन रहते हैं। निस्सन्देह, ऐसे शब्द मन के लिए शाश्वत उत्सव हैं और वे कष्ट के सागर को सुखाने वाले हैं।

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं
यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यत्—जो; वचः—वाणी; चित्र-पदम्—अलंकृत शब्द; हरेः—भगवान् के; यशः—यश; जगत्—ब्रह्माण्ड; पवित्रम्—पवित्र करने वाली; प्रगृणीत—वर्णन करते हैं; कर्हिचित्—सदैव; तत्—वह; ध्वाङ्क्ष—कौवों के; तीर्थम्—तीर्थस्थान; न—नहीं; तु—दूसरी ओर; हंस—ज्ञानी सन्त पुरुषों द्वारा; सेवितम्—सेवित; यत्र—जिसमें; अच्युतः—भगवान् अच्युत (का वर्णन रहता है); तत्र—वहाँ; हि—एकमात्र; साधवः—साधुजन; अमलाः—शुद्ध।

जो शब्द उन भगवान् के यश का वर्णन नहीं करते जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के वातावरण को पवित्र करने वाले हैं, वे कौवों के तीर्थस्थान के समान हैं तथा ज्ञानी मनुष्य कभी भी उनका सहारा नहीं लेते। शुद्ध तथा साधु स्वभाव वाले भक्तगण केवल अच्युत भगवान् के यश को वर्णनकरने वाली कथाओं में रुचि लेते हैं।

तद्वाग्विसर्गो जनताघसम्प्लवो
यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि य-

च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; वाक्—वाणी; विसर्गः—सृष्टि; जनता—सामान्य लोगों के; अघ—पापों के; सम्प्लवः—विप्लव; यस्मिन्—जिसमें; प्रति-श्लोकम्—हर श्लोक; अबद्धवति—अनियमित ढंग से रचा जाता है; अपि—यद्यपि; नामानि—दिव्य नाम; अनन्तस्य—अनन्त भगवान् के; यशः—यश; अङ्कितानि—अंकित; यत्—जो; शृण्वन्ति—सुनते हैं; गायन्ति—गाते हैं; गृणन्ति—स्वीकार करते हैं; साधवः—ईमानदार शुद्ध पुरुष।

दूसरी ओर, जो साहित्य अनन्त भगवान् के नाम, यश, रूप लीला आदि की दिव्य महिमा के वर्णनों से पूर्ण होता है, वह एक सर्वथा भिन्न सृष्टि है, जो इस संसार की गुमराह सभ्यता के अपवित्र जीवन में क्रान्ति लाने वाले दिव्य शब्दों से पूर्ण होती है। ऐसे ग्रंथ भले ही ठीकसे रचे हुए न हों, किन्तु उन शुद्ध पुरुषों द्वारा जो पूरी तरह से ईमानदार हैं, सुने, गाये और स्वीकार किये जाते हैं।

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न ह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

नैष्कर्म्यम्—सकाम कर्म के फलों से मुक्त रहना, आत्म-साक्षात्कार; अपि—यद्यपि; अच्युत—अच्युत भगवान् की; भाव—धारणा; वर्जितम्—से विहीन; न—नहीं; शोभते—शोभा देता; ज्ञानम्—दिव्य ज्ञान; अलम्—वस्तुतः; निरञ्जनम्—उपाधियों से रहित; कुतः—कहाँ है; पुनः—फिर; शश्वत्—सदैव; अभद्रम्—अशोभनीय; ईश्वरे—ईश्वर के प्रति; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अर्पितम्—अर्पित; कर्म—सकाम कर्म; यत्—जो; अपि—भी; अनुत्तमम्—बेजोड़।

आत्म-साक्षात्कार का ज्ञान समस्त भौतिक आसक्ति से मुक्त होते हुए भी ठीक से काम नहीं करता यदि वह अच्युत (ईश्वर) के भाव से विहीन हो। तब अच्छे से अच्छे सम्पन्न कर्म जो प्रारम्भ से पीड़ादायक तथा क्षणिक स्वभाव के होते हैं, किस काम के हो सकते हैं यदि उनका उपयोग भगवान् की भक्ति के लिए नहीं किया जाता?

तात्पर्य : यह श्लोक तथा पिछले दो श्लोक किंचित परिवर्तन के साथ *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कन्ध (१.५.१०-१२) में प्राप्य हैं। इनके श्रील प्रभुपाद की टीका पर आधारित हैं।

यशःश्रियामेव परिश्रमः परो
वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु ।
अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयो-
र्गुणानुवादश्रवणादरादिभिः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

यशः—यश; श्रियाम्—तथा ऐश्वर्य में; एव—एकमात्र; परिश्रमः—श्रम; परः—महान्; वर्ण-आश्रम-आचार—वर्णाश्रम प्रणाली में अपने कार्यों को सम्पन्न करके; तपः—तपस्या; श्रुत—पवित्र शास्त्रों का सुनना; आदिषु—इत्यादि में;

अविस्मृतिः—स्मृति; श्रीधर—श्री को धारण करने वाले के; पाद-पद्मयोः—चरणकमलों के; गुण-अनुवाद—गुणों के कीर्तन का; श्रवण—सुनने से; आदर—आदर; आदिभिः—इत्यादि से।

वर्णाश्रम प्रणाली में सामान्य सामाजिक तथा धार्मिक कर्तव्यों को निबाहने में, तपस्या करने में तथा वेदों को श्रवण करने में जो महान् श्रम करना पड़ता है, उससे संसारी यश तथा ऐश्वर्य की ही उपलब्धि हो पाती है। किन्तु भगवान् लक्ष्मीपति के दिव्य गुणों का आदर करने तथा ध्यानपूर्वक उनका पाठ सुनने से मनुष्य उनके चरणकमलों का स्मरण कर सकता है।

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि च शं तनोति ।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

अविस्मृतिः—स्मृति; कृष्ण-पद-अरविन्दयोः—भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की; क्षिणोति—नष्ट करती है; अभद्राणि—अशुभ वस्तुओं को; च—तथा; शम्—सौभाग्य; तनोति—विस्तार करती है; सत्त्वस्य—हृदय का; शुद्धिम्—शुद्धि; परम-आत्म—परमात्मा के लिए; भक्तिम्—भक्ति; ज्ञानम्—ज्ञान; च—तथा; विज्ञान—प्रत्यक्ष अनुभूति; विराग—तथा वैराग्य; युक्तम्—से युक्त।

भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की स्मृति प्रत्येक अशुभ वस्तु को नष्ट करती है और परम सौभाग्य प्रदान करती है। यह हृदय को स्वच्छ बनाती है और परमात्मा की भक्ति के साथ साथ अनुभूति तथा त्याग से युक्त ज्ञान प्रदान करती है।

यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा
यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतम् ।
नारायणं देवमदेवमीश-
मजस्रभावा भजताविवेश्य ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

यूयम्—तुम सभी; द्विज-अग्र्याः—हे ब्राह्मणों में परम विख्यात; बत—निस्सन्देह; भूरि-भागाः—अत्यन्त भाग्यशाली; यत्—क्योंकि; शश्वत्—निरन्तर; आत्मनि—अपने हृदयों में; अखिल—समस्त; आत्म-भूतम्—जो परम आत्मा है; नारायणम्—भगवान् नारायण को; देवम्—भगवान् को; अदेवम्—जिनसे बढ़कर कोई देव नहीं है; ईशम्—परम नियन्ता; अजस्र—बिना व्यवधान के; भावाः—प्रेमपूर्ण; भजत—तुम लोग पूजा करो; आविवेश्य—रख कर।

हे सुप्रसिद्ध ब्राह्मणो, तुम लोग सचमुच अत्यन्त भाग्यशाली हो क्योंकि तुम लोगों ने पहले ही अपने हृदयों में भगवान् श्री नारायण को—परम नियन्ता तथा सारे जगत के परम आत्मा भगवान् को—धारण कर रखा है जिनसे बढ़ कर कोई अन्य देव नहीं है। तुम लोगों में उनके लिए अविचल प्रेम है, अतएव मैं तुम लोगों से उनकी पूजा करने के लिए अनुरोध करता हूँ।

अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं
श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्त्रात् ।
प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः
सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; च—भी; संस्मारितः—स्मरण कराया गया हूँ; आत्म-तत्त्वम्—परमात्मा का विज्ञान; श्रुतम्—सुना हुआ; पुरा—पहले; मे—मेरे द्वारा; परम-ऋषि—ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ, शुकदेव के; वक्त्रात्—मुख से; प्राय-उपवेशे—मृत्युपर्यन्त उपवास के समय; नृपतेः—राजा के; परीक्षितः—परीक्षित; सदसि—सभा में; ऋषीणाम्—ऋषियों के; महताम्—महान्; च—तथा; शृण्वताम्—उनके सुनते हुए।

अब मुझे उस ईश्वर-विज्ञान का पूरी तरह स्मरण हो आया है, जिसे मैंने पहले महर्षि शुकदेव गोस्वामी के मुख से सुना था। मैं महर्षियों की उस सभा में उपस्थित था जिन्होंने मृत्युपर्यन्त उपवास पर बैठे राजा परीक्षित से कहते उन्हें सुना था।

एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः ।
माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; वः—तुम लोगों से; कथितम्—सुनाया; विप्राः—हे ब्राह्मणो; कथनीय—उसका, जो वर्णन करने योग्य है; उरु-कर्मणः—तथा जिसके कार्य अत्यन्त महान् हैं; माहात्म्यम्—यश; वासुदेवस्य—वासुदेव का; सर्व-अशुभ—समस्त अशुभ को; विनाशनम्—नष्ट कर देने वाला।

हे ब्राह्मणो, इस तरह मैंने तुम लोगों से भगवान् वासुदेव की महिमा का वर्णन किया जिनके असामान्य कार्य स्तुति के योग्य हैं। यह वर्णन अशुभ का विनाश करने वाला है।

य एतत्श्रावयेन्नित्यं यामक्षणमनन्यधीः ।
श्लोकमेकं तदर्धं वा पादं पादार्धमेव वा ।
श्रद्धावान्योऽनुश्रृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एतत्—यह; श्रावयेत्—अन्यों को सुनाता है; नित्यम्—सदैव; याम-क्षणम्—हर घण्टे तथा हर मिनट; अनन्य-धीः—अविचल ध्यान से; श्लोकम्—श्लोक; एकम्—एक; तत्-अर्धम्—उसका आधा; वा—अथवा; पादम्—एक भी पंक्ति; पाद-अर्धम्—आधी पंक्ति; एव—निस्सन्देह; वा—अथवा; श्रद्धा-वान्—श्रद्धापूर्वक; यः—जो; अनुशृणुयात्—उचित स्त्रोत से सुनता है; पुनाति—पवित्र बनाता है; आत्मानम्—स्वयं को; एव—निस्सन्देह; सः—वह।

जो व्यक्ति अविचल ध्यान से इस ग्रंथ को प्रत्येक घण्टे के प्रत्येक क्षण निरन्तर सुनाता है तथा जो व्यक्ति एक अथवा आधा श्लोक, अथवा एक या आधी भी पंक्ति श्रद्धा भाव से सुनता है, वह अपने को पवित्र बना लेता है।

द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्यवान्भवेत् ।

पठत्यनश्नन्प्रयतः पूतो भवति पातकात् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

द्वादश्याम्—माह की द्वादशी को; एकादश्याम्—एकादशी को; वा—अथवा; शृण्वन्—सुनते हुए; आयुष्य-वान्—दीर्घ आयु वाला; भवेत्—हो जाता है; पठति—यदि पाठ करता है; अनश्नन्—बिना भोजन किये; प्रयतः—ध्यानपूर्वक; पूतः—पवित्र; भवति—हो जाता है; पातकात्—पापों के फल से।.

जो कोई इस भागवत को एकादशी या द्वादशी के दिन सुनता है उसे निश्चित रूप से दीर्घायु प्राप्त होती है और जो व्यक्ति उपवास रखते हुए इसे ध्यानपूर्वक सुनाता है, वह सारे पापों के फल से शुद्ध हो जाता है।

पुष्करे मथुरयां च द्वारवत्यां यतात्मवान् ।
उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

पुष्करे—पुष्कर नामक पवित्र स्थान में; मथुरायाम्—मथुरा में; च—तथा; द्वारवत्याम्—द्वारका में; यत-आत्म-वान्—आत्मसंयमी; उपोष्य—उपवास रख कर; संहिताम्—ग्रंथ को; एताम्—इस; पठित्वा—सुनाकर, बाँच कर; मुच्यते—मुक्त हो जाता है; भयात्—भय से।.

जो व्यक्ति मन को वश में रखता है, जो पुष्कर, मथुरा या द्वारका जैसे पवित्र स्थानों में उपवास रखता है और इस शास्त्र का अध्ययन करता है, वह सारे भय से मुक्त हो जाता है।

देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः ।
यच्छन्ति कामान्गृणतः शृण्वतो यस्य कीर्तनात् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

देवताः—देवता; मुनयः—मुनिगण; सिद्धाः—सिद्ध योगी; पितरः—पुरखे; मनवः—मनुष्य को जन्म देने वाले; नृपः—पृथ्वी के राजे; यच्छन्ति—प्रदान करते हैं; कामान्—इच्छाएँ; गृणतः—कीर्तन करने वाले को; शृण्वतः—सुनने वाले को; यस्य—जिसका; कीर्तनात्—कीर्तन करने के कारण।.

जो व्यक्ति इस पुराण का कीर्तन करके अथवा इसको सुन कर इसकी स्तुति करते हैं उन्हें देवता, ऋषि, सिद्ध, पितर, मनु तथा पृथ्वी के राजा समस्त वांछित वस्तुएँ प्रदान करते हैं।

ऋचो यजूंषि सामानि द्विजोऽधीत्यानुविन्दते ।
मधुकुल्या घृतकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम् ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

ऋचः—ऋग्वेद के; यजूंषि—यजुर्वेद के; सामानि—तथा सामवेद के मंत्र; द्विजः—ब्राह्मण; अधीत्य—पढ़ कर; अनुविन्दते—प्राप्त करता है; मधु-कुल्याः—शहद की नदियाँ; घृत-कुल्याः—घी की नदियाँ; पयः-कुल्याः—दूध की नदियाँ; च—तथा; तत्—वह; फलम्—फल।.

इस भागवत को पढ़ कर एक ब्राह्मण उन्हीं शहद, घी तथा दूध की नदियों को भोग

सकता है जिन्हें वह ऋग्, यजुर् तथा सामवेदों के मंत्रों का अध्ययन करके भोग सकता है।

पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजः ।
प्रोक्तं भगवता यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥ ६४॥

शब्दार्थ

पुराण-संहिताम्—सारे पुराणों के अनिवार्य संकलन को; एताम्—इस; अधीत्य—पढ़ कर; प्रयतः—ध्यानपूर्वक; द्विजः—ब्राह्मण; प्रोक्तम्—वर्णित; भगवता—भगवान् द्वारा; यत्—जो; तु—निस्सन्देह; तत्—वह; पदम्—पद; परमम्—परम; व्रजेत्—प्राप्त करता है।

जो ब्राह्मण समस्त पुराणों के इस अनिवार्य संकलन को श्रमपूर्वक पढ़ता है, वह परम गन्तव्य को प्राप्त होता है, जिसका वर्णन स्वयं भगवान् ने इसमें किया है।

विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् ।
वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात् ॥ ६५॥

शब्दार्थ

विप्रः—ब्राह्मण; अधीत्य—पढ़ कर; आप्नुयात्—प्राप्त करता है; प्रज्ञाम्—भक्ति में बुद्धि; राजन्य—राजा; उदधि-मेखलाम्—समुद्रों द्वारा बँधी हुई (पृथ्वी); वैश्यः—व्यापारी; निधि—कोशों का; पतित्वम्—स्वामित्व; च—तथा; शूद्रः—श्रमिक; शुध्येत—शुद्ध हो जाता है; पातकात्—पापों से।

जो ब्राह्मण *श्रीमद्भागवत* को पढ़ता है, वह भक्ति में दृढ़ बुद्धि प्राप्त करता है। जो राजा इसका अध्ययन करता है, वह पृथ्वी पर सार्वभौम सत्ता प्राप्त करता है, वैश्य विपुल कोश पा लेता है और शूद्र पापों से छूट जाता है।

कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो
हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् ।
इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः
परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसङ्गैः ॥ ६६॥

शब्दार्थ

कलि—कलह के युग का; मल-संहति—सारे कल्मष का; कालनः—संहारकर्ता; अखिल-ईशः—सारे जीवों के परम नियन्ता; हरिः—भगवान् हरि; इतरत्र—अन्यत्र; न गीयते—वर्णित नहीं होते; हि—निस्सन्देह; अभीक्ष्णम्—निरन्तर; इह—यहाँ; तु—फिर भी; पुनः—दूसरी ओर; भगवान्—भगवान्; अशेष-मूर्तिः—जो अनन्त साकार रूपों में विस्तार करता है; परिपठितः—कथा में खुल कर वर्णन किया गया है; अनु-पदम्—प्रत्येक श्लोक में; कथा-प्रसङ्गैः—कहानियों के बहाने।

सारे जीवों के परम नियन्ता भगवान् हरि कलियुग के संचित पापों का संहार करने वाले हैं, फिर भी अन्य ग्रंथों में उनकी स्तुति नहीं मिलती। किन्तु असंख्य साकार अंशों के रूप में प्रकट होने वाले ये भगवान् इस *श्रीमद्भागवत* की विविध कथाओं में निरन्तर तथा प्रचुर मात्रा में वर्णित हुए हैं।

तमहमजमनन्तमात्मतत्त्वं
जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम् ।
द्युपतिभिरजशक्रशङ्कराद्यै-
र्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ॥ ६७॥

शब्दार्थ

तम्—उस; अहम्—मैं; अजम्—अजन्मा; अनन्तम्—अनन्त; आत्म-तत्त्वम्—आदि परमात्मा को; जगत्—भौतिक ब्रह्माण्ड की; उदय—उत्पत्ति; स्थिति—पालन; संयम—तथा संहार; आत्म-शक्तिम्—जिनकी निजी शक्तियों से; द्यु-पतिभिः—स्वर्ग के स्वामियों द्वारा; अज-शक्र-शङ्कर-आद्यैः—ब्रह्मा, इन्द्र, शिव आदि द्वारा; दुरवसित—समझ में न आने वाले; स्तवम्—स्तुतियाँ; अच्युतम्—अच्युत भगवान् को; नतः—विनत; अस्मि—हूँ।

मैं अजन्मे तथा अनन्त परमात्मा को नमन करता हूँ जिनकी निजी शक्तियाँ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के लिए उत्तरदायी हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मा, इन्द्र, शंकर तथा स्वर्गलोकों के अन्य स्वामी भी उस अच्युत भगवान् की महिमा की थाह नहीं पा सकते।

उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्म-
न्युपरचितस्थिरजङ्गमालयाय ।
भगवत उपलब्धिमात्रधम्ने
सुरऋषभाय नमः सनातनाय ॥ ६८॥

शब्दार्थ

उपचित—पूरी तरह विकसित; नव-शक्तिभिः—उनकी नौ शक्तियों (प्रकृति, पुरुष, महत्, अहंकार तथा पाँच सूक्ष्म अनुभूति के रूप) द्वारा; स्वे आत्मनि—अपने भीतर; उपरचित—निकट ही व्यवस्थित; स्थिर जङ्गम—चर तथा अचर दोनों प्रकार के जीवों का; आलयाय—धाम; भगवते—भगवान् को; उपलब्धि-मात्र—शुद्ध चेतना; धाम्ने—जिसकी अभिव्यक्ति; सुर—देवताओं का; ऋषभाय—प्रमुख; नमः—मेरा नमस्कार; सनातनाय—नित्य भगवान् को।

मैं उन भगवान् को नमस्कार करता हूँ जो नित्य प्रभु हैं और अन्य सारे देवों के प्रधान हैं, जिन्होंने अपनी नौ शक्तियों को विकसित करके अपने भीतर सारे चर तथा अचर प्राणियों का धाम व्यवस्थित कर रखा है और जो सदैव शुद्ध दिव्य चेतना में स्थित रहते हैं।

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥ ६९॥

शब्दार्थ

स्व-सुख—अपने सुख में; निभृत—एकाकी; चेताः—चेतना वाला; तत्—उसके कारण; व्युदस्त—परित्यक्त; अन्य-भावः—अन्य की चेतना; अपि—यद्यपि; अजित—न जीते जा सकने वाले प्रभु, श्रीकृष्ण की; रुचिर—सुहावनी; लीला—लीलाओं से; आकृष्ट—आकर्षित; सारः—जिसका हृदय; तदीयम्—भगवान् के कार्यकलापों से युक्त; व्यतनुत—विस्तृत, व्यक्त; कृपया—दयापूर्वक; यः—जो; तत्त्व-दीपम्—परब्रह्म का तेज प्रकाश; पुराणम्—पुराण

(श्रीमद्भागवत); तम्—उनको; अखिल-वृजिन-घ्नम्—हर अशुभ वस्तु को नष्ट करने वाले; व्यास-सूनुम्—व्यासदेव के पुत्र को; नतः अस्मि—नमस्कार करता हूँ।.

मैं अपने गुरु व्यासदेव पुत्र, शुकदेव गोस्वामी, को सादर नमस्कार करता हूँ। वे ही इस ब्रह्माण्ड की सारी अशुभ वस्तुओं को नष्ट करते हैं। यद्यपि प्रारम्भ में वे ब्रह्म-साक्षात्कार के सुख में लीन थे और अन्य समस्त चेतनाओं को त्याग कर एकान्त स्थान में रह रहेथे, किन्तु वे भगवान् श्रीकृष्ण की मनोहर तथा अत्यन्त मधुमयी लीलाओं के द्वारा आकृष्ट हुए। अतएव उन्होंने अत्यन्त कृपा करके इस सर्वश्रेष्ठ पुराण, *श्रीमद्भागवत,* का प्रवचन किया जो परब्रह्म का तेज प्रकाश है और भगवान् के कार्यकलापों का वर्णन करने वाला है।

तात्पर्य : शुकदेव गोस्वामी तथा उनकी परम्परा के अन्य महान् आचार्यों को सादर नमस्कार किये बिना, मनुष्य को *श्रीमद्भागवत* के दिव्य अर्थ में गहरे पैठने का सुयोग नहीं प्राप्त हो सकता।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''श्रीमद्भागवत की संक्षिप्त विषय-सूची'' नामक बारहवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तेरह

श्रीमद्भागवत की महिमा

इस अन्तिम अध्याय में श्री सूत गोस्वामी ने प्रत्येक पुराण के विस्तार के साथ-साथ श्रीमद्भागवत की कथावस्तु, उसके उद्देश्य, उसके भेंट-रूप दिये जाने की विधि, ऐसी भेंट देने की महिमा तथा इसके कीर्तन करने तथा सुनने की महिमा का वर्णन किया है।

पुराणों का समग्र विस्तार ४ लाख श्लोकों में है जिनमें से अठारह हजार श्लोक *श्रीमद्भागवत* में हैं। इस *श्रीमद्भागवत* का उपदेश भगवान् नारायण ने ब्रह्मा को दिया था। इसकी कथाएँ पदार्थ से वैराग्य उत्पन्न कराती हैं और इसमें सारे वेदान्त का सार निहित है। जो व्यक्ति *श्रीमद्भागवत* को भेंटस्वरूप देता है उसे परम पद प्राप्त होगा। सारे पुराणों में *श्रीमद्भागवत* सर्वश्रेष्ठ है और यह वैष्णवों को सर्वाधिक प्रिय वस्तु है। यह परमहंसों के लिए उपलब्ध निर्मल परम ज्ञान को प्रकट करता है और सकाम कर्म के फलों से मुक्त होने की विधि भी बताता है—यह विधि ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति से ओतप्रोत है।

इस तरह *भागवत* की महिमा बताकर सूत गोस्वामी श्री नारायण का ध्यान आदि परब्रह्म के रूप में करते हैं, जो नितान्त शुद्ध, कल्मषरहित, शोक से रहित तथा अमर है। तत्पश्चात् वे सबसे बड़े योगी श्री शुकदेव को नमस्कार करते हैं, जो परब्रह्म से अभिन्न हैं। अन्त में भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए सूत गोस्वामी भगवान् श्री हरि को नमस्कार करते हैं, जो सारा कष्ट हरने वाले हैं।

सूत उवाच

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-

वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; यम्—जिसको; ब्रह्मा—ब्रह्मा; वरुण-इन्द्र-रुद्र-मरुतः—तथा वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुत्गण; स्तुन्वन्ति—स्तुति करते हैं; दिव्यैः—दिव्य; स्तवैः—स्तुतियों द्वारा; वेदैः—वेदों समेत; स—सहित; अङ्ग—सहायक शाखाएँ; पद-क्रम—मंत्रों का विशेष अनुक्रम; उपनिषदैः—तथा उपनिषद; गायन्ति—गाते हैं; यम्—जिसको; साम-गाः—सामवेद के गायक; ध्यान—ध्यान-समाधि में; अवस्थित—स्थित; तत्-गतेन—उन पर स्थिर; मनसा—मन के भीतर; पश्यन्ति—देखते हैं; यम्—जिसको; योगिनः—योगीजन; यस्य—जिसका; अन्तम्—अन्त; न विदुः—नहीं जानते; सुर-असुर-गणाः—सारे देवता तथा असुर; देवाय—भगवान् को; तस्मै—उसको; नमः—नमस्कार।

सूत गोस्वामी ने कहा : ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र तथा मरुत्गण दिव्य स्तुतियों का उच्चारण करके तथा वेदों को उनके अंगों, पद-क्रमों तथा उपनिषदों समेत बाँच कर जिनकी स्तुति करते हैं, सामवेद के गायक जिनका सदैव गायन करते हैं, सिद्ध योगी अपने को समाधि में स्थिर करके और अपने को उनके भीतर लीन करके जिनका दर्शन अपने मन में करते हैं तथा जिनका पार किसी देवता या असुर द्वारा कभी भी नहीं पाया जा सकता—ऐसे भगवान् को मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः ।
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनाम्भसां
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥ २ ॥

शब्दार्थ

पृष्ठे—उनकी पीठ पर; भ्राम्यत्—चक्कर लगाता; अमन्द—अत्यधिक भारी; मन्दर-गिरि—मन्दराचल के; ग्राव-अग्र—पत्थरों की नोंके; कण्डूयनात्—खुरचने से; निद्रालोः—उनींदा हो जाता है; कमठ-आकृतेः—कछुवे के रूप का; भगवतः—भगवान् का; श्वास—श्वास से निकली; अनिलाः—वायुएँ; पान्तु—रक्षा करें; वः—तुम सबों की; यत्—जिसका; संस्कार—उच्छिष्ट का; कला—रंचमात्र; अनुवर्तन-वशात्—पीछे चलने के फलस्वरूप; वेला-निभेन—जिससे वह प्रवाह के तुल्य है; अम्भसाम्—जल का; यात-आयातम्—आना-जाना; अतन्द्रितम्—अविरत; जल-निधेः—समुद्र का; न—नहीं; अद्य अपि—आज भी; विश्राम्यति—रुकता है।

जब भगवान् कूर्म (कछुवे) के रूप में प्रकट हुए तो उनकी पीठ भारी, घूमने वाले मन्दराचल पर स्थित नुकीले पत्थरों के द्वारा खरोंची गई जिसके कारण भगवान् उनींदे हो गये। इस सुप्तावस्था में भगवान् की श्वास से उत्पन्न वायुओं द्वारा आप सबों की रक्षा हो। उसी काल से, आज तक, समुद्री ज्वारभाटा पवित्र रूप में आ-जाकर भगवान् के श्वास-निश्वास का अनुकरण करता आ रहा है।

तात्पर्य : कभी कभी फूँक मारने से खुजली की अनुभूति में कमी आती है। इसी प्रकार, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि भगवान् के श्वास लेने से ज्ञानियों के मन की

खुजलाहट घट सकती है। इसी तरह, इन्द्रियतृप्ति में लगे बद्धजीवों की भी इन्द्रियों की खुजलाहट घट सकती है। इस तरह भगवान् कूर्म—कूर्मावतार—की वायुमयी श्वास का ध्यान करने से सभी प्रकार के बद्धजीव जगत के अभावों से छुटकारा पा सकते हैं और मुक्त आध्यात्मिक पद को प्राप्त हो सकते हैं। मनुष्य को चाहिए कि अपने हृदय के भीतर अनुकूल मन्द समीर की भाँति भगवान् कूर्म की लीलाओं को बहने दे। तब उसे निश्चित रूप से आध्यात्मिक शान्ति मिल सकेगी।

पुराणसङ्ख्यासम्भूतिमस्य वाच्यप्रयोजने ।
दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

पुराण—पुराणों की; सङ्ख्या—(श्लोकों की) गिनती का; सम्भूतिम्—योग; अस्य—इस भागवत के; वाच्य—विषयवस्तु; प्रयोजने—तथा उद्देश्य; दानम्—भेंटस्वरूप देने की विधि; दानस्य—ऐसी भेंट देने की; माहात्म्यम्—महिमा; पाठ-आदेः—पढ़ने आदि का; च—तथा; निबोधत—कृपया सुनें।

अब मुझसे सभी पुराणों की श्लोक संख्या सुनिये। तब इस भागवत पुराण के मूल विषय तथा उद्देश्य, इसे भेंट में देने की सही विधि, ऐसी भेंट देने का माहात्म्य और अन्त में इस ग्रंथ के सुनने तथा कीर्तन करने का माहात्म्य सुनिये।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* समस्त पुराणों में सर्वश्रेष्ठ है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि अब अन्य पुराणों का वर्णन उसी तरह किया जायेगा जिस तरह कि राजा की स्तुति करते समय उसके सहायकों के नामों का उल्लेख किया जाता है।

ब्राह्मं दश सहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च ।
श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥ ४ ॥

दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशति ।
मार्कण्डं नव वाह्नं च दशपञ्च चतुःशतम् ॥ ५ ॥

चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च ।
दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशैव तु ॥ ६ ॥

चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्रकम् ।
स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥

कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश ।
एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ॥ ८ ॥

एवं पुराणसन्दोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ।
तत्राष्टदशसाहस्रं श्रीभागवतं इष्यते ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मम्—ब्रह्म पुराण में; दश—दस; सहस्राणि—हजार; पाद्मम्—पद्म पुराण में; पञ्च-ऊन-षष्टि—साठ में पाँच कम; च—तथा; श्री-वैष्णवम्—विष्णु पुराण में; त्रय:-विंशत्—तेईस; चतु:-विंशति—चौबीस; शैवकम्—शिव पुराण में; दश-अष्टौ—अठारह; श्री-भागवतम्—श्रीमद्भागवत में; नारदम्—नारद पुराण में; पञ्च-विंशति—पच्चीस; मार्कण्डम्—मार्कण्डेय पुराण में; नव—नौ; वाह्नम्—अग्नि पुराण में; च—तथा; दश-पञ्च-चतु:-शतम्—पन्द्रह हजार चार सौ; चतु:-दश—चौदह; भविष्यम्—भविष्य पुराण में; स्यात्—से युक्त; तथा—इसके अतिरिक्त; पञ्च-शतानि—पाँच सौ (श्लोक); च—तथा; दश-अष्टौ—अठारह; ब्रह्म-वैवर्तम्—ब्रह्मवैवर्त पुराण में; लैङ्गम्—लिंग पुराण में; एकादश—ग्यारह; एव—निस्सन्देह; तु—तथा; चतु:-विंशति—चौबीस; वाराहम्—वराह पुराण में; एकाशीति-सहस्रकम्—इक्यासी हजार; स्कान्दम्—स्कन्द पुराण में; शतम्—सौ; तथा—और; च—तथा; एकम्—एक; वामनम्—वामन पुराण में; दश—दस; कीर्तितम्—कहा जाता है; कौर्मम्—कूर्म पुराण में; सप्त-दश—सत्रह; आख्यातम्—कहा जाता है; मात्स्यम्—मत्स्य पुराण में; तत्—वह; तु—तथा; चतु:-दश—चौदह; एक-ऊन-विंशत्—उन्नीस; सौपर्णम्—गरुड़ पुराण में; ब्रह्माण्डम्—ब्रह्माण्ड पुराण में; द्वादश—बारह; एव—निस्सन्देह; तु—तथा; एवम्—इस तरह; पुराण—पुराणों का; सन्दोह:—योगफल; चतु:-लक्ष:—चार लाख; उदाहृत:—बताया जाता है; तत्र—उसमें; अष्ट-दश-साहस्रम्—अठारह हजार; श्री-भागवतम्—श्रीमद्भागवत में; इष्यते—कहा जाता है।

***ब्रह्म पुराण* में दस हजार, पद्म पुराण में पचपन हजार, श्री विष्णु पुराण में तेईस हजार, शिव पुराण में चौबीस हजार तथा श्रीमद्भागवत में अठारह हजार श्लोक हैं। नारद पुराण में पच्चीस हजार हैं, मार्कण्डेय पुराण में नौ हजार, अग्नि पुराण में पन्द्रह हजार चार सौ, भविष्य पुराण में चौदह हजार पाँच सौ, ब्रह्मवैवर्त पुराण में अठारह हजार तथा लिंग पुराण में ग्यारह हजार श्लोक हैं। वराह पुराण में चौबीस हजार, स्कन्द पुराण में इक्यासी हजार एक सौ, वामन पुराण में दस हजार, कूर्म पुराण में सत्रह हजार, मत्स्य पुराण में चौदह हजार, गरुड़ पुराण में उन्नीस हजार तथा ब्रह्माण्ड पुराण में बारह हजार श्लोक हैं। इस तरह समस्त पुराणों की कुल श्लोक संख्या चार लाख है। पुनः, इनमें से अठारह हजार श्लोक अकेले *श्रीमद्भागवत* के हैं।**

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने *मत्स्य पुराण* से निम्नलिखित उद्धरण दिया है—

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुत: ।
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम् ॥
लक्षणैकेन तत् प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम् ।
वाल्मीकिनापि यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम् ॥
ब्रह्मणाभिहितं तच्च शतकोटिप्रविस्तरात् ।
आहृत्य नारदेनैव वाल्मीकाय पुन: पुन: ॥
वाल्मीकिना च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम् ।
एवं सपादा: पञ्चैते लक्षास्तेषु प्रकीर्तिता: ॥

"अठारहों पुराणों की रचना करने के बाद सत्यवती पुत्र व्यासदेव ने सम्पूर्ण *महाभारत* की रचना की जिसमें समस्त पुराणों का सार है। इसमें एक लाख से भी अधिक श्लोक हैं और यह वेद के सभी भावों से पूर्ण है। इसके अतिरिक्त भगवान् रामचन्द्र की लीलाओं का वर्णन वाल्मीकि द्वारा किया गया है, जिसे मूलत: ब्रह्मा ने सौ करोड़ श्लोकों में कहा था। बाद में उस रामायण को

नारद ने संक्षिप्त किया और उसे वाल्मीकि से कहा जिन्होंने इसे मानव जाति के समक्ष प्रस्तुत किया जिससे मनुष्य धर्म, काम तथा अर्थ की प्राप्ति कर सकें। इस तरह समस्त पुराणों तथा इतिहासों के श्लोकों की कुल ज्ञात संख्या ५,२५,००० है।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि इस ग्रंथ के प्रथम स्कंध के तृतीय अध्याय में सूत गोस्वामी ने ईश्वर के अवतारों की सूची देने के बाद यह विशेष पद जोड़ दिया है— *कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्* अर्थात् कृष्ण आदि भगवान् हैं। इसी तरह सारे पुराणों का उल्लेख करने के बाद सूत गोस्वामी ने *श्रीमद्भागवत* का पुनः उल्लेख यह बताने के लिए किया है कि यह समस्त पौराणिक ग्रंथों में प्रमुख है।

इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ।
स्थिताय भवभीताय कारुण्यात्सम्प्रकाशितम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

इदम्—इसे; भगवता—भगवान् द्वारा; पूर्वम्—पहले; ब्रह्मणे—ब्रह्मा से; नाभि-पङ्कजे—नाभि से निकले कमल पर; स्थिताय—स्थित; भव—संसार से; भीताय—भयभीत; कारुण्यात्—दया करके; सम्प्रकाशितम्—पूरीतरह प्रकट किया।

भगवान् ने सर्वप्रथम ब्रह्मा को सम्पूर्ण *श्रीमद्भागवत* प्रकाशित की। उस समय ब्रह्मा, संसार से भयभीत होकर, भगवान् की नाभि से निकले कमल पर आसीन थे।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि के पूर्व ब्रह्मा से *श्रीमद्भागवत* प्रकाशित की जैसाकि *पूर्वम्* शब्द से सूचित है। अपरंच, *भागवत* का प्रथम श्लोक कहता है— *तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये*—भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा के हृदय में पूर्णज्ञान का विस्तार किया। चूँकि बद्धात्माएँ केवल उन क्षणिक वस्तुओं का अनुभव कर सकते हैं, जो उत्पन्न, पालित तथा विनष्ट होती हैं, अतः वे आसानी से यह नहीं समझ पाते कि *श्रीमद्भागवत* नित्य दिव्य ग्रंथ है, जो परब्रह्म से अभिन्न है।

मुण्डक उपनिषद् (१.१.१) में कहा गया है—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्
अर्थवाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥

''समस्त देवताओं में सर्वप्रथम ब्रह्मा का जन्म हुआ। वे इस ब्रह्माण्ड के स्रष्टा तथा इसके रक्षक भी हैं। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को आत्म-विज्ञान की शिक्षा दी जो ज्ञान की अन्य सभी शाखाओं का आधार है।'' किन्तु अपने उच्च पद के बावजूद भी ब्रह्मा तब भी भगवान् की मायाशक्ति के प्रभाव से भयभीत रहते हैं। इस तरह यह शक्ति प्रायः दुर्लंघ्य प्रतीत होती है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु इतने दयालु हैं कि उन्होंने पूर्वी तथा दक्षिणी भारत में अपने प्रचार-कार्य के दौरान, मुक्त रूप से कृष्णभावनामृत का वितरण हर एक को किया और उनसे निवेदन किया कि वे *भगवद्गीता* के शिक्षक बनें। चैतन्य महाप्रभु ने, जोकि साक्षात् कृष्ण हैं, लोगों को यह कह कर

प्रोत्साहित किया, ''मेरे आदेश से तुम भगवान् कृष्ण के सन्देश के शिक्षक बनो और इस देश की रक्षा करो। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि माया की तरंगें तुम्हारी प्रगति को कभी रोक नहीं पायेंगी।'' (चैतन्य-चरितामृत मध्य ७.१२८)

यदि हम पापकर्मों को त्याग कर चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन में निरन्तर लगे रहें, तो हमें अपने निजी जीवन में तथा अपने प्रचार के प्रयासों में भी सफलता प्राप्त होगी।

आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् ।
हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम् ॥ ११ ॥
सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

आदि—प्रारम्भ; मध्य—मध्य; अवसानेषु—तथा अन्त में; वैराग्य—भौतिक वस्तुओं के परित्याग से सम्बन्धित; आख्यान—कथाओं से; संयुतम्—पूर्ण; हरि-लीला—भगवान् हरि की लीलाओं का; कथा-व्रात—अनेक विवेचनाओं का; अमृत—अमृत से; आनन्दित—आनन्दयुक्त बनाये गये; सत्-सुरम्—सन्त भक्तों तथा देवताओं; सर्व-वेदान्त—सारे वेदान्तों का; सारम्—सार; यत्—जो; ब्रह्म—परब्रह्म; आत्म-एकत्व—आत्मा से अभिन्नता; लक्षणम्—लक्षणों से युक्त; वस्तु—वास्तविकता; अद्वितीयम्—अद्वितीय; तत्-निष्ठम्—मुख्य विषयवस्तु के रूप में; कैवल्य—एकान्तिक भक्ति; एक—एकमात्र; प्रयोजनम्—चरम लक्ष्य।

***श्रीमद्भागवत* आदि से अन्त तक ऐसी कथाओं से पूर्ण है, जो भौतिक जीवन से वैराग्य की ओर ले जाने वाली हैं। इसमें भगवान् हरि की दिव्य लीलाओं का अमृतमय विवरण भी है, जो सन्त भक्तों तथा देवताओं को आनन्द देने वाला है। यह भागवत समस्त वेदान्त दर्शन का सार है क्योंकि इसकी विषयवस्तु परब्रह्म है, जो आत्मा से अभिन्न होते हुए भी अद्वितीय परम सत्य है। इस ग्रंथ का लक्ष्य परब्रह्म की एकान्तिक भक्ति है।**

तात्पर्य : *वैराग्य* का अर्थ है उन सारी वस्तुओं का परित्याग जिनका परब्रह्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। सन्त भक्त तथा देवता भगवान् की दिव्य लीलाओं के अमृत से प्रोत्साहित होते हैं क्योंकि ये लीलाएँ समस्त वैदिक ज्ञान की सार हैं। वैदिक ज्ञान वस्तुओं के नश्वर अस्तित्व पर बल देते हुए उनकी चरम सत्यता का निषेध करता है। चरम लक्ष्य *वस्तु* है, जो *अद्वितीय* अर्थात् बेजोड़ है। वह अद्वय परब्रह्म दिव्य पुरुष है, जो लौकिक श्रेणियों तथा हमारे भौतिक जगत के पुरुष के लक्षणों से बहुत परे है। इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* का चरम उद्देश्य निष्ठावान पाठक को भगवत्प्रेम में प्रशिक्षित करना है। भगवान् कृष्ण अपने नित्य दिव्य गुणों के कारण अत्यन्त प्रिय हैं। इस जगत का सौन्दर्य भगवान् के असीम सौन्दर्य का मन्द प्रतिबिम्ब है। निश्चित रूप से, *श्रीमद्भागवत* लगातार परब्रह्म की महिमा का उद्घोष करता है, अतएव यह परम आध्यात्मिक ग्रंथ है, जो पूर्ण कृष्णभावनामृत में कृष्ण-प्रेम के अमृत का पूर्ण आस्वाद कराता है।

प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ।

ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

प्रौष्ठपद्याम्—भाद्र मास में; पौर्णमास्याम्—पूर्णमासी के दिन; हेम-सिंह—सोने के सिंहासन पर; समन्वितम्—आसीन; ददाति—भेंट के रूप में देता है; यः—जो; भागवतम्—श्रीमद्भागवत को; सः—वह; याति—जाता है; परमाम्—परम; गतिम्—गन्तव्य को।

यदि कोई व्यक्ति भाद्र मास की पूर्णमासी को सोने के सिंहासन पर रख कर *श्रीमद्भागवत* का दान उपहार के रूप में देता है, तो उसे परम दिव्य गन्तव्य प्राप्त होगा।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* को सोने के सिंहासन पर रखना चाहिए क्योंकि यह समस्त वाङ्मय का राजा है। भाद्र मास की पूर्णमासी को वाङ्मय का राजा-रूप सूर्य, सिंह राशि पर स्थित होता है और ऐसा दिखता है मानो राज-सिंहासन पर बैठाया गया हो (ज्योतिष के अनुसार सूर्य सिंह राशिमें सर्वोच्च स्थिति पर होता है) इस तरह मनुष्य बिना किसी बंधन के इस परम दिव्य ग्रंथ *श्रीमद्भागवत* की पूजा कर सकता है।

राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे ।
यावद्भागवतं नैव श्रूयतेऽमृतसागरम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

राजन्ते—चमकते हैं; तावत्—तब तक; अन्यानि—अन्य; पुराणानि—पुराण; सताम्—साधु पुरुषों की; गणे—सभा में; यावत्—जब तक; भागवतम्—श्रीमद्भागवत को; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; श्रूयते—सुना जाता है; अमृत-सागरम्—अमृत का सागर।

अन्य सारे पुराण तब तक सन्त भक्तों की सभा में चमकते हैं जब तक अमृत के महासागर श्रीमद्भागवत को नहीं सुना जाता।

तात्पर्य : अन्य वैदिक ग्रंथ तथा संसार के अन्य शास्त्र तब तक प्रधान बने रहते हैं जब तक *श्रीमद्भागवत* को भलीभाँति सुना और समझा नहीं जाता। *श्रीमद्भागवत* अमृत का सागर है और सर्वोच्च ग्रंथ है। *श्रीमद्भागवत* के श्रद्धापूर्ण श्रवण, वाचन तथा वितरण से संसार पवित्र हो जायेगा और अन्य निकृष्ट ग्रंथ फीके पड़ जायेंगे।

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सर्व-वेदान्त—समस्त वेदान्त दर्शन का; सारम्—सार; हि—निस्सन्देह; श्री-भागवतम्—श्रीमद्भागवत; इष्यते—कहा जाता है कि; तत्—इसके; रस-अमृत—अमृतमय स्वाद से; तृप्तस्य—तृप्त होने वाले के लिए; न—नहीं; अन्यत्र—दूसरी जगह; स्यात्—है; रतिः—आकर्षण; क्वचित्—कभी।

***श्रीमद्भागवत* को समस्त वैदिक दर्शन का सार कहा जाता है। जिसे इसके अमृतमय रस से तुष्टि हुई है, वह कभी अन्य किसी ग्रंथ के प्रति आकृष्ट नहीं होगा।**

निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा ।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

निम्न-गानाम्—समुद्र की ओर बह कर जाने वाली नदियों का; यथा—जिस तरह; गङ्गा—गंगा नदी; देवानाम्—समस्त देवों में; अच्युतः—अच्युत भगवान्; यथा—जिस तरह; वैष्णवानाम्—भगवान् विष्णु के भक्तों में; यथा—जिस तरह; शम्भुः—शिव; पुराणानाम्—पुराणों में; इदम्—यह; तथा—उसी प्रकार से।

जिस तह गंगा समुद्र की ओर बहने वाली समस्त नदियों में सबसे बड़ी है, भगवान् अच्युत देवों में सर्वोच्च हैं और भगवान् शम्भु (शिव) वैष्णवों में सबसे बड़े हैं, उसी तरह *श्रीमद्भागवत* समस्त पुराणों में सर्वोपरि है।

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ।
तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

क्षेत्राणाम्—पवित्र स्थलों में; च—तथा; एव—निस्सन्देह; सर्वेषाम्—समस्त; यथा—जिस तरह; काशी—बनारस; हि—निस्सन्देह; अनुत्तमा—अद्वितीय; तथा—उसी तरह; पुराण-व्रातानाम्—समस्त पुराणों में; श्रीमत्-भागवतम्—श्रीमद्भागवत; द्विजाः—हे ब्राह्मणो।

हे ब्राह्मणो, जिस तरह पवित्र स्थानों में काशी नगरी अद्वितीय है, उसी तरह समस्त पुराणों में *श्रीमद्भागवत* सर्वश्रेष्ठ है।

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविस्कृतं
तच्छृण्वन्सुपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्रीमत्-भागवतम्—श्रीमद्भागवत; पुराणम्—पुराण; अमलम्—पूर्णतया शुद्ध; यत्—जो; वैष्णवानाम्—वैष्णवों को; प्रियम्—अत्यन्त प्रिय; यस्मिन्—जिसमें; पारमहंस्यम्—सर्वोच्च भक्तों द्वारा प्राप्य; एकम्—एकमात्र; अमलम्—नितान्त शुद्ध; ज्ञानम्—ज्ञान; परम्—परम; गीयते—गाया जाता है; तत्र—उसमें; ज्ञान-विराग-भक्ति-सहितम्—ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति के साथ; नैष्कर्म्यम्—समस्त भौतिक कर्म से मुक्ति; आविष्कृतम्—प्रकाशित किया गया है; तत्—वह; शृण्वन्—सुनते हुए; सु-पठन्—भलीभाँति कीर्तन करते हुए; विचारण-परः—जो समझने का इच्छुक है; भक्त्या—भक्ति के साथ; विमुच्येत्—पूरी तरह छूट जाता है; नरः—मनुष्य।

श्रीमद्भागवत निर्मल पुराण है। यह वैष्णवों को अत्यन्त प्रिय है क्योंकि यह परमहंसों के शुद्ध तथा सर्वोच्च ज्ञान का वर्णन करने वाला है। यह भागवत समस्त भौतिक कर्म से छूटने के साधन के साथ ही दिव्य ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति की विधियों को प्रकाशित करता है। जो कोई भी *श्रीमद्भागवत* को गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयास करता है, जो समुचित ढंग से श्रवण करता है और भक्तिपूर्वक कीर्तन करता है, वह पूर्ण मुक्त हो जाता है।

तात्पर्य : चूँकि *श्रीमद्भागवत* प्रकृति के गुणों द्वारा कल्मष से पूरी तरह मुक्त है, अतएव इसमें

अद्वितीय आध्यात्मिक सौन्दर्य पाया जाता है और इसीलिए यह भगवद्भक्तों को प्रिय है। *पारमहंस्यम्* शब्द सूचित करता है कि पूर्णतया मुक्तात्माएँ भी *श्रीमद्भागवत*को सुनने और सुनाने के लिए उत्सुक रहती हैं। जो लोग मुक्त होने के लिए प्रयासरत हैं उन्हें इस ग्रंथ को श्रद्धा तथा भक्ति सहित श्रवण करना चाहिए तथा वाचन द्वारा इसकी सेवा करनी चाहिए।

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ।
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यत-
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

कस्मै—ब्रह्मा को; येन—जिसके द्वारा; विभासितः—पूरी तरह प्रकट किया गया; अयम्—यह; अतुलः—अतुलनीय; ज्ञान—दिव्य ज्ञान का; प्रदीपः—दीपक; पुरा—बहुत काल पहले; तत्-रूपेण—ब्रह्मा के रूप में; च—तथा; नारदाय—नारद को; मुनये—महर्षि को; कृष्णाय—कृष्ण द्वैपायन व्यास को; तत्-रूपिणा—नारद के रूप में; योगि-इन्द्राय—योगियों में श्रेष्ठ, शुकदेव; तत्-आत्मना—नारद के रूप में; अथ—तब; भगवत्-राताय—परीक्षित महाराज को; कारुण्यतः—कृपावश; तत्—वह; शुद्धम्—शुद्ध; विमलम्—निष्कलुष; विशोकम्—शोक से मुक्त; अमृतम्—अमर; सत्यम्—सत्य का; परम्—परम; धीमहि—मैं ध्यान करता हूँ।.

मैं उन शुद्ध तथा निष्कलुष परब्रह्म का ध्यान करता हूँ जो दुख तथा मृत्यु से रहित हैं और जिन्होंने प्रारम्भ में इस ज्ञान के अतुलनीय दीपक को ब्रह्मा से प्रकट किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने इसे नारद मुनि से कहा, जिन्होंने इसे कृष्ण द्वैपायन व्यास से कह सुनाया। श्रील व्यास ने इस भागवत को मुनियों में सर्वोपरि, शुकदेव गोस्वामी, को बतलाया जिन्होंने कृपा करके इसे महाराज परीक्षित से कहा।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* के प्रथम श्लोक में कहा गया है—*सत्यं परं धीमहि*—मैं परम सत्य का ध्यान करता हूँ। और इस भव्य दिव्य ग्रंथ के अन्त में भी वही शुभ ध्वनि सुनाई पड़ती है। इस श्लोक में *तद्-रूपेण, तद्-रूपिणा* तथा *तद्-आत्मना* शब्द स्पष्ट सूचित करते हैं कि प्रारम्भ में स्वयं कृष्ण ने यह *श्रीमद्भागवत* ब्रह्मा से कही और फिर नारद मुनि, द्वैपायन व्यास, शुकदेव गोस्वामी तथा अन्य महर्षियों के माध्यम से इसे कहलाते रहे। दूसरे शब्दों में, जब भी सन्त भक्त *श्रीमद्भागवत* का उच्चारण करते हैं, तो यह समझना चाहिए कि स्वयं कृष्ण इस परम सत्य को अपने शुद्ध प्रतिनिधियों के माध्यम से बोल रहे हैं। जो भी व्यक्ति भगवान् के प्रामाणिक भक्तों से यह ग्रंथ विनीत भाव से सुनता है, वह बद्ध अवस्था को पार करके परब्रह्म का ध्यान करने और उनकी सेवा करने के योग्य बन जाता है।

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे ।
य इदम्कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥ २० ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तस्मै—उस; भगवते—भगवान्; वासुदेवाय—वासुदेव को; साक्षिणे—परम साक्षी; यः—जो; इदम्—इस; कृपया—कृपावश; कस्मै—ब्रह्मा को; व्याचचक्षे—बतलाया; मुमुक्षवे—मुक्ति चाहने वाले को।.

हम सर्वव्यापक साक्षी भगवान् वासुदेव को नमस्कार करते हैं जिन्होंने कृपा करके ब्रह्मा को यह विज्ञान तब बताया जब वे उत्सुकतापूर्वक मोक्ष चाह रहे थे।

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

योगि-इन्द्राय—योगियों के राजा को; नमः—नमस्कार; तस्मै—उस; शुकय—शुकदेव गोस्वामी को; ब्रह्म-रूपिणे—परब्रह्म के साकार रूप; संसार-सर्प—संसार रूपी सर्प द्वारा; दष्टम्—काटा हुआ; यः—जिसने; विष्णु-रातम्—महाराज परीक्षित को; अमूमुचत्—मुक्त कर दिया।.

मैं श्री शुकदेव गोस्वामी को सादर नमस्कार करता हूँ जो श्रेष्ठ योगी-मुनि हैं और परब्रह्म के साकार रूप हैं। उन्होंने संसार रूपी सर्प द्वारा काटे गये परीक्षित महाराज को बचाया।

तात्पर्य : अब सूत गोस्वामी अपने गुरु शुकदेव गोस्वामी को नमस्कार करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह स्पष्ट करते हैं कि जिस तरह अर्जुन को भौतिक मोह में डाल दिया गया था जिससे *भगवद्गीता* का प्रवचन हो सके, उसी तरह भगवान् के शुद्ध मुक्त भक्त राजा परीक्षित को मरने का शाप दिया गया जिससे *श्रीमद्भागवत* कही जा सके। वस्तुत: राजा परीक्षित *विष्णुरात* हैं अर्थात् वे शतत् भगवान् के संरक्षण में रहते हैं। शुकदेव गोस्वामी ने शुद्ध भक्त के दयामय स्वभाव को तथा उसकी संगति के प्रबुद्धकारी प्रभाव को दिखाने के लिए राजा को उसके तथाकथित मोह से छुटकारा दिला दिया।

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

भवे भवे—जन्म-जन्मांतर; यथा—जिससे; भक्तिः—भक्ति; पादयोः—चरणकमलों पर; तव—तुम्हारे; जायते—उत्पन्न हो; तथा—उसी तरह; कुरुष्व—कीजिये; देव-ईश—हे ईशों के ईश; नाथः—स्वामी; त्वम्—तुम; नः—हमारे; यतः—क्योंकि; प्रभो—हे प्रभु।.

हे ईशों के ईश, हे स्वामी, आप हमें जन्म-जन्मांतर तक अपने चरणकमलों की शुद्ध भक्ति का वर दें।

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दु:खशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

नाम-सङ्कीर्तनम्—नाम का सामूहिक कीर्तन; यस्य—जिसका; सर्व-पाप—सारे पापों को; प्रणाशनम्—नष्ट करने वाले; प्रणामः—नमस्कार; दुःख—दुख का; शमनः—शमन करने वाले; तम्—उसको; नमामि—नमस्कार करता हूँ; हरिम्—हरि को; परम्—परम।.

मैं उन भगवान् हरि को सादर नमस्कार करता हूँ जिनके पवित्र नामों का सामूहिक कीर्तन सारे पापों को नष्ट करता है और जिनको नमस्कार करने से सारे भौतिक कष्टों से छुटकारा मिल जाता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्द के अन्तर्गत ''श्रीमद्भागवत की महिमा'' नामक तेरहवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

यह बारहवाँ स्कन्ध रविवार दिनांक १८ जुलाई १९८२ को गैन्सविले, फ्लोरिडा में पूरा हुआ।

बारहवाँ स्कंध पूर्ण हुआ

हम ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशत श्री श्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद को और उनकी कृपा से वृन्दावन के षड् गोस्वामियों को, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके नित्य संगियों को, श्री श्री राधाकृष्ण को तथा परम दिव्य ग्रंथ *श्रीमद्भागवत* को सादर नमस्कार करते हैं। श्रील प्रभुपाद की अहैतुकी कृपा से हम श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, श्रील श्रीधर स्वामी तथा अन्य महान् वैष्णव आचार्यों के चरणकमलों तक पहुँच पाये और उनकी मुक्त टीकाओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके हमने *श्रीमद्भागवत* को पूर्ण करने का विनीत प्रयास किया है। हम अपने गुरु श्रील प्रभुपाद के तुच्छ सेवक हैं और उनकी कृपा से *श्रीमद्भागवत* को प्रस्तुत करके हमें उनकी सेवा करने की अनुमति प्राप्त हो सकी है।

——

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

कृष्णद्वैपायन व्यास

कृत

श्रीमद्भागवतम्

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥५१॥

(१२.३.५१)

श्रीमद्भागवतम्

(भगवत्-सन्देश)

द्वादश स्कन्ध

''पतनोन्मुख युग''

मूल संस्कृत पाठ, शब्दार्थ,

अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

के शिष्यों द्वारा

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

श्रीमद्भागवतम् अनुवाद एवं सम्पादकीय बोर्ड

(संस्कृत से अंग्रेजी)

हृदयानन्द दास गोस्वामी

प्रोजेक्ट डायरेक्टर, अनुवादक, तात्पर्य लेखक एवं प्रधान संपादक

गोपीप्राणधन दास अधिकारी

अनुवादक, तात्पर्य लेखक एवं संस्कृत संपादक

द्रविड़ दास ब्रह्मचारी

अंग्रेजी संपादक

विषय-सूची

श्रीमद्भागवतम्

विषय-सूची

प्राक्कथन

आमुख

प्रस्तावना

अध्याय एक

कलियुग के पतित वंश

अध्याय का सारांश

दूषित राजनीतिक दावपेंच

मौर्य वंश की स्थापना

राजवंश का अधम चरित्र

अध्याय दो

कलियुग के लक्षण

अध्याय का सारांश

दिन–प्रतिदिन सद्‌गुणों का ह्रास
विवाह संस्था का पतन
भगवान् कल्कि का अवतार
कृष्ण के प्रयाण के साथ कलियुग का शुभारम्भ
भौतिकतावादी राजाओं के विचार
अध्याय तीन
भूमि गीत
अध्याय का सारांश
मूर्ख लोग पृथ्वी को जीतना चाहते हैं
चार युग
प्रकृति के तीन गुणों का प्रभाव
कलियुग के कुछ अधिक लक्षण
बुद्धि नास्तिकता की ओर मुड़ जायेगी
हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन
अध्याय चार
ब्रह्माण्ड के प्रलय की चार कोटियाँ
अध्याय का सारांश
सम्पूर्ण भौतिक प्रलय का वर्णन
प्रधान : भौतिक प्रकृति की अव्यक्त अवस्था
मिथ्या अहंकार के भौतिक आवरण का विनाश
भवसागर को पार करने के लिए नाव
अध्याय पाँच
महाराज परीक्षित को शुकदेव गोस्वामी का अन्तिम उपदेश
अध्याय का सारांश
आत्मा शरीर से भिन्न है
तक्षक सर्प
अध्याय छह
महाराज परीक्षित का निधन
अध्याय का सारांश
राजा परीक्षित की घोषणा कि वे ज्ञान में स्थिर हैं
राजा परीक्षित की मृत्यु
तक्षक का वध करने के लिए जनमेजय द्वारा यज्ञ

परम सत्य
वेदों का सूक्ष्म रूप
श्रील व्यासदेव द्वारा वेदों के चार विभाग
याज्ञवल्क्य द्वारा नवीन यजुर्मंत्रों की खोज की अभिलाषा
अध्याय सात
पौराणिक साहित्य
अध्याय का सारांश
अथर्ववेद के प्राचीन विद्वान
पौराणिक विद्या गुरु से शिष्य को मिलती है
पुराणों के लक्षण
सर्ग तथा विसर्ग
भगवान् के छः प्रकार के अवतार
भगवान् अनन्त, अद्वितीय आश्रय क्यों ?
अठारह प्रधान पुराण
अध्याय आठ
मार्कण्डेय द्वारा नर-नारायण ऋषि की स्तुति
अध्याय का सारांश
मार्कण्डेय ऋषि विषयक कुछ चकराने वाले तथ्य
मार्कण्डेय ने मृत्यु कैसे जीती ?
मार्कण्डेय के व्रत भंग करने के लिए इन्द्र द्वारा
कामदेव का भेजा जाना
स्वर्ग के गवैयों तथा नर्तकियों द्वारा
मार्कण्डेय को बहकाने का प्रयास
मार्कण्डेय द्वारा दुष्टों की पराजय
नर-नारायण ऋषि का प्रकट होना
भावविभोर मार्कण्डेय द्वारा भगवान् का सत्कार
मुनि द्वारा नर-नारायण ऋषि की स्तुति
भगवान् के चरणकमल : भय से एकमात्र रक्षक
भगवान् को समझने के लिए अनुभूत साधन व्यर्थ
अध्याय नौ
मार्कण्डेय ऋषि को भगवान् की मायाशक्ति के दर्शन
अध्याय का सारांश

नारायण द्वारा मार्कण्डेय को वर दिया जाना
मार्कण्डेय द्वारा भगवान् की मायाशक्ति का
दर्शन करने का अनुरोध
ऋषि की कुटिया के चारों ओर भयानक तूफान
विश्व-बाढ़ में एकाकी विचरण
विस्तृत सागर में मार्कण्डेय का एक द्वीप पर पहुँचना
बरगद के पत्ते पर लेटे शिशु रूप में भगवान् का वर्णन
ऋषि का सृष्टि को भगवान् के शरीर में देखना
भगवान् तथा उनकी मायाशक्ति का अन्तर्धान होना
अध्याय दस
शिव तथा उमा द्वारा मार्कण्डेय ऋषि का गुणगान
अध्याय का सारांश
शिव तथा पार्वती का समाधिस्थ मार्कण्डेय के पास आना
शिव का ऋषि के हृदय में प्रवेश करना
मार्कण्डेय द्वारा शिव तथा उमा की पूजा
ब्रह्म, विष्णु तथा शिव भी सन्त ब्राह्मणों का
सम्मान करते हैं
अपने अधीनस्थों के समक्ष महात्मा विनीत क्यों?
मार्कण्डेय को वरदान
पाठकों के लिए वरदान
अध्याय ग्यारह
महापुरुष का संक्षिप्त वर्णन
अध्याय का सारांश
अमरता कैसे प्राप्त की जाय?
भगवान् का विश्व रूप
भगवान् की सेवा से सारे पापों का उच्छेदन
तीन अच्युत जीव
भगवान् के चार स्वांश
भगवान् की स्तुति से लाभ
सूर्य:सारे जगतों के स्त्रष्टा, नियामक तथा आत्मा
सूर्यदेव के संगियों के बारह समूहों की गणना
सूर्यदेव तथा उनके संगियों के स्मरण की महत्ता

अध्याय बारह
श्रीमद्भागवत की संक्षिप्त विषय-सूची
अध्याय का सारांश
मनुष्य बनने के लिए श्रीमद्भागवत सुनना आवश्यक
परब्रह्म रहस्य तथा भक्ति
ब्रह्माण्ड की सृष्टि
महाद्वीप, स्वर्गिक मंडल तथा नरक
भगवान् के अवतार
श्रीकृष्ण का प्राकट्य तथा लीलाएँ
कलियुग के उत्पात
कृष्ण अपनी महिमा गायकों के हृदय को
विमल बनाते हैं
कृष्ण की स्तुतियाँ मन के लिए शाश्वत उत्सव
भगवान् के चरणकमलों की स्मृति अशुभ वस्तुओं का
विनाश करने वाली
श्रीमद्भागवत सुनने के लाभ
श्रीमद्भागवत में ही हरि का प्रभूत तथा निरन्तर यशोगान
श्रील सूत गोस्वामी द्वारा शुकदेव गोस्वामी की प्रशंसा
अध्याय तेरह
श्रीमद्भागवत की महिमा
अध्याय का सारांश
भगवान् कूर्म की स्तुति
अठारह प्रमुख पुराणों की श्लोक संख्या
सर्वप्रथम ब्रह्मा का भगवान् से श्रीमद्भागवत सुनना
भागवत : भगवान् की अमृतमयी लीलाओं से ओतप्रोत
श्रीमद्भागवत : समस्त वेदान्त दर्शन का सार
श्रीमद्भागवत : एक निष्कलंक पुराण
अन्त
परिशिष्ट
लेखक परिचय